जैन

पूजा-पाठ

nikkyjain@gmail.com
Date : 28-08-18

Index

प्रारम्भ

1) श्री-मंगलाष्टक-स्तोत्र
2) दर्शनं-देव-देवस्य
3) दर्शन-पाठ---बुधजनजी
4) दर्शन-पाठ
5) प्रतिमा-प्रक्षाल-विधि-पाठ
6) अभिषेक-पाठ-भाषा--हरजसरायजी
7) अभिषेक-पाठ-लघु
8) अमृत-से-गगरी-भरो
9) महावीर-की-मूंगावरणी
10) विनय-पाठ-दोहावली
11) विनय-पाठ-लघु--सफ़ल-जन्म
12) मंगलपाठ
13) भजन-मैं-थाने-पूजन-आयो
14) पूजा-विधि-प्रारंभ
15) अर्घ
16) स्वस्ति-मंगल-विधान
17) चतुर्विंशति-तीर्थंकर-स्वस्ति-विधान
18) अथ-परमर्षि-स्वस्ति-मंगल-विधान
19) स्तुति-बुधजनजी

नित्य-पूजा

1) देव-शास्त्र-गुरु-युगलजी
2) देव-शास्त्र-गुरु-द्यानतरायजी
3) पंचपरमेष्ठी-पवैयाजी
4) नवदेवता-पूजन-आर्यिका-ज्ञानमती
5) सिद्धपूजा-युगलजी
6) सिद्धपूजा--हीराचंद
7) सम्यकदर्शन
8) सम्यकज्ञान
9) सम्यकचारित्र
10) चौबीस-तीर्थंकर-वृन्दावनदास
11) समुच्च-पूजा-ब्र.सरदारमलजी
12) बाहुबली-भगवान-पवैयाजी
13) सीमन्धर-भगवान-हुकमचन्द-भारिल्ल
14) दशलक्षण-धर्म-द्यानतरायजी
15) पंचमेरु-पूजन
16) विद्यमान-बीस-तीर्थंकर-द्यानतरायजी
17) सोलहकारण-भावना-द्यानतरायजी
18) नंदीश्वर-द्वीप-पूजन
19) निर्वाणक्षेत्र-पवैयाजी
20) सरस्वती-पूजन--द्यानतरायजी
21) आदिनाथ-भगवान--जिनेश्वरदासजी

तीर्थंकर

1) श्रीआदिनाथ-पूजन
2) श्रीअजितनाथ-पूजन
3) श्रीसंभवनाथ-पूजन
4) श्रीअभिनन्दननाथ-पूजन
5) श्रीसुमतिनाथ-पूजन
6) श्रीपद्मप्रभ-पूजन
7) श्रीसुपार्श्वनाथ-पूजन
8) श्रीचन्द्रप्रभनाथ-पूजन--वृन्दावनदासजी
9) श्रीपुष्पदन्त-पूजन
10) श्रीशीतलनाथ-पूजन

11) श्रीश्रेयांसनाथ-पूजन
12) श्रीवासुपूज्य-पूजन
13) श्रीविमलनाथ-पूजन
14) श्रीअनन्तनाथ-पूजन
15) श्रीधर्मनाथ-पूजन
16) श्रीशांतिनाथ-पूजन--बख्तावरजी
17) श्रीशांतिनाथ-पूजन--वृन्दावनदासजी
18) श्रीकुंथुनाथ-पूजन
19) श्रीअरहनाथ-पूजन
20) श्रीमल्लिनाथ-पूजन
21) श्रीमुनिसुव्रतनाथ-पूजन
22) श्रीनमिनाथ-पूजन
23) श्रीनेमिनाथ-पूजन
24) श्रीपार्श्वनाथ-पूजन-बख्तावरजी
25) श्रीमहावीर-पूजन--वृन्दावनदासजी

पर्व-पूजन

1) अक्षय-तृतीया-पवैयाजी
2) दीपावली-पवैयाजी
3) वीरशासन-जयन्ती-पवैयाजी
4) क्षमावाणी-पवैयाजी
5) रक्षाबन्धन-पवैयाजी
6) श्रुतपंचमी-पवैयाजी

विसर्जन

1) महाअर्घ्य
2) शांति-पाठ
3) शांति-पाठ-भाषा
4) विसर्जन-पाठ
5) भगवान-महावीर-आरती
6) भगवान-आदिनाथ-चालीसा
7) भगवान-महावीर-चालीसा

पाठ

1) देव-स्तुति--भूधरदासजी
2) मेरी-भावना--मुख्तारजी
3) बारह-भावना--जयचंदजी
4) बारह-भावना--भूधरदासजी
5) बारह-भावना--मंगतरायजी
6) महावीर-वंदना--हुकमचंदजी
7) समाधिमरण--द्यानतरायजी
8) समाधि-भावना--शिवरामजी
9) समाधिमरण-भाषा--सूरचंदजी
10) दर्शन-स्तुति--दौलतरामजी
11) जिनवाणी-स्तुति
12) आराधना-पाठ--द्यानतरायजी
13) इह-विधि-मंगल-आरति--द्यानतरायजी
14) आलोचना-पाठ--जौहरिलालजी
15) दुखहरन-विनती--वृन्दावनदासजी
16) अमूल्य-तत्त्व-विचार--युगलजी
17) बाईस-परीषह--आ.ज्ञानमती
18) सामायिक-पाठ--आ.अमितगति
19) सामायिक-पाठ--युगलजी
20) सामायिक-पाठ--महाचंद्रजी
21) सामायिक-पाठ--रविन्द्रजी
22) निर्वाण-कांड--भगवतीदास
23) वैराग्य-भावना--भूधरदासजी
24) स्वयंभू-स्तोत्र--आ.विद्यासागर
25) स्वयंभू-स्तोत्र-भाषा--द्यानतरायजी
26) आत्मबोध-शतक--आर्यिका-पूर्णमति

27) पार्श्वनाथ-स्तोत्र--द्यनतरायजी
28) महावीराष्टक-स्तोत्र--पं.भागचन्द्र
29) महावीराष्टक-स्तोत्र--हिंदी
30) लघु-प्रतिक्रमण
31) कल्याणमन्दिरस्तोत्रम
32) कल्याणमन्दिर-स्तोत्र-हिंदी
33) कल्याणमन्दिर-स्तोत्र-हिंदी--पं-बनारसीदास
34) भक्तामर--आ.मानतुंग
35) भक्तामर--कमलकुमारजी
36) भक्तामर--हेमराजजी
37) भक्तामर--मु.श्रीरसागर
38) एकीभाव-स्तोत्र--आ.वादीराज
39) विषापहारस्तोत्रम्--श्रीधनञ्जय
40) विषापहारस्तोत्र--श्रीशांतिदास
41) मृत्युमहोत्सव
42) अपूर्व-अवसर--श्री.राजचंद्र
43) कुंदकुंद-शतक
44) ध्यान-सूत्र-शतक--आ.माघनंदी
45) छहढाला--बुधजनजी
46) छहढाला--द्यानतरायजी
47) श्री-गोम्टेश्वर-स्तुति
48) सहस्रनाम-स्तोत्र
49) रत्नाकर-पंचविंशतिका--रामचरितजी
50) भूपाल-पंचविंशतिका--भूधरदासजी

छहढाला

1) पहली-ढाल
2) दूसरी-ढाल
3) तीसरी-ढाल
4) चौथी-ढाल
5) पांचवी-ढाल
6) छठी-ढाल

श्री-मंगलाष्टक-स्तोत्र

पञ्च परमेष्ठी हमारा मंगल करें

अर्हन्तो भगवंत इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्च सिद्धीश्वरा,
आचार्याः जिनशासनोन्नतिकराः, पूज्या उपाध्यायकाः
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः, मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥१॥

अन्वयार्थ : इन्द्रों द्वारा जिनकी पूजा की गई ऐसे अरिहन्त भगवान, सिद्धि के स्वामी ऐसे सिद्ध भगवान, जिन शासन को प्रकाशित करने वाले ऐसे आचार्य, सिद्धांत को सुव्यवस्थित पढाने वाले ऐसे पूज्य उपाध्याय, रत्नत्रय के आराधक ऐसे साधु ये पाँचों परमेष्ठी प्रतिदिन तुम्हारे पापों को नष्ट करें और तुम्हें सुखी करें ।

पञ्च परमेष्ठी हमारा मंगल करें

श्रीमन्नम्र - सुरासुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत - रत्नप्रभा-
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगीजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥२॥

अन्वयार्थ : शोभायुक्त और नमस्कार करते हुए देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से जिनके श्री चरणों के नखरूपी चन्द्रमा की ज्योति स्फुरायमान हो रही है । और जो प्रवचन रूप सागर की वृद्धि करने के लिए स्थायी चन्द्रमा हैं एवं योगिजन जिनकी स्तुति करते रहते है ऐसे अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पांचों परमेष्ठी पापों को क्षालित करें और तुम्हें सुखी करें ॥

सच्चा रत्न त्रय धर्म,जिनवाणी,जिन बिम्ब और जिनालय हमारा मंगल करें

सम्यग्दर्शन-बोध-व्रत्तममलं, रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति श्रीनगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः
धर्म सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं, चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी, कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥३॥

अन्वयार्थ : निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यकचारित्र यह पवित्र रत्नत्रय है । श्री सम्पन्न मुक्तिनगर के स्वामी भगवान् जिनदेव ने इसे अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाला धर्म कहा है । इस प्रकार जो यह तीन प्रकार का धर्म कहा गया है वह तथा इसके साथ सूक्तिसुधा (जिनागम), समस्त जिन-प्रतिमा और लक्ष्मी का आकारभूत जिनालय मिलकर चार प्रकार का धरम कहा गया है वह तुम्हारे पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी करें ॥

मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ श्लाका पुरुष हमारा मंगल करें

नाभेयादिजिनाः प्रशस्त-वदनाः ख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वर-प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लांगलधराः सप्तोत्तराविंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टि-पुरुषाः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥४॥

अन्वयार्थ : तीनों लोकों में विख्यात और बाह्य तथा आभ्यन्तर लक्ष्मी सम्पन्न ऋषभनाथ भगवान् आदि 24 तीर्थंकर, श्रीमान् भरतेश्वर आदि 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण और 9 बलभद्र ये 63 शलाका महापुरुष पापों का क्षय करें और तुम्हे सुखी करें ॥

ऋद्धि धारी ऋषि महाराज हम सब का मंगल करें

ये सर्वौषध-ऋद्धयः सुतपसां वृद्धिंगताः पञ्च ये,
ये चाष्टाँग-महानिमित्तकुशलाश्चाष्टौ वियच्चारिण:
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धिश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥५॥

अन्वयार्थ : सभी औषधि ऋद्धिधारी, उत्तम तप ऋद्धिधारी, अवधृत क्षेत्र से भी दूरवर्ती विषय के आस्वादन, दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण की समर्थता की ऋद्धि के धारी, अष्टांग महानिमित्त विज्ञता की ऋद्धि के धारी, आठ प्रकार की चारण ऋद्धि के धारी, पॉच प्रकार के ज्ञान की ऋद्धि के धारी, तीन प्रकार के बलों की ऋद्धि के धारी और बुद्धि-ऋद्धीश्वर, ये सातों जगत्पूज्य गणनायक तुम्हारे पापों को क्षालित करें और तुम्हें सुखी बनावें । बुद्धि क्रिया, विक्रिया, तप, वश, औषध रस और क्षेत्र के भेद से ऋद्धयों के आठ भेद हैं ॥

तीनों लोक के अकृत्रिम चैत्यालय हमारा मंगल करें

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरग्रहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बूशाल्मलि-चैत्य-शखिषु तथा वक्षार-रुप्याद्रिषु
इक्ष्वाकार-गिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिन-ग्रहाः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥६॥

अन्वयार्थ : ज्योतिषी, व्यन्तर भवनवासी और वैमानिकों के आवासों के, मेरुओं, कुलाचलों, जम्बू वृक्षों और शाल्मलि वृक्षों, वक्षारों, विजयार्ध पर्वतों, इक्ष्याकार पर्वतों, कुंडलपर्वत, नन्दीश्वरद्वीप और मानुषोत्तर पर्वत (तथा रुचिकवर पर्वत), के सभी अकृत्रिम जिन चैत्यालय तुम्हारे पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी बनावें ॥

निर्वाण क्षेत्र हम सब का मंगल करे

कैलाशे वृषभस्य निर्व्रतिमही वीरस्य पावापुरे
चम्पायां वसुपूज्यसुज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतः,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥७॥

अन्वयार्थ : भगवान् ऋषणभदेव की निर्वाण भूमि कैलाश पर्वत पर है । महावीरस्वामी की पावापुर में है । वासुपूज्य स्वामी की चम्पापुरी में है । नेमिनाथ स्वामी की ऊर्जयन्त पर्वत के शिखर पर और शेष बीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर है, जिनका अतिशय और वैभव विख्यात है । ऐसी ये सभी निर्वाण भूमियाँ तुम्हें निष्पाप बना दें और तुम्हें सुखी करें ॥

तीर्थंकरों के पञ्च कल्याणकों की महिमा हम सब का मंगल करे

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्
यः कैवल्यपुर-प्रवेश-महिमा सम्पदितः स्वर्गिभिः
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥८॥

अन्वयार्थ : तीर्थंकरों के गर्भकल्याणक, जन्माभिषेक कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक और कैवल्यपुर प्रवेश (निर्वाण) कल्याणक के देवों द्वारा सम्भावित महोत्सव तुम्हें सर्वदा मांगलिक रहें ॥

धर्म के प्रभाव से सब कुछ संभव है

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः
देवाः यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु नः मंगलम् ॥९॥

अन्वयार्थ : धर्म के प्रभाव से सर्प माला बन जाता है, तलवार फूलों के समान कोमल बन जाती है, विष अमृत बन जाता है, शत्रु प्रेम करने वाला मित्र बन जाता है और देवता प्रसन्न मन से धर्मात्मा के वश में हो जाते है । अधिक क्या कहें धर्म से ही आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती हैं वही धर्म तुम सब का कल्याण करें ॥

पाठ पढने का फल

इत्थं श्रीजिन-मंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-सम्पत्करम्
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः
ये श्रृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैः धर्मार्थ-कामाविन्ताः
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय-रहिता निर्वाण-लक्ष्मीरपि ॥१०॥

अन्वयार्थ : सौभाग्य सम्पत्ति को प्रदान करने वाले इस श्री जिनेन्द्र मंगलाष्टक को जो सुधी तीर्थकरों के पंचकल्याणक के महोत्सवों के अवसर पर तथा प्रभातकाल में भावपूर्वक सुनते और पढ़ते हैं वे सज्जन धर्म, अर्थ और काम से समन्वित लक्ष्मी के आश्रय बनते हैं और पश्चात् अविनश्वर मुक्तिलक्ष्मी को भी प्राप्त करते हैं ॥

दर्शनं-देव-देवस्य

दर्शनं देव-देवस्य, दर्शनं पापनाशनं
दर्शनं स्वर्ग-सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनं ॥१॥

अन्वयार्थ : देवों के देव(जिनेन्द्रदेव) का दर्शन पाप का नाश करने वाला,स्वर्ग जाने के लिए सीढ़ी के समान तथा मोक्ष का साधन है

दर्शनेन जिनेन्द्राणाम, साधूनां वन्दनेन च,
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम ॥२॥

अन्वयार्थ : श्री जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से और साधुओं की वन्दना करने से पाप बहुत दिनों तक नहीं ठहरते,जैसे छिद्र होने से हाथों में पानी नहीं ठहरता(धीरे धीरे चू जाता है,इसी तरह पाप धीरे-धीरे दूर होने लगते हैं)

वीतराग-मुखं दृष्टवा, पदम्-राग-समप्रभम
जन्म-जन्म-कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥३॥

अन्वयार्थ : पदमरागमणि के समान शोभनीक श्री वीतराग भगवान का मुख देखकर अनेक जन्मों के किये हुए पाप दर्शन से नष्ट हो जाते हैं

दर्शनं जिन-सूर्यस्य, संसार-ध्वांत-नाशनम
बोधनं चित्त-पदमस्य, समस्तार्थ-प्रकाशनम ॥४॥

अन्वयार्थ : सूर्य के समान श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने से सांसारिक अंधकार नष्ट होता है,चित्तरूपी कमल खिलता है और सर्व पदार्थ प्रकाश में आते हैं और जाने जाते हैं

दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद्धर्म्मामृत-वर्षणं
जन्मदाह-विनाशाय, वर्धनं सुख-वारिधेः ॥५॥

अन्वयार्थ : चन्द्रमा के समान श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन करने से सद धर्म रूपी अमृत की वर्षा होती है,बार-बार जन्म लेने का दाह मिटता है और सुख रूपी समुद्र की वृद्धि होती है

जीवादि-तत्त्व-प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणाश्रयाय
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधि-देवाय नमो जिनाय ॥६॥

अन्वयार्थ : श्री देवाधिदेव जिनेन्द्र को नमस्कार हो,जो जीव आदि सात तत्त्वों के बताने वाले,सम्यक्त्व आदि गुणों के स्वामी,शान्त रूप तथा दिगम्बर हैं

चिदानंदैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥७॥

अन्वयार्थ : श्री सिद्धात्मा को जो चिदानन्द रूप हैं, अष्ट कर्मों को जीतने वाले हैं, परमात्मस्वरूप के प्रकाशित होने के लिए नित्य नमस्कार हो

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम
तस्मात्कारुण्य-भावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर ॥८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेश्वर! आप ही मुझे शरण में रखने वाले हो,आपके सिवा और कोई शरण नहीं है। इसलिए कृपापूर्वक संसार के दुःखों से मेरी रक्षा कीजिये।मैं आपकी शरण में हूँ

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥९॥

अन्वयार्थ : तीन लोक के बीच अपना कोई रक्षक नहीं है,यदि कोई है तो हे वीतराग देव! आप ही हैं क्योंकि आप के समान न तो कोई देव हुआ है और न आगे होगा

जिने भक्तिर्जिने भक्ति-र्जिने भक्तिर्दिने-दिने
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे-भवे ॥१०॥

अन्वयार्थ : मैं यह आकांक्षा करता हूँ कि जिनेन्द्र भगवान में मेरी भक्ति दिन-दिन और प्रत्येक भव में बनी रहे

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्र वर्त्यपि
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥११॥

अन्वयार्थ : जिनधर्मरहित चक्रवर्ती होना भी अच्छा नहीं, जिनधर्म का धारी दास तथा दरिद्री हो तो भी अच्छा है

जन्म-जन्म-कृतं-पापं, जन्मकोटि-मुपार्जितम
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं, हन्यते जिनदर्शनात ॥१२॥

अन्वयार्थ : जिनेन्द्र के दर्शन से करोड़ों जन्मों के किये हुए पाप तथा जन्म जरा मृत्यु रूपी तीव्र रोग अवश्य-अवश्य नष्ट हो जाते हैं

अद्याभवत सफलता नयन-द्वयस्य
देव! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे
संसार-वारिधिरयं चुलुक-प्रमाणं ॥१३॥

अन्वयार्थ : हे देवाधिदेव! आपके कल्याणकारी चरण कमलों के दर्शन से मेरे दोनों नेत्र आज सफल हुए। हे तीनों लोकों के श्रृंगार रूप तेजस्वी लोकोत्तर पुरुषोत्तम! आपके प्रताप से, मेरा संसार रूपी समुद्र हाथ में लिये (चुल्लू भर) पानी के समान प्रतीत होता है,आपके प्रताप से मैं सहज ही संसार-समुद्र से पार हो जाऊँगा ।

दर्शन-पाठ

कविश्री बुधजनजी कृत

दोहा

तुम निरखत मुझको मिली, मेरी सम्पत्ति आज
कहाँ चक्रवर्ति-संपदा, कहाँ स्वर्ग-साम्राज ॥१॥

तुम वंदत जिनदेवजी, नित-नव मंगल होय
विघ्नकोटि ततछिन टरैं, लहहिं सुजस सब लोय ॥२॥

तुम जाने बिन नाथजी, एक श्वास के माँहि
जन्म-मरण अठदस किये, साता पाई नाहिं ॥३॥

आप बिना पूजत लहे, दु:ख नरक के बीच
भूख-प्यास पशुगति सही, कर्यो निरादर नीच ॥४॥

नाम उचारत सुख लहे, दर्शनसों अघ जाय
पूजत पावे देव-पद, ऐसे हैं जिनराय ॥५॥

वंदत हूँ जिनराज मैं, धर उर समता भाव
तन धन-जन-जगजालतें, धर विरागता भाव ॥६॥

सुनो अरज हे नाथजी! त्रिभुवन के आधार
दुष्टकर्म का नाश कर, वेगि करो उद्धार ॥७॥

याचत हूँ मैं आपसों, मेरे जिय के माँहिं
राग-द्वेष की कल्पना, कबहू उपजे नाहिं ॥८॥

अति अद्भुत प्रभुता लखी, वीतरागता माँहिं
विमुख होहिं ते दु:ख लहें, सन्मुख सुखी लखाहिं ॥९॥

कल-मल कोटिक नहिं रहें, निरखत ही जिनदेव
ज्यों रवि ऊगत जगत में, हरे तिमिर स्वयमेव ॥१०॥

परमाणु – पुद्गलतणी, परमातम – संयोग
भई पूज्य सब लोक में, हरे जन्म का रोग ॥११॥

कोटि-जन्म में कर्म जो, बाँधे हुते अनंत
ते तुम छवि विलोकते, छिन में होवहिं अंत ॥१२॥

आन नृपति किरपा करे, तब कछु दे धन-धान
तुम प्रभु अपने भक्त को, करल्यो आप-समान ॥१३॥

यंत्र-मंत्र मणि-औषधि, विषहर राखत प्रान
त्यों जिनछवि सब भ्रम हरे, करे सर्व-परधान ॥१४॥

त्रिभुवनपति हो ताहि ते, छत्र विराजें तीन
सुरपति-नाग-नरेशपद, रहें चरन-आधीन ॥१५॥

भवि निरखत भव आपनो, तुव भामंडल बीच
भ्रम मेटे समता गहे, नाहिं सहे गति नीच ॥१६॥

दोई ओर ढोरत अमर, चौंसठ-चमर सफेद
निरखत भविजन का हरें, भव अनेक का खेद ॥१७॥

तरु-अशोक तुव हरत है, भवि-जीवन का शोक
आकुलता-कुल मेटिके, करैं निराकुल लोक ॥१८॥

अंतर-बाहिर-परिग्रहन, त्यागा सकल समाज
सिंहासन पर रहत है, अंतरीक्ष जिनराज ॥१९॥

जीत भई रिपु-मोह तें, यश सूचत है तास
देव-दुन्दुभिन के सदा, बाजे बजें अकाश ॥२०॥

बिन-अक्षर इच्छारहित, रुचिर दिव्यध्वनि होय
सुर-नर-पशु समझें सबै, संशय रहे न कोय ॥२१॥

बरसत सुरतरु के कुसुम, गुंजत अलि चहुँ ओर
फैलत सुजस सुवासना, हरषत भवि सब ठौर ॥२२॥

समुद्र बाघ अरु रोग अहि, अर्गल-बंध संग्राम
विघ्न-विषम सबही टरैं, सुमरत ही जिननाम ॥२३॥

श्रीपाल चंडाल पुनि, अञ्जन भीलकुमार
हाथी हरि अरि सब तरे, आज हमारी बार ॥२४॥

'बुधजन' यह विनती करे, हाथ जोड़ सिर नाय
जबलौं शिव नहिं होय तुव-भक्ति हृदय अधिकाय ॥२५॥

दर्शन-पाठ

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने ॥१॥

पाये अनंते दु:ख अब तक, जगत को निज जानकर
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर ॥२॥

भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर
निजपर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि सुधा नहिं पानकर ॥३॥

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी ॥४॥

रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा ॥५॥

प्रिय वचन की हो टेव, गुणीगण गान में ही चितपगै
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादन तैं भगै ॥६॥

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर ॥७॥

धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ ॥८॥

तप तपूं द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ
अरु रोकि नूतन कर्मसंचित, कर्म रिपुकों निर्जरूँ ॥९॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ ॥१०॥

कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ ॥११॥

आनन्दकन्द जिनेन्द्रबन, उपदेश को नित उच्चरूं
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दु:खद भवसागर तरूँ ॥१२॥

प्रतिमा-प्रक्षाल-विधि-पाठ

दोहा
परिणामों की स्वच्छता, के निमित्त जिनबिम्ब
इसीलिए मैं निरखता, इनमें निज-प्रतिबिम्ब ॥
पंच-प्रभू के चरण में, वंदन करूँ त्रिकाल
निर्मल-जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल ॥

अथ पौर्वाह्निक देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-स्तवन वंदनासमेतं श्री पंचमहागुरुभक्तिपूर्वकं कायोत्सर्गं करोम्यहम्

नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें

छप्पय
तीन लोक के कृत्रिम औ अकृत्रिम सारे
जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे ॥
श्रीजिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ
जिन में निज का, निज में जिन-प्रतिबिम्ब निहारूँ ॥

मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन-प्रतिमा प्रक्षाल का
यह भाव-सुमन अर्पण करूँ, फल चाहूँ गुणमाल का ॥
ॐ ह्रीं प्रक्षाल-प्रतिज्ञायै पुष्पांजलिं क्षिपामि

प्रक्षाल की प्रतिज्ञा हेतु पुष्प क्षेपण करें

रोला
अंतरंग बहिरंग सुलक्ष्मी से जो शोभित
जिनकी मंगलवाणी पर है त्रिभुवन मोहित ॥
श्रीजिनवर सेवा से क्षय मोहादि-विपत्ति
हे जिन! 'श्री' लिख, पाऊँगा निज-गुण सम्पत्ति ॥

अभिषेक-थाल की चौकी पर केशर से 'श्री' लिखें

दोहा
अंतर्मुख मुद्रा सहित, शोभित श्री जिनराज
प्रतिमा प्रक्षालन करूँ, धरूँ पीठ यह आज ॥
ॐ ह्रीं श्री स्नपन-पीठ स्थापनं करोमि

प्रक्षाल हेतु थाल स्थापित करें

रोला
भक्ति-रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन
भेद-ज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन ॥
स्वागत है जिनराज तुम्हारा सिंहासन पर
हे जिनदेव! पधारो श्रद्धा के आसन पर ॥
ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह सिंहासने तिष्ठ! तिष्ठ!

प्रदक्षिणा देकर अभिषेक-थाल में जिनबिम्ब विराजमान करें

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया
दृग-सुख वीरज ज्ञान स्वरूपी आतम पाया ॥
मंगल-कलश विराजित करता हूँ जिनराजा
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा ॥
ॐ ह्रीं अर्हं कलश-स्थापनं करोमि

चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें, व स्नपन-पीठ स्थित जिन-प्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया
अष्ट-अंग-युत मानो सम्यग्दर्शन पाया ॥

श्रीजिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित
करूँ आज रागादि विकारी-भाव विसर्जित ॥
ॐ ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चारों कोनों के इंद्र विनय सहित दोनों हाथों में जल कलश ले प्रतिमाजी के शिर पर धारा करते हुए गावें

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर ॥
कैसे हो प्रक्षाल जगत के अघ-क्षालक का
क्या दरिद्र होगा पालक! त्रिभुवन-पालक का ॥
भक्ति-भाव के निर्मल जल से अघ-मल धोता
है किसका अभिषेक! भ्रान्त-चित खाता गोता ॥
नाथ! भक्तिवश जिन-बिम्बों का करूँ न्हवन मैं
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पृच्छन मैं ॥

दोहा
क्षीरोदधि-सम नीर से करूँ बिम्ब प्रक्षाल
श्री जिनवर की भक्ति से जानूँ निज-पर चाल ॥
तीर्थंकर का न्हवन शुभ सुरपति करें महान्
पंचमेरु भी हो गए महातीर्थ सुखदान ॥
करता हूँ शुभ-भाव से प्रतिमा का अभिषेक
बचूँ शुभाशुभ भाव से यही कामना एक ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशति-तीर्थंकर-परमदेवम् आद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे <,,,,,शुभे....> नाम्निनगरे मासानामुत्तमे <,,,,,शुभे....> मासे <,,,,,शुभे....> पक्षे <,,,,,शुभे....> दिने मुन्यार्यिकाश्रावकश्राविकाणां सकलकर्म – क्षयार्थं पवित्रतर-जलेन जिनमभिषेचयामि

चारों कलशों से अभिषेक करें, वादित्र-नाद करावें एवं जय-जय शब्दोच्चारण करें

दोहा
जिन-संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुणखान
मस्तक पर धारूँ सदा, बनूँ स्वयं भगवान् ॥

गंधोदक केवल मस्तक पर लगायें, अन्य किसी अंग में लगाना आस्रव का कारण होने से वर्जित है

जल-फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज
हुआ बिम्ब-अभिषेक अब, पाऊँ निज-पद-राज ॥
ॐ ह्रीं श्री अभिषेकांन्ते वृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री जिनवर का धवल-यश, त्रिभुवन में है व्याप्त
शांति करें मम चित्त में, हे! परमेश्वर आप्त ॥

पुष्पांजलि क्षेपण करें

रोला
जिन-प्रतिमा पर अमृत सम जल-कण अतिशोभित
आत्म-गगन में गुण अनंत तारे भवि मोहित ॥
हो अभेद का लक्ष्य भेद का करता वर्जन
शुद्ध वस्त्र से जल कण का करता परिमार्जन ॥

प्रतिमा को शुद्ध-वस्त्र से पोंछें

दोहा
श्रीजिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्य-कुमार ॥

वेदिका-स्थित सिंहासन पर नया स्वस्तिक बना प्रतिमाजी को विराजित करें व निम्न पद गाकर अर्घ्य चढ़ायें

जल गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज ॥
ॐ ह्रीं श्री वेदिका-पीठस्थितजिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अभिषेक-पाठ-भाषा

हरजसराय कृत

जय-जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौ जोरि जुगपान ॥

श्रीजिन जगमें ऐसो को बुधवंत जू
जो तुम गुण वरननि करि पावै अंत जू ॥
इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवनधनी ॥

अनुपम अमित तुम गुणनि-वारिधि,ज्यों अलोकाकाश है
किमि धरै हम उर कोषमें सो अकथ-गुण-मणि-राश है
पै निज प्रयोजन सिद्धि की तुम नाम में ही शक्ति है
यह चित्त में सरधान यातैं नाम में ही भक्ति है ॥१॥

ज्ञानावरणी दर्शन,आवरणी भने
कर्म मोहनी अंतराय चारों हने ॥
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में
इंद्रादिक मुकुट नये सुरथान में ॥

तब इंद्र जान्यो अवधितैं,उठि सुरन-युत बंदत भयो
तुम पुन्यको प्रेरयो हरी ह्वै मुदित धनपतिसौं चयो ॥
अब वेगि जाय रचौ समवसृती सफल सुरपदको करौ
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ ॥२॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती
चल आयो ततकाल मोद धारै अती ॥
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ
दे प्रदच्छिना बार बार वंदत भयौ ॥

अति भक्ति-भीनों नम्र-चित ह्वै समवशरण रच्यौ सही
ताकी अनूपम शुभ गतीको,कहन समरथ कोउ नहीं ॥
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं
नग-जड़ित गन्धकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं ॥३॥

सिंघासन तामध्य बन्यौ अदभूत दिपै
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै ॥
तीनछत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी
महा भक्ति ढोरत हैं तहां अमरजी ॥

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर अन्तरीक्ष विराजिया

यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया ॥
मुनि आदि द्वादश सभाके भविजीव मस्तक नायकें
बहुभाँति बारंबार पूजैं,नमैं गुणगण गायकैं ॥४॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही
क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं ॥
जन्म जरामृति अरति शोक विस्मय नसे
राग रोष निंद्रा मद मोह सबै खसे ॥

श्रमबिना श्रमजलरहित पावन अमल ज्योति-स्वरूपजी
शरणागतनिकी अशुचिता हरि,करत विमल अनूपजी ॥
ऐसे प्रभु की शान्तिमुद्रा को न्हवन जलतें करैं
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं हम भानु ढिग दीपक धरें ॥५॥

तुम तौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो ॥
मैं मलीन रागादिक मलतै ह्वै रह्यो
महा मलिन तनमें वसु-विधि-वश दुख सह्यो ॥

बीत्यो अनंतो काल यह मेरी अशुचिता ना गई
तिस अशुचिता-हर एक तुम ही,भरहु बांछा चित ठई ॥
अब अष्टकर्म विनाश सब मल रोष-रागादिक हरौ
तनरुप कारा-गेहतैं उद्धार शिव वासा करौ ॥६॥

मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये
आवागमन विमुक्त राग-वर्जित भये ॥
पर तथापि मेरो मनोरथ पुरत सही
नय-प्रमानतैं जानि महा साता लही ॥

पापाचरण तजि न्हवन करता चित्त में ऐसे धरुं
साक्षात श्री अरिहंतका मानों न्हवन परसन करूं ॥
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंध तैं
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं ह्वै शर्म सब विधि तासतैं ॥७॥

पावन मेरे नयन,भये तुम दरसतैं
पावन पानि भये तुम चरननि परसतैं ॥

पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यानतैं
पावन रसना मानी,तुम गुण गानतैं ॥

पावन भई परजाय मेरी,भयौ मैं पूरण-धनी
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी;पूर्णभक्ति नहीं बनी ॥
धन धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिव-घरकी धरी
वर क्षीरसागर आदि जल मणि-कुंभ भक्ती करी ॥८॥

विघन-सघन-वन-दाहन-दहन प्रचंड हो
मोह-महा-तम-दलन प्रबल मारतंड हो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो
जगविजयी जमराज नाश ताको करो ॥

आनन्द-कारण दुख-निवारण, परम मंगल-मय सही
मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित-तार सुन्यौ नहीं ॥
चिंतामणी पारस कल्पतरू, एक भव सुखकार ही
तुम भक्ति-नवका जे चढ़े, ते भये भवदधि-पार ही ॥९॥

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार
तारतम्य इस भक्तिको, हमैं उतारो पार ॥१०॥

इति श्री हरजसराय कृत अभिषेक पाठ

अभिषेक-पाठ-लघु

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वंदन करुं
मन वचन काय त्रियोग पूर्वक, शीश चरणों में धरूं ॥

सर्वज्ञ केवल ज्ञान धारी की सु छवि उर में धरूं
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग महान की जय उच्चरूं ॥

उज्ज्वल दिगंबर वेश दर्शन कर ह्रदय आनन्द भरूं
अति विनयपूर्वक नमन करके सफ़ल यह नर भव करूं ॥

मैं शुद्ध जल के कलश प्रभु के पूज्य मस्तक पर करूं
जल धार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभुजी का करूं ॥

मैं न्हवन प्रभु का भाव से कर, सकल भव पातक हरूं
प्रभु चरण कमल पखार कर, सम्यक्त्व की सम्पत्ति वरूं ॥

अमृत-से-गगरी-भरो

अमृत से गगरी भरो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे
खुशी-खुशी मिलके चलो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

सब साथी मिल कलश सजाओ, मंगलकारी गीत सुनाओ
मन में आनंद भरो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

इन्द्र-इन्द्राणी हर्ष मनावें, प्रभु चरणों में शीश झुकावें
प्रभुजी की छवि निरखो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

स्वर्ण कलश प्रभु उदक निधारा, अंग नहावे जिनवर प्यारा
स्वामी जगत को खरो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

है सुखकारी, सब दुखहारी, सेवा जिन की प्यारी-प्यारी
लेकर कलश को चलो, कि न्हवन प्रभु आज करेंगे ॥

महावीर-की-मूंगावरणी

महावीर की मूंगावरणी मूरत मनहारी - २
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी

कुंडलपुर के वीर की हो रही जय-जयकारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥

न्हवन कराओ माता त्रिशला के लाल का,
त्रिशला के लाल का, सिद्धार्थ के गोपाल का
मां त्रिशला के लाल के देखो कैसे लगे हैं ठाठ
एक हजार आठ कलशों से न्हावें जग-सम्राट
ढारो रे, कलशा ढारो, कमा लो रे पुण्य भारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥

सरस दरस पा लो वीर जिनचंद्र का
ले लो आशीष पूज्य गुरुवरों का
स्वर्ण कलश, नवरत्न कलश, हर कलश का है कुछ मोल
पर जिसका अभिषेक करोगे, वो तो है अनमोल
ढारो रे, कलशा ढारो, कमा लो रे पुण्य भारी
कलशा ढारो रे, ढारो रे, ढारो भर झारी ॥

विनय-पाठ-दोहावली

इह विधि ठाड़ो होय के प्रथम पढै जो पाठ
धन्य जिनेश्वर देव तुम नाशे कर्मजु आठ ॥१॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार से खड़े होकर पहिले मै यह पाठ पढ़ता हूँ!जिनेन्द्र देव आप धन्य है क्योकि आपने आठों कर्मों को नष्ट कर दिया है ।

अनंत चतुष्टय के धनी, तुमही हो सिरताज
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज ॥२॥

अन्वयार्थ : आप अनंत चतुष्टाय के स्वामी है, आप ही सर्वश्रेष्ठ है, आप मोक्षलक्ष्मी रुपी पत्नी के पति है, आप तीन लोक के स्वामी हैं ।

तिहुं जग की पीड़ा-हरन, भवदधि शोषणहार
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार ॥३॥

अन्वयार्थ : आप तीनो लोक के जीवों के दुखो को हरने वाले हो, संसार रुपी सागर के शोषक हैं । आप संसार के समस्त पदार्थों के ज्ञायक है और मोक्ष सुख प्राप्त करवाने वाले है ।

हरता अघ अंधियार के, करता धर्म प्रकाश
थिरता पद दातार हो, धरता निजगुण रास ॥४॥

अन्वयार्थ : आप पाप रुपी अन्धकार के हरता हैं, धर्म रुप प्रकाश के करता हैं, मोक्षपद को देने वाले हो और आत्मा के गुणों को धारण करने वाले हो ।

धर्मामृत उर जलधि सों ज्ञानभानु तुम रूप
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुं जग भूप ॥५॥

अन्वयार्थ : आपका हृदय धर्मरुपी अमृत के समुद्र के सामान है । आपका स्वरुप ज्ञान रुपी सूर्य के सामान है । निरंतर ज्ञान रूपी प्रकाश से प्रकाशित करने वाला है । आपके चरण-कमल को तीनों लोक के राजा (ऊर्ध्व लोक के राजा इंद्र, मध्य लोक के राजा-चक्रवर्ती और अधो लोक के राजा-धरणेन्द्र) नमस्कार करते हैं, निरंतर वंदना करते है !

मैं वंदौं जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव
कर्मबंध के छेदने, और न कछु उपाव ॥६॥

अन्वयार्थ : मै जिनेन्द्र देव की अत्यंत निर्मल भाव (राग-द्वेष छोड़कर) से वंदना करता हूँ क्योंकि आत्मा के साथ लगे कर्म बंध को नष्ट करने का अन्य कोई उपाय नहीं है ।

भविजन को भवकूप तैं, तुम ही काढ़नहार
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुण भंडार ॥७॥

अन्वयार्थ : आप ही भव्य जीवों को संसार रुपी कुए से निकालने वाले हैं, दीनों पर दया करने वाले, अनाथों के स्वामी और आत्मा के गुणों के भण्डार हैं । आपने अपनी आत्मा पर लगे कर्ममल रुपी धूल को धोकर / पवित्र कर संसार के भव्य जीवों को मोक्षमार्ग

बताकर सरल कर दिया है ।

चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल
सरल करी या जगत में भविजन को शिवगैल ॥८॥

अन्वयार्थ : आपने अपनी आत्मा पर लगे कर्ममल रुपी धूल को धोकर / पवित्र कर संसार के भव्य जीवों को मोक्षमार्ग बताकर सरल कर दिया है ।

तुम पदपंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय
शत्रु मित्रता को धरै, विष निरविषता थाय ॥९॥

अन्वयार्थ : आपके चरण कमलों को पूजने से

- समस्त आपत्तियां और रोग दूर हो जाते हैं,
- शत्रु मित्र हो जाते हैं,
- विष विष रहित हो जाता है,
- चक्रवर्ती, विद्याधर और इंद्रपद अपने आप प्राप्त होते हैं और
- नियम से क्रम से सम्पूर्ण पापों को नष्ट करके मोक्ष पद भी प्राप्त होता है ।

चक्री खगधर इंद्रपद, मिलैं आपतैं आप
अनुक्रमकर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप ॥१०॥

अन्वयार्थ : आपके चरण कमलों की पूजा करने वाले को चक्रवर्ती, विद्याधर और इंद्रपद अपने आप प्राप्त होते हैं और नियम से, क्रम से सम्पूर्ण पापों को नष्ट करके मोक्ष पद भी प्राप्त होता है ।

तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥११॥

अन्वयार्थ : हे भगवान, आपके बिना मै जल के बिना मछली के समान बड़ा व्याकुल हो रहा हूँ, मेरे जन्म-बुढ़ापे को नष्ट कर मुझको स्वतंत्र कर दीजिये ।

पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव
अंजन से तारे प्रभु, जय जय जय जिनदेव ॥१२॥

अन्वयार्थ : हे भगवान, आपने बहुत से पापियों को पवित्र कर दिया है उनकी गिनती कोई नहीं कर सकता है । अंजन चोर, सप्त व्यसन करने वाले, खोटी बुद्धि वाले को भी आपने पार करवा दिया (जिसने चोरी का त्याग कर दिगंबर मुद्रा धारण कर,मोक्ष प्राप्त किया) हे जिनेन्द्र भगवान् आपकी जय हो, आपकी जय हो, आपकी जय हो ।

थकी नाव भवदधिविषै, तुम प्रभु पार करेय
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव ॥१३॥

अन्वयार्थ : हे भगवन, मेरी नाव संसार रुपी समुद्र में अटक गयी है आप ही इसे पार कर सकते हैं । आप ही मल्लाह हो, मुझे संसार सागर को पार लगाने वाले आप ही हो (अन्य देवी-देवता तो स्वयं संसार सागर में डूबे हुए हैं, वे नहीं पार लगा सकते) आपकी जय हो, जय हो, जय हो भगवन !

रागसहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव
वीतराग भेंट्यो अबै, मेटो राग कुटेव ॥१४॥

अन्वयार्थ : राग (अपने शरीर, घर, स्त्री, पुत्र आदि से) सहित होने के कारण मै संसार में भटक रहा हूँ (क्योंकि मैंने अपनी आत्मा का वास्तविक ज्ञाता-द्रष्टा स्वरुप, इन से भिन्न नहीं समझा) । मुझे अभी तक रागी देव ही मिले, उनकी ही पूजा करने लगा अब मुझे वीतराग देव मिले है, आप मेरी खोटी आदत को मिटा दीजिये ।

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥१५॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान मैने कितनी पर्याय निगोद की, कितनी पर्याय नारकी की, कितनी पर्याय तिर्यच की एवं कितनी पर्याय अज्ञानावस्था में व्यतीत की । आज यह मनुष्य पर्याय धन्य हो गई जो हे जिनेन्द्र आपकी शरण प्राप्त कर ली ॥

तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव ॥१६॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आपकी पूजा इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती आदि करते है । आपकी सेवा-पुजा करने से मेरा भाग्य भी धन्य हो गया है ॥

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार
मैं डूबत भवसिंधु में, खेओ लगाओ पार ॥१७॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव अशरण को शरण देने वाले हो । जिनके जीवन का कोई आधार नही है उन्हे आधार देने वाले हो । हे भगवान मै भव रूपी समुद्र में डूब रहा हूँ । आप मेरी नाव चलाकर पार ला दीजिए ।

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान
अपनो विरद निहार के, कीजै आप समान ॥१८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान, आपकी स्तुति विनती करते-करते गणधर, और इन्द्र आदि भी थक गये है तब मैं कैसे आपकी विनती कर सकता हूँ । आप अपने यश को देखकर मुझे अपने समान बना लीजिए ।

तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उतरत है पार
हा हा डूब्यो जात हौं, नेक निहार निकार ॥१९॥

अन्वयार्थ : हे नाथ आपकी एक अच्छी दृष्टि से ही जीव संसार समुद्र के पार हो जाता है । हाय, हाय मै संसार समुद्र में डूब रहा हूँ एक बार सुदुष्टि से देखकर मुझे निकाल लीजिए ।

जो मैं कहहूं और सों, तो न मिटे उर भार
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार ॥२०॥

अन्वयार्थ : हे भगवान यदि मै अपने अन्तर्मन की वेदना किसी और से कहूँ तो वह वेदना मिटने वाली नही है, मेरी बिगड़ी तो आप ही बना सकते हो अत: मै आप ही से अपने दुखों को मिटाने की पुकार कर रहा हूँ ।

वन्दौं पांचो परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश ॥२१॥

अन्वयार्थ : गणधर भी जिनकी वंदना करते हैं उन पांचों परमेष्ठी (पंच परमगुरु) की वदना करता हूँ । आप पूर्ण उत्कृष्ट आत्म ज्योति (ज्ञान ज्योति) से प्रकाशित हो, आप विघ्नों का नाश करने वाले हो, और मंगल के करने वाले हो ।

चौबीसों जिनपद नमौं, नमौं शारदा माय
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय ॥२२॥

अन्वयार्थ : चौबीसों तीर्थकरों को नमन करता हूँ जिनवाणी माता को नमन करता हूँ और मोक्ष मार्ग की साधना करने वाले सर्व साधु को नमन कर सुख को देने वाले इस पाठ की रचना करता हूँ ।

विनय-पाठ-लघु

सफ़ल जन्म मेरा हुआ, प्रभु दर्शन से आज
भव समुद्र नहीं दीखता, पूर्ण हुए सब काज ॥१॥

दुर्निवार सब कर्म अरु, मोहादिक परिणाम
स्वयं दूर मुझसे हुए, देखत तुम्हें ललाम ॥२॥

संवर कर्मों का हुआ, शांत हुए गृह जाल
हुआ सुखी सम्पन्न मैं, नहीं आये मम काल ॥३॥

भव कारण मिथ्यात्व का, नाशक ज्ञान सुभानु
उदित हुआ मुझमें प्रभु, दीखे आप समान ॥४॥

मेरा आत्म स्वरूप जो, ज्ञानादिक गुण खान
आज हुआ प्रत्यक्ष सम, दर्शन से भगवान ॥५॥

दीन भावना मिट गई, चिंता मिटी अशेष
निज प्रभुता पाई प्रभो, रहा न दुख का लेश ॥६॥

शरण रहा था खोजता, इस संसार मंझार
निज आतम मुझको शरण, तुमसे सीखा आज ॥७॥

निज स्वरूप में मगन हो, पाऊँ शिव अभिराम
इसी हेतु मैं आपको, करता कोटि प्रणाम ॥८॥

मैं वन्दौं जिनराज को, धर उर समता भाव
तन-धन-जन जगजाल से, धरि विरागता भाव ॥९॥

यही भावना है प्रभो, मेरी परिणाति माहिं
राग द्वेष की कल्पना, किंचित उपजै नाहिं ॥१०॥

मंगलपाठ

मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरौं नित ध्यान
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान ॥१॥

अन्वयार्थ : परम पद को धारण करने वाले पंच परमेष्ठी मंगल स्वरूप हैं (मंगल की मूर्ती है) मै इनका सदा ध्यान करता हूँ । हे मंगलमय भगवान आप संसार के सभी अमंगलों का नाश कर दीजिए ।

मंगल जिनवर पदनमौं, मंगल अर्हन्त देव
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दौं स्वयमेव ॥२॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आपके मंगलकारी चरणों को नमन करता हूँ । अर्हन्त भगवान मंगलकारी हैं । सिद्ध भगवान (सिद्धपद) मंगलकारी हैं अत: मैं इनकी अपने मगल के लिए वन्दना करता हूँ ।

मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय
सर्व साधु मंगल करो, वन्दौं मन वच काय ॥३॥

अन्वयार्थ : दिगम्बर आचार्य मंगल स्वरूप हैं, उपाध्याय गुरु मंगल स्वरूप हैं एवं सभी साधु मंगल के करने वाले हैं । मैं इनकी मन वचन काय से वन्दना करता हूं ।

मंगल सरस्वती मातका, मंगल जिनवर धर्म
मंगल मय मंगल करो, हरो असाता कर्म ॥४॥

अन्वयार्थ : जिनवाणी माता मंगल स्वरूप हैं जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया धर्म मंगलकारी है | हे मंगलमय जिनेन्द्र भगवान मेरे असाता कर्म का क्षय करके मुझे मंगलमय कीजिए ।

या विधि मंगल से सदा, जग में मंगल होत
मंगल नाथूराम यह, भव सागर दृढ़ पोत ॥५॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार मंगल करने से संसार में मंगल होता है । श्री नाथूराम जी कवि कहते है कि यह मंगल पाठ (विनयपाठ) भवरूपी समुद्र को पार करने के लिए मजबूत नाव के समान है ।

भजन-मैं-थाने-पूजन-आयो

श्री जी मैं थाने पूजन आयो, मेरी अरज सुनो दीनानाथ ! ॥श्री जी॥

जल चन्दन अक्षत शुभ लेके ता में पुष्प मिलायो ॥श्री जी॥

चरु अरु दीप धूप फल लेकर, सुन्दर अर्घ बनायो ॥श्री जी॥

आठ पहर की साठ जु घड़ियां, शान्ति शरण तोरी आयो ॥श्री जी॥

अर्घ बनाय गाय गुणमाला, तेरे चरणन शीश झुकायो ॥श्री जी॥

मुझ सेवक की अर्ज यही है, जामन मरण मिटावो,
मेरा आवागमन छुटावो, ॥श्री जी॥

पूजा-विधि-प्रारंभ

ॐ जय! जय!! जय!!!
नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

अरहंतों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वन्दन
आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन ॥
और लोक के सर्वसाधुओं को है, विनय सहित वन्दन

पंच-परम-परमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वन्दन ॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः (पुष्पांजलि क्षेपण करें)

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ॥

मंगल चार, चार हैं उत्तम, चार शरण को मैं पाऊँ
मन, वच, काय-त्रियोगपूर्वक, शुद्ध भावना मैं भाऊँ ॥
श्री अरहंत देव मंगल हैं, श्री सिद्धप्रभु ! हैं मंगल
श्री साधु मुनि मंगल हैं, है केवलि कथित धर्म मंगल ॥
श्री अरहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में हैं उत्तम
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम ॥
श्री अरहंत शरण में जाऊँ, सिद्ध शरण में मैं जाऊँ
साधु शरण में जाऊँ, केवलि कथित धर्म शरणा पाऊँ ॥
मंगल..उत्तम..शरण..लोक में श्री अरहंत सु सिद्ध महान
साधु सु केवलि कथित धर्म को भव-भव ध्या पाऊँ निर्वाण ॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा (पुष्पांजलि क्षेपण करें)
अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥

अन्वयार्थ : पंच नमस्कार मंत्र का ध्यान करने से पुरुष सब पापों से छूट जाता है चाहे ध्यान करते समय वह पवित्र हो अपवित्र हो या अच्छी जगह हो या बुरी जगह हो ।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥२॥

अन्वयार्थ : शरीर चाहे स्नानादिक से पवित्र हो अथवा किसी अशुचिपदार्थ के स्पर्श से अपवित्र हो तथा सोती जागती उठती बैठती चलती आदि कोई भी दशा हो इन सभी दशाओं में जो पुरुष परमात्मा की (पंच परमेष्ठी) स्मरण करता है वह उस समय बाह्य और अभ्यतन्तर से (शरीर और मन) पवित्र है ।

अपराजित-मंत्रोऽयं, सर्व-विघ्न-विनाशनः
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंलमं मतः ॥३॥

अन्वयार्थ : यह नमस्कार मंत्र किसी मंत्र से पराजित नही हो सकता इसलिए यह मंत्र अपराजित मंत्र है यह मंत्र सभी विघ्नों को नष्ट करने वाला है एवं सर्व मंगलों में यह प्रधान मंगल है ।

एसो पंच-णमोयारो, सव्व-पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ॥४॥

अन्वयार्थ : यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है यह सब कार्यों के लिए मंगल रूप है और सब मगलों में पहला मगल है ।

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः
सिद्धचक्रस्य सद् बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥

अन्वयार्थ : अर्हं ये अक्षर परबह्म परमेष्ठी के वाचक हैं और सिद्ध समूह के सुन्दर बीजाक्षर है । मैं इनको मन वचन काय से नमस्कार करता हूं ।

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥

अन्वयार्थ : आठ कर्मों से रहित तथा मोक्ष रूपी लक्ष्मी के मंदिर और सम्यक्, दर्शन, ज्ञान, अगु रुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व अव्याबाध, वीर्यत्व इन आठ गुणों से सहित सिद्ध भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी भूत पन्नगाः
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥
(पुष्पांजलि क्षेपण करें)

अन्वयार्थ : अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवान का स्तवन करने से विघ्नों के समूह नष्ट हो जाते हैं एवं शाकनि, डाकनी, भूत, पिशाच, सर्प, सिंह, अग्नि, आदि का भय नहीं रहता और बड़े हलाहल विष भी अपना असर त्याग देते हैं ।

अर्घ

पंच कल्याणक अर्घ्य
उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः
धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे कल्याणकमहं यजे ॥
अर्थ- जल, चन्दन, अक्षत्, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्घ्य से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में (भगवान के) कल्याणकों की पूजा करता हूँ
ॐ ह्रीं श्रीभगवतो गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण पंचकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचपरमेष्ठी का अर्घ्य
उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः
धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥
अर्थ- जल, चन्दन, अक्षत्, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्घ्य से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में पाँचों परमेष्ठियों की पूजा करता हूँ
ॐ ह्रीं श्रीअर्हंत-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री जिनसहस्रनाम - अर्घ्य
उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः
धवल-मंगल-गान-रवाकुले जिनगृहे जिननाममहं यजे ॥

अर्थ- जल, चन्दन, अक्षत्, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल व अर्घ्य से, धवल-मंगल गीतों की ध्वनि से पूरित मंदिर जी में श्रीजिनेंद्र देव के 1008 गुण-नामों की पूजा करता हूँ

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिन अष्टाधिक सहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

स्वस्ति-मंगल-विधान

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशम्
स्याद्वाद-नायक-मनंत-चतुष्टयार्हम् ॥
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतुर
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥१॥

अन्वयार्थ : मैं तीन लोक के स्वामी स्याद्वाद विध्या के नायक पदार्थों के अनेकान्त (अनेक धर्मो) को प्रकट करने में अग्रसर अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्यादि, अनंत चतुष्टायादि अन्तरंग लक्ष्मी एवं अष्ट प्रातिहार्य समवशरणादि बहिरंग लक्ष्मी से युक्त जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके मूलसंघ (श्री कुन्द कुन्द स्वामी की परम्परा के अनुसार) सम्यक् दृष्टि पुरुषों के लिए पुण्य बंध का प्रधान कारण ऐसी जिन पूजा की विधि को कहता हूँ ।

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुंगवाय
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय ॥
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्ज्जित दृंगमयाय
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद् भुत-वैभवाय ॥२॥

अन्वयार्थ : तीन लोक के गुरु जिन प्रधान (कषायों को जीतने वाले मुनीश्वरों के स्वामी) के लिए कल्याण होवे । स्वाभाविक महिमा अर्थात् अनंत चतुष्टयादि में भले प्रकार ठहरे हुए भगवान के लिए मंगल होवे । स्वाभाविक प्रकाश अर्थात् केवल ज्ञान रूपी प्रकाश से बढ़े हुए केवल दर्शन से सहित जिनेन्द्र भगवान के लिए क्षेम होवे । उज्जल सुन्दर एवं अद्भुत समवशरणादि वैभव के धारक जिनेन्द्र भगवान के लिए मगलकारी होवे ।

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध-सुधा-प्लवाय
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय ॥
स्वस्ति त्रिलोक-विततैक-चिदुद्गमाय
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय ॥३॥

अन्वयार्थ : उछलते हुए निर्मल केवल ज्ञान रूपी अमृत के प्रवाह वाले जिनेन्द्र भगवान के लिए कल्याण होवे । स्वभाव और परभाव के प्रकाशक जिनेन्द्र भगवान के लिए मंगल होवे । तीनों लोकों को जानने वाले केवल ज्ञान के स्वामी जिनेन्द्र भगवान के लिए क्षेम होवे । त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों में ज्ञान के द्वारा फैले हुए जिनेन्द्र भगवान के लिए कल्याणकारी होवे ।

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरुपम्
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः ॥
आलंबनानि विविधान्यवलम्बय वल्गन्
भूतार्थ यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥४॥

अन्वयार्थ : अपने भावों की परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं देशकाल के अनुरूप जल चन्दनादि की शुद्धता को पाकर जिन स्तवन, जिन बिम्ब दर्शन, ध्यान आदि अवलम्बनों का आश्रय लेकर सच्चे पूज्य पुरुष अरहंतादिक की पूजा करता हूँ ।

अर्हत्पुराण - पुरुषोत्तम - पावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ॥
अस्मिन् ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥५॥

ॐ ह्रीं विधियज्ञ प्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि

अन्वयार्थ : हे अर्हन्! हे पुराण पुरुष! हे उत्तम पुरुष यह असहाय मैं, इन पवित्र समस्त जलादिक द्रव्यों का आलम्बन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवल ज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्र चित्त होकर हवन करता हूँ ।

चतुर्विंशति-तीर्थंकर-स्वस्ति-विधान

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः
श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनंदनः
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः
श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः
श्रीश्रेयान्सः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः
श्रीविमल: स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनंतः
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः
श्रीकुंथुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरहनाथः
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः

इति श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर- स्वस्ति मंगल विधानं पुष्पांजलिं क्षिपामि

अथ-परमर्षि-स्वस्ति-मंगल-विधान

18 बुद्धि ऋद्धियाँ

तर्ज : छुपा लो आँचल में प्यार

नित्याप्रकंपाद्भुत-केवलौघाः, स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥

अन्वयार्थ : अविनाशी अचल अद्भुत केवल ज्ञान के धारक मुनिराज, दैदीप्यमान मन: पर्यय ज्ञान रूप शुद्ध ज्ञान वाले मुनिराज और दिव्य अवधिज्ञान के बल से प्रबुद्ध महा ऋद्धि धारी ऋषि हमारा कल्याण करें ।

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं, संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥

अन्वयार्थ : कोष्ठ-बुद्धि, एक बीज, संभिन संश्रोतृत्व और पादानुसारणी इन चार प्रकार की बुद्धि ऋद्धि को धारण करने वाले ऋषीराज हम सबका मंगल करें । 4) कोष्ठ-बुद्धि ऋद्धि - जिस प्रकार भंडार में हीरा, पन्ना पुखराज चाँदी सोना धान्य आदि जहाँ रख दिए जावे बहुत समय बीत जाने पर यदि वे निकाले जावे तो जैसे के तैसे न कम न अधिक भिन्न भिन्न उसी स्थान पर रखे मिलते हैं तैसे ही सिद्धान्त न्याय व्याकरणादि के सूत्र गद्य पद्य ग्रन्थ जिस प्रकार पढे थे सुने थे पढाये अथवा मनन किए थे बहुत समय बीत जाने पर भी यदि पूछा जाए तो न एक भी अक्षर घट कर, न बढ़कर, न पलट कर, भिन्न-भिन्न ग्रन्थों को सुना दे ऐसी शक्ति । 5) एक बीज ऋद्धि - ग्रन्थों के एक बीज अर्थात् मूल पद के द्वारा उसके अनेक प्रकार के अर्थों को जान लेना । 6) संभिन संश्रोतृत्व ऋद्धि - बारह योजन लम्बे नौ योजन चौड़े क्षेत्र में ठहरने वाली चक्रवर्ती की सेना के हाथी, घोडा, ऊँट, बैल, पक्षी, मनुष्य आदि सभी के अक्षर अनक्षर रूप नाना प्रकार के शब्दों को एक साथ अलग अलग सुनने की शक्ति । 7) पादानुसारणी ऋद्धि - ग्रन्थ के आदि के, मध्य के या अन्त के एक पद को सुनकर सम्पूर्ण ग्रन्थ को कह देने की शक्ति । 8) दूर-स्पर्शन ऋद्धि - मनुष्य यदि दूर से स्पर्शन करना चाहे

तो अधिक से अधिक नौ योजन दूरी के पदार्थों का स्पर्शन जान सकता है । किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूरवर्ती पदार्थ का स्पर्शन कर लेते है ।

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि
दिव्यान् मतिज्ञान-बलाद्वहंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥३॥

अन्वयार्थ : दिव्य मति ज्ञान के बल से दूर से ही स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, घाण और अवलोकन रूप पाँच इन्द्रियों के विषयों धारण करने वाले ऋषीराज हम लोगों का कल्याण करें । 9) दूर-श्रवण ऋद्धि - मनुष्य यदि दूरवर्ती शब्द को सुनना चाहे तो बारह योजन तक के दूरवर्ती शब्द सुन सकता है अधिक नहीं, किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञादि के बल से संख्यात योजन दूरवर्ती शब्द सुन लेते हैं । 10) दूर-आस्वादन ऋद्धि - मनुष्य अधिक से अधिक नौ योजन दूर पदार्थो का रस जान सकता है किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूर स्थित पदार्थ का रस जान लेते हैं । 11) दूर-घ्राण ऋद्धि - मनुष्य अधिक से अधिक नौ योजन दूर स्थित पदार्थ की गंध ले सकता है किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से संख्यात योजन दूर स्थित पदार्थो की गंध जान लेते हैं । 12) दूर-अवलोकन ऋद्धि - मनुष्य अधिकतम सैतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन दूर स्थित पदार्थ को देख सकता है, किन्तु मुनिराज दिव्य मतिज्ञानादि के बल से हजारों योजन दूर स्थित पदार्थो को देख लेते है ।

प्रज्ञा-प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येकबुद्धाः दशसर्वपूर्वैः
प्रवादिनोऽष्टांग-निमित्त-विज्ञाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥४॥

अन्वयार्थ : प्रज्ञा, श्रमण, प्रत्येकबुद्ध, अभिन्न दशपूर्वी, चतुर्दशपूर्वी, प्रवादित्व, अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता मुनिवर हमारा कल्याण करें । 13) प्रज्ञा श्रमणत्व ऋद्धि - जिस ऋद्धि के बल से पदार्थो के अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों को जिनको की केवली एवं श्रुत केवली ही बतला सकते हैं द्वादशांग चौदह पूर्व पढ़े बिना ही बतला देते हैं । 14) प्रत्येक बुद्ध ऋद्धि - अन्य किसी के उपदेश के बिना ही जिस शक्ति के द्वारा ज्ञान संयम व्रत का विधान निरुपण किया जाता है । 15) दशपूर्वित्व ऋद्धि - दसवॉ पूर्व पढने से अनेक महा विद्याओं के प्रकट होने पर भी चारित्र से चलायमान नहीं होना । 16) चतुर्दशपूर्वित्व ऋद्धि - सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान प्राप्त हो जाना । 17) प्रवादित्व ऋद्धि - जिस शक्ति के द्वारा क्षुद्रवादियों की तो क्या यदि इन्द्र भी शास्त्रार्थ करने आए तो उसे भी निरुत्तर कर दे । 18) अष्टांग महानिमित्त ऋद्धि - अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यञ्जन लक्षण, छिन्न स्वप्न इन आठ महा निमित्तों का ज्ञान ।

नौ चारण ऋद्धियाँ

जंघा-वह्नि-श्रेणि-फलांबु-तंतु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वाः
नभोऽगंण-स्वैर-विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥५॥

अन्वयार्थ : जंघा, अग्नि शिखा, श्रेणी, फल, जल, तन्तु, पुष्प, बीज, और अंकुर पर चलने वाले चारण बुद्धि के धारक तथा आकाश में स्वच्छ विहार करने वाले मुनिराज हमारा कल्याण करें । 1) जंघा चारण ऋद्धि - पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर आकाश में जंघा को बिना उठाये सैकडों योजन गमन करने की शक्ति । 2) अग्नि शिखाचारण ऋद्धि - अग्नि शिखा पर गमन करने से अग्नि शिखाओं में स्थित जीवों की विराधना नहीं होती । 3) श्रेणी चारण ऋद्धि - आकाश श्रेणी में गमन करते हुए सब जाति के जीव की रक्षा करना । 4) फल चारण ऋद्धि - आकाश में गमन करते हुए फलों पर भी चले तो भी किसी प्रकार जीवों की हानि नहीं होती । 5) जल चारण ऋद्धि - जल पर गमन करने से भी जीवों की हिंसा न हो । 6) तन्तु चारण ऋद्धि - तन्तु अर्थात् मकड़ी के जाले के समान तन्तुओं पर भी चले तो वे टूटते नहीं । 7) पुष्प चारण ऋद्धि - फूलों पर गमन करने से उनमें स्थित जीवों की विराधना नहीं होती । 8) बीजांकुर चारण ऋद्धि - बीजरूप पदार्थो एवं अंकुरों पर गमन करने से उन्हें किसी प्रकार हानि नहीं होती । 9) नभ चारण ऋद्धि - कायोत्सर्ग की मुद्रा में पद्मासन या खडगासन में गमन करना ।

तीन बल ऋद्धियाँ

अणिम्नि दक्षाः कुशलाः महिम्नि,लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६॥

अन्वयार्थ : अणिमा, महिमा, लघिमा और गरिमा ऋद्धि में कुशल तथा मन, वचन, काय बल ऋद्धि के धारक मुनिराज हमारा कल्याण करें । 1) मन बल ऋद्धि - अन्तर्मुहूर्त में ही समस्त द्वादशांग के पदार्थो को विचार लेना । 2) वचन बल ऋद्धि - सम्पूर्ण श्रुत का अन्तर्मुहूर्त में पाठ कर लेना फिर जिव्हा, कंठ आदि में शुष्कता एवं थकावट न होना । 3) काय बल ऋद्धि एक मास चातुर्मासिक आदि बहुत समय तक कायोत्सर्ग करने पर भी शरीर का बल कान्ति आदि थोड़ा भी कम न होना एवं तीनों लोकों को कनिष्ठ अंगुली पर उठाने की सामर्थ्य का होना । 1) अणिमा ऋद्धि - परमाणु के समान अपने शरीर को छोटा बना लेना । 2) महिमा ऋद्धि - सुमेरु पर्वत सें भी बड़ा शरीर बना लेना । 3) लघिमा ऋद्धि - वायु से भी हल्का शरीर बना लेना । 4) गरिमा ऋद्धि - वज्र से भी भारी शरीर बना लेना ।

ग्यारह विक्रिया ऋद्धियाँ

सकामरुपित्व-वशित्वमैश्यं, प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥

अन्वयार्थ : कामरुपित्व, वशित्व, ईशित्व, प्राकम्य, अन्तर्धान, आप्ति तथा अप्रतिघात विक्रिया ऋद्धि से सम्पन्न मुनिराज हमारा कुशल करें । 5) कामरुपित्व ऋद्धि - एक साथ अनेक आकार वाले अनेक शरीरों को बना लेना। 6) वशित्व ऋद्धि - तप बल से सभी जीवों को अपने वश में कर लेना। 7) ईशित्व ऋद्धि - तीन लोक की प्रभुता होना । 8) प्राकम्य ऋद्धि - जल में पृथ्वी की तरह और पृथ्वी में जल की तरह चलना 9) अन्तर्धान ऋद्धि - तुरन्त अदृश्य होने की शक्ति । 10) आप्ति ऋद्धि - भूमि पर बैठे हुए ही अंगुली से सुमेरू पर्वत की चोटी सूर्य और चन्द्रमा को छू लेना । 11) अप्रतिघात ऋद्धि - पर्वतों के मध्य से खुले मैदान के समान आना-जाना रुकावट न आना ।

सात तप ऋद्धियाँ

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोर पराक्रमस्थाः
ब्रह्मापरं घोर गुणाश्चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥

अन्वयार्थ : दीप्ति, तप्त, महाउग्र, घोर तप, और घोर पराक्रम, के तथा अघोर-ब्रह्मचर्य इन सात तप ऋद्धि के धारी मुनिराज हमारा कल्याण करें । 1) दीप्ति ऋद्धि - बड़े-बड़े उपवास करते हुए भी मनोबल, वचन बल का यवल का बढ़ना शरीर में सुगंधि आना, सुगंधित निश्वास निकलना, तथा शरीर में म्लानता न होकर महा कान्ति का होना । 2) तप्त ऋद्धि - भोजन से मलमूत्र रक्त मांस आदि का न बनना गरम कढ़ाही में पानी की तरह सूख जाना । 3) महाउग्र ऋद्धि - एक दो चार छह पक्ष मास उपवास आदि में से किसी एक को धारण करके मरण पर्यन्त न छोड़ना । 4) घोर तप ऋद्धि - भयानक रोगों से पीड़ित होने पर भी उपवास व काय क्लेश आदि से नहीं हटना । 5) घोर पराक्रम ऋद्धि - दुष्ट राक्षस पिशाच के निवास स्थान भयानक जानवरों से व्याप्त पर्वत, गुफा श्मशान सूनें गाँव में निवास करने वाले समुद्र के जल को सुखा देना एवं तीनों लोकों को उठा के फैंक देने की सामर्थ्य । 6) महाघोर ऋद्धि - सिंह निक्रीडित आदि महा उपवासों को करते रहना । 7) अघोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि - चिरकाल तक तपश्चरण करने के कारण स्वप्न में भी ब्रह्मचर्य से न डिगना आदि विकार परिस्थिति मिलने पर भी ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहना ।

आठ औषधि ऋद्धियाँ

आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशीर्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च
स-खिल्ल-विड्ज्जल-मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥९॥

अन्वयार्थ : आमर्शोषधि, सर्वोषधि, आशीअविष, दृष्टि विष, क्ष्वेलौषधि, विडौषधि, जल्लौषधि, मलौषधि, आशीविष रस, दृष्टि विष रस के धारी परम ऋषि हमारा कल्याण करें । ८ औषधि ऋद्धि 1) आमर्शोषधि ऋद्धि - जिनके हाथ पैर आदि को छूने से एवं समीप आने मात्र से ही सब रोग दूर हो जाए । 2) सर्वोषधि ऋद्धि - जिनके समस्त शरीरके स्पर्श करने वाली वायु ही समस्त रोगो को दूर कर देती है । 3) आशीअविष ऋद्धि - महाविष व्याप्त पुरुष भी जिनके आशीर्वाद रूप शब्द सुनने से निरोग या निर्विष हो जाता है । 4) दृष्टि (दृष्टिनिर्विष) विष ऋद्धि - महाविष व्याप्त पुरुष भी जिनकी दृष्टि से निर्विष हो जाए । 5) क्ष्वेलौषधि ऋद्धि - जिनके थूक, कफ आदि से लगी हुई हवा के स्पर्श से ही रोग दूर हो जावे । 6) विडौषधि ऋद्धि - जिनके मल (विष्ठा) से स्पर्श की हुई वायु ही रोग नाशक हो । 7) जल्लौषधि ऋद्धि - जिनके शरीर के पसीने में लगी हुई धूल महारोग नाशक होती है । 8) मलौषधि ऋद्धि - जिनके दांत, कान, नाक, नेत्र आदि का मैल सर्व रोग नाशक होता है । ६ रस ऋद्धि 1) आशीविष रस ऋद्धि - जिन मुनि के कर्म उदय से क्रोधपूर्वक मर जाओ शब्द निकल जाय तो वह व्यक्ति तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । 2) दृष्टि विष रस ऋद्धि - मुनि की क्रोध पूर्ण दृष्टि जिस व्यक्ति पर पड़ जाये वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

छह रस ऋद्धियाँ एवं दो अक्षीण ऋद्धियाँ

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतः, मधु स्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः
अक्षीणसंवास-महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१०॥

अन्वयार्थ : क्षीरस्रावी, धृतस्रावी, मधुस्रावि, अमृतस्रावि तथा अक्षीण संवास और अक्षीण महानस ऋद्धि धारी मुनिवर हमारे लिए मंगल करें । 3) क्षीरस्रावी ऋद्धि - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही दूध के समान गुणकारी हो जावे अथवा जिनके वचन सुनने से क्षीण पुरुष भी दूध के समान बल को प्राप्त करे । 4) धृतस्रावी ऋद्धि - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही घी के समान बलवर्धक हो जाए एवं जिनके वचन धृत के समान तृप्ति करें । 5) मधुस्रावि ऋद्धि - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही मधुर हो जाए अथवा जिनके वचन सुनकर दुःखी प्राणी भी साता का अनुभव करे । 6) अमृतस्रावि ऋद्धि - नीरस भोजन भी जिनके हाथों में आते ही अमृत के समान पुष्टि कारक हो जाए अथवा जिनके वचन अमृत के समान आरोग्य कारी हो । २ अक्षीण ऋद्धि 1) अक्षीण संवास ऋद्धि - जिनके निवास स्थान में इन्द्र, देव, चक्रवर्ती की सेना भी बिना किसी परस्पर विरोध के ठहर सके उसे अक्षीण संवास ऋद्धि कहते है । 2) अक्षीण महानस ऋद्धि - ऋद्धिधारी मुनिराज जिस पात्र आहार करे उस दिन उस पात्र में बचा हुआ आहार चक्रवर्ती की सेना भी कर जाये तब भी आहार कम नहीं पड़े ।

स्तुति-बुधजनजी

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी ॥१॥

तुम ना पिछान्या अन्य मान्या, देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥२॥

भव विकट वन में करम बैरी, ज्ञानधन मेरो हरयो ।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयो ॥३॥

धन्य घड़ी यो, धन्य दिवस यो ही, धन्य जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो ॥४॥

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं ।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण युत, कोटि रवि छवि को हरैं ॥५॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हर्ष ऐसो भयो, मनो रंक चिंतामणि लयो ॥६॥

मैं हाथ जोड़ नवाऊं मस्तक, वीनऊं तुव चरणजी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारण तरण जी ॥७॥

जाचूं नहीं सुर-वास पुनि, नर-राज परिजन साथ जी ।
'बुध' जाचहूं तुव भक्ति भव भव, दीजिए शिवनाथ जी ॥८॥

देव-शास्त्र-गुरु-युगलजी

केवल रवि किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अंतर
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुंदरतम दर्शन
सद्दर्शन बोध चरण पथ पर, अविरल जो बढते हैं मुनि गण
उन देव परम आगम गुरु को, शत-शत वंदन शत-शत वंदन ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

इन्द्रिय के भोग मधुर-विष सम, लावण्यमयी कंचन काया
यह सब कुछ जड़ की क्रीडा है, मैं अब तक जान नहीं पाया
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ

अब निर्मल सम्यक नीर लिए, मिथ्या-मल धोने आया हूँ ॥
ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने में होती है
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढाया है
संतप्त हृदय प्रभु चंदन सम, शीतलता पाने आया है ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

उज्ज्वल हूँ कुंद धवल हूँ प्रभु, पर से न लगा हूँ किंचित भी
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरंतर ही
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खंडित काया
निज शाश्वत अक्षत निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नही
निज अंतर का प्रभु भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नही
चिन्तन कुछ फिर संभाषण कुछ, किरिया कुछ की कुछ होती है
स्थिरता निज में प्रभु पाऊं जो, अंतर-कालुश धोती है ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु भूख न मेरी शांत हुई
तृष्णा की खाई खूब भारी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु ! गोते खाता आया हूँ
पंचेन्द्रिय मन के षटरस तज, अनुपम रस पीने आया हूँ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जग के जड़ दीपक को अब तक मैंने समझा था उजियारा
झंझा कि एक झकोरे में जो बनता घोर तिमिर कारा
अतएव प्रभो ! यह नश्वर-दीप, समर्पित करने आया हूँ
तेरी अंतर-लौ से निज अंतर, दीप जलाने आया हूँ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

जड-कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या-भ्रांति रही मेरी
मैं राग-द्वेष किया करता, जब परिणति होती जड़ केरी
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ

निज अनुपम गंध अनल से प्रभु, पर-गंध जलाने आया हूँ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्ट कर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड मुझे चल देता है
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है
मैं शांत निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचर मेरी
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु सार्थक फल पूजा तेरी ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

क्षण भर निज रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है
काषायिक-भाव विनष्ट किये, निज आनन्द-अमृत पीता है
अनुपम-सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निज-गुण का अर्घ्य बनाऊंगा
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अर्हन्त अवस्था पाउंगा ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

भव वन में जी भर घूम चुका, कण कण को जी भर भर देखा
मृग सम मृग तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा ॥

झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएं
तन जीवन यौवन अस्थिर है, क्षण-भंगुर पल में मुरझाए ॥

सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या
अशरण मृत काया में हर्षित, निज-जीवन डाल सकेगा क्या ॥

संसार महा दुख-सागर के, प्रभु दुखमय सुख-आभासों में
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन कामिनी प्रासादों में ॥

मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड चले जाते ॥

मेरे न हुए ये मैं इनसे, अति भिन्न अखंड निराला हूँ
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीने वाला हूँ ॥

जिसके श्रंगारों में मेरा, यह महंगा जीवन घुल जाता
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता ॥

दिन रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता ॥

शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल
शीतल समकित किरण फूटें, सँवर से जाग अन्तर्बल ॥

फिर तप की शोधक वन्हि जगे, कर्मों की कड़ियाँ फूट पड़ें
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें ॥

हम छोड चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा
निज-लोक हमारा वासा हो, शोकान्त बनें फिर हमको क्या ॥

जागे मम दुर्लभ बोधी प्रभो, दुर्नयतम सत्वर टल जावे
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊं, मद-मत्सर-मोह विनश जावे ॥

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर-साथी
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी ॥

चरणों में आया हूँ प्रभुवर, शीतलता मुझको मिल जावे
मुरझाई ज्ञानलता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे ॥

सोचा करता हूँ भोगों से, बूझ जावेगी इच्छा ज्वाला
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला ॥

तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय-सुख को ही अभिलाषा
अब तक न समझ है पाया प्रभु, सच्चे-सुख की भी परिभाषा ॥

तुम तो अविकारी हो प्रभुवर, जग में रहते जग से न्यारे
अतएव झुक तव चरणों में, जग के माणिक मोती सारे ॥

स्याद्वाद मयी तेरी वाणी, शुभ-नय के झरने झरते हैं
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भाव वारिधि तिरते हैं ॥

हे गुरुवर शाश्वत-सुख दर्शक, यह नग्न-स्वरूप तुम्हारा है
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है ॥

जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कन्टक बोता हो ॥

हो अर्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों
तब शांत निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिन्तन करते हो ॥

करते तप शैल नदी तट पर, तरुतल वर्षा की झड़ियों में
समता रस पान किया करते, सुख दुख दोनों की घडियों में ॥

अन्तर्ज्वाला हरती वाणी, मानों झरती हों फुलझडियाँ
भव-बंधन तड-तड टूट पड़ें, खिल जावें अंतर की कलियां ॥

तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियां
दिन रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

हे निर्मल देव तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान-दीप आगम प्रणाम
हे शांति त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर प्रणाम ॥

इत्याशिर्वादः
॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥

देव-शास्त्र-गुरु-द्यानतरायजी

प्रथम देव अरहंत, सुश्रुत सिद्धांत जू
गुरु निर्ग्रन्थ महन्त, मुकतिपुर पन्थ जू ॥
तीन रतन जग मांहि सो ये भवि ध्याइये
तिनकी भक्ति प्रसाद परमपद पाइये ॥

पूजौं पद अरहंत के, पूजौं गुरुपद सार
पूजौं देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरु-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सुरपति उरग नरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपद-प्रभा ।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्र घट भरि अग्र तसु बहुविधि नचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धांत, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मल छीन
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जे त्रिजग उदर मंझार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन सरस चंदन घिसि सचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

चंदन शीतलता करे, तपत वस्तु परवीन
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

यह भवसमुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई
अति दृढ़ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही
उज्ज्वल अखंडित शालि तंदुल पुंज धरि त्रय गुण जचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

तंदुल शालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भान हैं
जे एक मुख चारित्र भाषत त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥

लहि कुंद कमलादिक पुहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अति सबल मद-कंदर्प जाको क्षुधा-उरग अमान है
दुस्सह भयानक तासु नाशन को सु गरुड़ समान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जे त्रिजगउद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली
तिंहि कर्मघाती ज्ञानदीप प्रकाश ज्योति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचन के सुभाजन में खचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

स्वपरप्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

जे कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै
वर धूप तासु सुगन्धता करि, सकल परिमलता हंसै ॥
इह भांति धूप चढ़ाय नित भव ज्वलनमाहिं नहीं पचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

अग्निमांहि परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्ट कर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं

मोपै ब उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रस लीन |
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरुं
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनम के पातक हरुं ॥
इहि भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं
अरहंत, श्रुत-सिद्धान्त, गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

वसुविधि अर्घ संजोय के, अति उछाह मन कीन
जासों पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥१॥

पद्धरि छन्द
कर्मन की त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छयालिस गुणगंभीर ॥२॥
शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इंद्र नमत कर सीस धार
देवाधिदेव अरहंत देव, वंदौं मन-वच-तन करि सुसेव ॥३॥
जिनकी ध्वनि ह्वै ओंकाररुप, निर-अक्षर मय महिमा अनूप
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥४॥
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सुअंग
रवि शशि न हरें सो तम हराय, सो शास्त्र नमौं बहु प्रीति ल्याय ॥५॥
गुरु आचारज उवझाय साधु, तन नगन रतनत्रय-निधि अगाध
संसारदेह वैराग्य धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥६॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठबीस, भवतारन तरन जिहाज ईस
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरु-नाम जपौं मन-वचन-काय ॥७॥

सोरठा

कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरे
द्यानत सरधावान, अजर अमरपद भोगवे ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीजिन के परसाद तें, सुखी रहें सब जीव
या तें तन मन वचन तें, सेवो भव्य सदीव ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षेपत्)

पंचपरमेष्ठी-पवैयाजी

अरहन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन ॥
मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन ॥
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधि करणं

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ ॥
मैं जन्म-जरा-मृतु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

संसार-ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाये हैं ॥
शीतल चंदन है भेंट तुम्हें, संसार-ताप नाशो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

दु:खमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही
शुभ-अशुभ भाव की भँवरों में चैतन्य शक्ति निज अटक रही ॥
तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मैं काम-व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुमको पाकर मन हर्षाया ॥
मैं काम-भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मैं क्षुधा-रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ ॥
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा-रोग मेटो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्त्ता माना
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना ॥
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल
संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल ॥
यह धूप चढ़ाकर अब आठों कर्मों का हनन करूँ स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का ॥
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ
अबतक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अरहन्त देव को नमस्कार ॥१॥
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कार ॥२॥
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार
हे मुक्तिवधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार ॥३॥
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार ॥४॥
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार ॥५॥
बहु पुण्यसंयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरण दर्शन
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन ॥६॥
निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ
अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ ॥७॥
निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ ॥८॥
जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा
तब चार घातिया क्षय करके, अरहन्त महापद पाऊँगा ॥९॥
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु! कब इसको पाऊँगा
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव में आऊँगा ॥१०॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु! मैंने की है पूजन
तबतक चरणों में ध्यान रहे, जबतक न प्राप्त हो मुक्ति सदन ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन! अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ ॥१२॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

नवदेवता-पूजन-आर्यिका-ज्ञानमती

(आर्यिका ज्ञानमती कृत)

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक साधू त्रिभुवनवन्द्य हैं
जिनधर्म जिनागम जिनेश्वरा मूर्ति जिनग्रह वन्द्य हैं ॥
नवदेवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें
आहवन कर थापें यहाँ, मन में अतुल श्रद्धा धरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालये-समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगानदी का नीर निर्मल बाह्य मल धोवे सदा
अंतर मलों के क्षालने को नीर से पूजूं मुदा ॥
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योजन्म-जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर मिश्रित गंध चन्दन, देह ताप निवारता
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरन्त ही वारता
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योसंसार-ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

क्षीरोदधि के फेन सम, सित तन्दुलों को लायके
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सुचढाय के
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योअक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

चंपा चमेली केवडा, नाना सुगन्धित ले लिए
भव के विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योकाम-बाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में
निज आत्म अमृत सौख्य हेतु, पूजहूँ नत भाल मैं
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योक्षुधा-रोग विनाशनाय नैवेध्यम निर्वपामीति स्वाहा

करपूर ज्योति जगमगे दीपक, लिया निज हाथ में
तुअ आरती तम वारती, पाऊं सुज्ञान प्रकाश मैं
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योमोह-अन्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दश गंध धुप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊं सदा
निज आत्मगुण सौरभ उठे, हो कर्म सब मुझसे विदा
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योअष्ट-

कर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अंगूर अमरख आम अमृत, फल भराऊँ थाल में
उत्तम अनुपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूं आज मैं
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योमहा-मोक्ष-फल प्राप्ताये निर्वपामीति स्वाहा

जल गंध अक्षत पुष्प चरू, दीपक सुधूप फलार्घ ले
वर रत्नत्रय निधि लाभ यह बस अर्घ से पूजत मिले
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें ॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योअनर्घ पद प्राप्ताये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

दोहा-
जलधारा से नित्य मैं, जग में शांति हेत
नव देवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत ॥
(शान्तये शांतिधारा)

नानाविधि के सुमन ले, मन में बहु हर्षाय
मैं पूजूं नव देवता पुष्पांजलि चढ़ाय ॥
(दिव्य पुष्पांजलि)

जाप्य (९,२७ या १०८ बार) -
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योनमः

जयमाला
चिच्चिन्तामणी रत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो
गाऊं गुण मणिमाल, जयवन्ते वंदो सदा ॥

जय जय श्री अरिहंत देव देव हमारे
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे ॥१॥
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूं
जय अष्ट कर्म मुक्ति की मैं अर्चना करूं ॥२॥

आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं
दीक्षादी दे असंख्य भव्य तार रहे हैं ॥
जैवन्त उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी
सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करे धनी ॥३॥
जय साधू अठाईस गुणों को धरें सदा
निज आत्मा की साधना से च्युत न हो कदा ॥
ये पञ्च परम देव सदा वन्द्य हमारे
संसार विषय सिन्धु से हमको भी उबारें ॥४॥
जिन धर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा ॥
इसकी ध्वनि पियूष का जो पान करेंगे
भव रोग दूर कर वो मुक्ति कान्त बनेंगे ॥५॥
जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं
वे चित्स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं ॥
कृतिम व अक्रतिम जिनालयों को जो भजे
वे कर्म-शत्रु जीत शिवालय में जा बसे ॥६॥
नव-देवताओं की जो नित आराधना करे
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करे ॥
मैं कर्म-शत्रु जीतने के हेतु ही जजूं
सम्पूर्ण 'ज्ञानमती' सिद्धि हेतु ही भजूं ॥७॥

दोहा-
नव देवों को भक्तिवश, कोटि-कोटि प्रणाम
भक्ति का फल मैं चहुँ, निज पद में विश्राम ॥८॥
ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधू-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्योजयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो भव्य श्रद्धा भक्ति से नव देवताओं की भक्ति करे
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें ॥
नवनिधि अतुल भण्डार ले, फिर मोक्ष सुख भी पावते
सुख सिन्धु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते ॥९॥
इत्याशिर्वादः
॥ पुष्पांजलि क्षिपेत ॥

सिद्धपूजा-युगलजी

(श्री युगलजी कृत)

निज वज्र पौरुष से प्रभो! अन्तर-कलुष सब हर लिये
प्रांजल प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये ॥
सर्वोच्च हो अत एव बसते, लोक के उस शिखर रे!
तुमको हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शुद्धातम-सा परिशुद्ध प्रभो! यह निर्मल नीर चरण लाया
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अंतिम दिन आया ॥
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु! धू-धू क्रोधानल जलता है
अज्ञान-अमा के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है ॥
प्रभु! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में
मैं इसीलिए मलयज लाया, क्रोधासुर भागे पलकों में ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा

अधिपति प्रभु! धवल भवन के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल
अंतर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल ॥
मैं महामान से क्षत-विक्षत, हूँ खंड-खंड लोकांत-विभो
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु! अक्षत की गरिमा भर दो ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

चैतन्य-सुरभि की पुष्पवाटिका, में विहार नित करते हो
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो ॥
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल-मधु मधुशाला से
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो! इसकी पहिचान कभी न हुई

हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत्-तृष्णा अविरल पीन हुई ॥
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये
सत्वर तृष्णा को तोड़ प्रभो! लो, हम आनंद-भवन पहुँचे ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा

विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय
कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव ॥
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी धूपों से
अतएव निकट नहिं आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे ॥
यह धूप सुरभि-निर्झरणी, मेरा पर्यावरण विशुद्ध हुआ
छक गया योग-निद्रा में प्रभु! सर्वांग अमी है बरस रहा ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में
प्रति पल बरसात गगन से हो, रसपान करो शिव-गगरी में ॥
ये सुरतरुओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण
प्रभु! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा

तेरे विकीर्ण गुण सारे प्रभु! मुक्ता-मोदक से सघन हुए
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूति अनुभूति लिये ॥
हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर-वैभव की मस्ती
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश
शोध-प्रबंध चिदात्म के, स्रष्टा तु ही एक ॥

जगाया तुने कितनी बार! हुआ नहिं चिर-निद्रा का अन्त
मदिर सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त ॥

घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान ॥
ज्ञान की प्रति पल उठे तरंग, झाँकता उसमें आतमराम
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम ॥
किन्तु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी गहल अनन्त
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसंत ॥
नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति ॥
अत: जड़-कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश
और फिर नरक-निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश ॥
घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा मेरे शीश
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच ॥
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव!
अंत में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव!
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान ॥
अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव
शुभाशुभ की जड़ता को दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय ॥
अहो चित् परम अकर्त्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष, सभी ज्ञानी का यह परिवेश ॥
बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ ॥
किया तुमने जीवन का शिल्प, खिरे सब मोहकर्म और गात
तुम्हारा पौरुष झंझावात, झड़ गये पीले-पीले पात ॥
नहीं प्रज्ञा-आवर्त्तन शेष, हुए सब आवागमन अशेष
अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक ॥
तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग ॥
योग-चांचल्य हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप
अरे! ओ योगरहित योगीश! रहो यों काल अनंतानंत ॥
जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्त्व अखंड
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलंब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध ॥
अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल पुनीत
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवलमहल के बीच ॥
उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ!
अरे! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात ॥

प्रभो! बीती विभावरी आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव
झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चिर-विलास चिद्ब्रह्म में, चिर-निमग्न भगवंत
द्रव्य-भाव स्तुति से प्रभो!, वंदन तुम्हें अनंत ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सिद्धपूजा

सिद्ध-पूजा (हिन्दी द्रव्याष्टक)
(कविश्री हीराचंद)

(अडिल्ल छन्द)

अष्ट-करम करि नष्ट अष्ट-गुण पाय के,
अष्टम-वसुधा माँहिं विराजे जाय के
ऐसे सिद्ध अनंत महंत मनाय के,
संवौषट् आह्वान करूँ हरषाय के ॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर! अवतर! संवौषट्! आह्वाननं
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ! तिष्ठ! ठः! ठः! स्थापनं
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्! सन्निधि करणं

(छन्द त्रिभंगी)

हिमवन-गत गंगा आदि अभंगा, तीर्थ उतंगा सरवंगा
आनिय सुरसंगा सलिल सुरंगा, करि मन चंगा भरि भृंगा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचंदन लायो कपूर मिलायो, बहु महकायो मन भायो
जल संग घिसायो रंग सुहायो, चरन चढ़ायो हरषायो ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल उजियारे शशि-दुति टारे, कोमल प्यारे अनियारे
तुष-खंड निकारे जल सु-पखारे, पुंज तुम्हारे ढिंग धारे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुरतरु की बारी प्रीति-विहारी, किरिया प्यारी गुलजारी
भरि कंचनथारी माल संवारी, तुम पद धारी अतिसारी ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान निवाजे स्वाद विराजे, अमृत लाजे क्षुध भाजे
बहु मोदक छाजे घेवर खाजे, पूजन काजे करि ताजे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

आपा-पर भासे ज्ञान प्रकाशे, चित्त विकासे तम नासे
ऐसे विध खासे दीप उजासे, धरि तुम पासे उल्लासे ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

चुंबत अलिमाला गंधविशाला, चंदन काला गरुवाला
तस चूर्ण रसाला करि तत्काला, अग्नि-ज्वाला में डाला ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्ट-कर्म-विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल अतिभारा, पिस्ता प्यारा, दाख छुहारा सहकारा
रितु-रितु का न्यारा सत्फल सारा, अपरंपारा ले धारा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल-फल वसुवृंदा अरघ अमंदा, जजत अनंदा के कंदा
मेटो भवफंदा सब दु:खदंदा, 'हीराचंदा' तुम वंदा ॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरयामी अभिरामी
शिवपुर-विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत-पराक्रमाय सर्व-कर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

(दोहा)

ध्यान-दहन विधि-दारु दहि, पायो पद-निरवान
पंचभाव-जुत थिर थये, नमूं सिद्ध भगवान् ॥१॥

(त्रोटक छन्द)

सुख सम्यक्-दर्शन-ज्ञान लहा, अगुरु-लघु सूक्षम वीर्य महा
अवगाह अबाध अघायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२॥

असुरेन्द्र सुरेन्द्र नरेन्द्र जजें, भुवनेन्द्र खगेन्द्र गणेन्द्र भजें
जर-जामन-मर्ण मिटायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥३॥

अमलं अचलं अकलं अकुलं, अछलं असलं अरलं अतुलं
अबलं सरलं शिवनायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥४॥

अजरं अमरं अघरं सुधरं, अडरं अहरं अमरं अधरं
अपरं असरं सब लायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥५॥

वृषवृंद अमंद न निंद लहें, निरदंद अफंद सुछंद रहें
नित आनंदवृंद बधायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥६॥

भगवंत सुसंत अनंत गुणी, जयवंत महंत नमंत मुनी
जगजंतु तणे अघ घायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥७॥

अकलंक अटंक शुभंकर हो, निरडंक निशंक शिवंकर हो
अभयंकर शंकर क्षायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥८॥

अतरंग अरंग असंग सदा, भवभंग अभंग उतंग सदा
सरवंग अनंग नसायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥९॥

ब्रह्मंड जु मंडल मंडन हो, तिहुँ-दंड प्रचंड विहंडन हो
चिद्पिंड अखंड अकायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१०॥

निरभोग सुभोग वियोग हरे, निरजोग अरोग अशोक धरे
भ्रमभंजन तीक्षण सायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥११॥

जय लक्ष अलक्ष सुलक्षक हो, जय दक्षक पक्षक रक्षक हो
पण अक्ष प्रतक्ष खपायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१२॥

अप्रमाद अनाद सुस्वाद-रता, उनमाद विवाद विषाद-हता
समता रमता अकषायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१३॥

निरभेद अखेद अछेद सही, निरवेद अवेदन वेद नहीं
सब लोक-अलोक के ज्ञायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१४॥

अमलीन अदीन अरीन हने, निजलीन अधीन अछीन बने
जम को घनघात बचायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१५॥

न अहार निहार विहार कबै, अविकार अपार उदार सबै
जगजीवन के मनभायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१६॥

असमंध अधंद अरंध भये, निरबंध अखंद अगंध ठये
अमनं अतनं निरवायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१७॥

निरवर्ण अकर्ण उधर्ण बली, दु:ख हर्ण अशर्ण सुशर्ण भली
बलिमोह की फौज भगायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१८॥

अविरुद्ध अक्रुद्ध अजुद्ध प्रभू, अति-शुद्ध प्रबुद्ध समृद्ध विभू
परमातम पूरन पायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥१९॥

विरूप चिद्रूप स्वरूप द्युती, जसकूप अनूपम भूप भुती
कृतकृत्य जगत्त्रय-नायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२०॥

सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू, उत्कृष्ट वरिष्ट गरिष्ट मितू
शिव तिष्ठत सर्व-सहायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२१॥

जय श्रीधर श्रीकर श्रीवर हो, जय श्रीकर श्रीभर श्रीझर हो
जय रिद्धि सुसिद्धि-बढ़ायक हो, सब सिद्ध नमूं सुखदायक हो ॥२२॥

(दोहा)

सिद्ध-सुगुण को कहि सके, ज्यों विलसत नभमान
'हीराचंद' ता ते जजे, करहु सकल कल्यान ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहतपराक्रमाय सकलकर्म-विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परिमेष्ठिने जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(अडिल्ल छन्द)

सिद्ध जजैं तिनको नहिं आवे आपदा
पुत्र – पौत्र धन – धान्य लहे सुख – संपदा ॥
इंद्र चंद्र धरणेद्र नरेन्द्र जु होय के
जावें मुकति मँझार करम सब खोय के ॥२४॥

(इत्याशीर्वाद: पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सम्यकदर्शन

सिद्ध अष्ट-गुणमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान
ज्ञान चरित जिंह बिन अफल, सम्यक् दर्श प्रधान ॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगंध अपार, तृषा हरे मल छय करे
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे ॥सम्य॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे ॥सम्य॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे ॥सम्य॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे ॥सम्य॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तमहार, घट पट परकाशे महा ॥सम्य॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरे ॥सम्य॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विथार, निहचे सुर-शिव-फल करै ॥सम्य॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
आप आप निहचै लखे, तत्त्व-प्रीति व्योहार
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार ॥
सम्यक् दरशन-रत्न गहीजै, जिन-वच में संदेह न कीजै
इह भव विभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहे मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये
पर-दोष ढकिये, धरम डिगते को सुथिर कर, हरखिये ॥
चहुं संघ को वात्सल्य कीजै, धरमकी परभावना
गुन आठ सों गुन आठ लहिके, इहां फेर न आवना ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसहित पंचविंशति दोषरहित सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सम्यकज्ञान

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान
मोह - तपन - हर चंद्रमा सोई सम्यक् ज्ञान ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगंध अपार, तृषा हरे मल छय करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यरग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशे महा
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप घ्रान-सुखकार रोग विघन जड़ता हरे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विथार निहचे सुर-शिव फल करे
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु
सम्यग्ज्ञान विचार, आठभेद पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
आप आप जाने नियत, ग्रन्थ पठन व्यौहार
संशय विभ्रम मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार ॥

सम्यक् ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया
अक्षर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अरथ उभय संग जानो ॥
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये
तप रीति गहि बहु मौन देके, विनय गुण चित लाइये ॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना
इस ज्ञान ही सों भरत सीझे, और सब पटपेखना ॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सम्यकचारित्र

विषय-रोगा औषध महा, दव-कषाय जल-धार
तीर्थंकर जाको धरे सम्यक् चारित्र सार ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरे मल छय करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय चदनं निर्वपामीति स्वाहा

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुहुप सुवास उदार, खेद हरे शुचि करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशे महा
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप घ्रान-सुखकार रोग विघन जड़ता हरे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि विथार निहचे सुर-शिव फल करे
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु
सम्यक् चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्यौहार
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥

चौपाई मिश्रित गीता छन्द -
सम्यक् चारित रतन संभालो, पांच पाप तजिके व्रत पालो
पंचसमिति त्रय गुपति गहिजे, नरभव सफल करहु तन छीजे
छीजे सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिये
बहु रुल्यो नरक-निगोद माहीं, विषय-कषायनि टालिये ॥
शुभ करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है
'ध्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

समुच्चय-जयमाला
सम्यक् दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुकति न होय

अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ॥

चौपाई 16 मात्रा

जापै ध्यान सुथिर बन आवे, ताके करम-बंध कट जावें
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावें ॥१॥
ताको चहुं गति के दुख नाहीं, सो न परे भव-सागर माहीं
जनम-जरा-मृतु दोष मिटावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥२॥
सोई दश लक्षनको साधे, सो सोलह कारण आराधे
सो परमातम पद उपजावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥३॥
सो शक्र-चक्रिपद लेई, तीन लोक के सुख विलसेई
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥४॥
सोई लोकालोक निहारे, परमानंद दशा विस्तारे
आप तिरै औरन तिरवावे, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावे ॥५॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्रेभ्यः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

एक स्वरुप-प्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय
तीन भेद व्योहार सब, 'ध्यानत' को सुखदाय ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

चौबीस-तीर्थंकर-वृन्दावनदास

(कविवर वृन्दावनदास कृत)

वृषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय ॥
विमल अनन्त धर्म जस-उज्जवल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी ॥चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तन्दुल सित सोम -समान सुन्दर अनियारे
मुक्ता फल की उनमान पुञ्ज धरों प्यारे ॥चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

वर-कंज कदम्ब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे
जिन-अग्र धरों गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे ॥चौबीसों ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मन-मोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने ॥चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै
सब तिमिर मोहक्षय जाय, ज्ञान-कला जागै ॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशगन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु! खेवत हों
मिस-धूम करम जर जाहिं, तुम पद सेवत हों ॥चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो
देखत दृग-मनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥

जय भव-तम भंजन, जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मनि, स्वच्छ करा
शिव-मग-परकाशक, अरिगण-नाशक, चौबीसों जिनराज वरा ॥

जय ऋषभदेव रिषि-गन नमन्त, जय अजित जीत वसु-अरि तुरन्त
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द-पूर ॥१॥
जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्म द्युति तनरसाल
जय जय सुपार्श्व भव-पास नाश, जय चन्द चन्द-तनद्युति प्रकाश ॥२॥
जय पुष्पदन्त द्युति-दन्त-सेत, जय शीतल शीतल-गुननिकेत
जय श्रेयनाथ नुत-सहसभुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपुज्ज ॥३॥
जय विमल विमल-पद देनहार, जय जय अनन्त गुन-गण अपार
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शान्ति शान्ति पुष्टी करेत ॥४॥
जय कुन्थु कुन्थुवादिक रखेय, जय अरजिन वसु-अरि छय करेय
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल ॥५॥
जय नमि नित वासव-नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र नेम
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्द्धमान शिव-नगर साथ ॥६॥

चौबीस जिनन्दा, आनन्द-कन्दा, पाप-निकन्दा, सुखकारी
तिन पद-जुग-चन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा, हितकारी ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर
तिन-पद मन-वच-धार, जो पूजै सो शिव लहै ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

समुच्च-पूजा-ब्र.सरदारमलजी

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र

तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकर समूह! श्री सिद्ध परमेष्ठि समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अनादिकाल से जग में स्वामिन, जल से शुचिता को माना
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहीं पहचाना ॥
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भव-आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है
अनजाने में अबतक मैंने, पर में की झूठी ममता है ॥
चन्दन-सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तान्तसिद्धपरमेष्ठिभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षय पद बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनी में
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं ॥
अक्षयनिधि निज की पाने अब, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है
मन्मथ बाणों से विंन्ध करके, चहुँगति दु:ख उपजाया है ॥
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तान्तसिद्धपरमेष्ठिभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

षटरस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई ॥
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु भ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

जड़दीप विनश्वर को अबतक, समझा था मैंने उजियारा
निज गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अँधियारा ॥
ये दीप समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग-द्वेष नशायेगी ॥
उस शक्ति दहन प्रकटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

पिस्ता बदाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया
आतमरस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये ॥
ये अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान
अब वरणूँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान ॥
नशे घातिया कर्म अरहन्त देवा, करें सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा
दरशज्ञान सुखबल अनन्त के स्वामी, छियालिस गुणयुत महाईशनामी ॥
तेरी दिव्यवाणी सदा भव्य मानी, महामोह विध्वंसिनी मोक्ष-दानी
अनेकांतमय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माता श्री जैनवाणी ॥
विरागी अचारज उवज्झाय साधू, दरश-ज्ञान भण्डार समता अराधू
नगन वेशधारी सु एका विहारी, निजानन्द मंडित मुकति पथ प्रचारी ॥
विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजें, विहरमान वंदूँ सभी पाप भाजें
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे ॥
पुष्पांजलिं क्षिपेत्

बाहुबली-भगवान-पवैयाजी

जयति बाहुबलि स्वामी, जय जय करूँ वंदना बारम्बार
निज स्वरूप का आश्रय लेकर, आप हुए भवसागर पार ॥
हे त्रैलोक्यनाथ त्रिभुवन में, छाई महिमा अपरम्पार
सिद्धस्वपद की प्राप्ति हो गई, हुआ जगत में जय-जयकार ॥
पूजन करने मैं आया हूँ, अष्ट द्रव्य का ले आधार
यही विनय है चारों गति के, दु:ख से मेरा हो उद्धार ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल निर्मल जल प्रभु पद-पंकज में आज चढ़ाता हूँ

जन्म-मरण का नाश करूँ, आनन्दकन्द गुण गाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल मलय सुगन्धित पावन, चन्दन भेंट चढ़ाता हूँ
भव आताप नाश हो मेरा, ध्यान आपका ध्याता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

उत्तम शुभ्र अखण्डित तन्दुल, हर्षित चरण चढ़ाता हूँ
अक्षयपद की सहज प्राप्ति हो, यही भावना भाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

काम शत्रु के कारण अपना, शील स्वभाव न पाता हूँ
काम भाव का नाश करूँ मैं, सुन्दर पुष्प चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

तृष्णा की भीषण ज्वाला में, प्रतिपल जलता जाता हूँ
क्षुधा-रोग से रहित बनूँ मैं, शुभ नैवेद्य चढ़ाता हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोह ममत्व आदि के कारण, सम्यक् मार्ग न पाता हूँ
यह मिथ्यात्व तिमिर मिट जाये, प्रभुवर दीप चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

है अनादि से कर्म बन्ध दु:खमय, न पृथक् कर पाता हूँ
अष्टकर्म विध्वंस करूँ, अत एव सु-धूप चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सहज भाव सम्पदा युक्त होकर, भी भव दु:ख पाता हूँ
परम मोक्षफल शीघ्र मिले, उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्य भाव से स्वर्गादिक पद, बार-बार पा जाता हूँ
निज अनर्घ्य पद मिला न अब तक, इससे अर्घ्य चढ़ाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर चरणों में शीश झुकाता हूँ

अविनश्वर शिव सुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आदिनाथ सुत बाहुबलि प्रभु, मात सुनन्दा के नन्दन
चरम शरीरी कामदेव तुम, पोदनपुर पति अभिनन्दन ॥
छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर, भरत चढ़े वृषभाचल पर
अगणित चक्री हुए नाम लिखने को मिला न थल तिल भर ॥
मैं ही चक्री हुआ, अहं का मान धूल हो गया तभी
एक प्रशस्ति मिटाकर अपनी, लिखी प्रशस्ति स्व हस्त जभी ॥
चले अयोध्या किन्तु नगर में, चक्र प्रवेश न कर पाया
ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा में न अभी आया ॥
भरत चक्रवर्ती ने चाहा, बाहुबलि आधीन रहे
ठुकराया आदेश भरत का, तुम स्वतंत्र स्वाधीन रहे ॥
भीषण युद्ध छिड़ा दोनों भाई के मन संताप हुए
दृष्टि-मल्ल-जल युद्ध भरत से करके विजयी आप हुए ॥
क्रोधित होकर भरत चक्रवर्ती, ने चक्र चलाया है
तीन प्रदक्षिणा देकर कर में, चक्र आपके आया है ॥
विजय चक्रवर्ती पर पाकर, उर वैराग्य जगा तत्क्षण
राज्यपाट तज ऋषभदेव के, समवशरण को किया गमन ॥
धिक्-धिक् यह संसार और, इसकी असारता को धिक्कार
तृष्णा की अनन्त ज्वाला में, जलता आया है संसार ॥
जग की नश्वरता का तुमने, किया चिंतवन बारम्बार
देह भोग संसार आदि से, हुई विरक्ति पूर्ण साकार ॥
आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले, व्रत संयम को किया ग्रहण
चले तपस्या करने वन में, रत्नत्रय को कर धारण ॥
एक वर्ष तक किया कठिन तप, कायोत्सर्ग मौन पावन
किन्तु शल्य थी एक हृदय में, भरत-भूमि पर है आसन ॥
केवलज्ञान नहीं हो पाया, एक शल्य ही के कारण
परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक, जय करके भी अटका मन ॥
भरत चक्रवर्ती ने आकर, श्री चरणों में किया नमन
कहा कि वसुधा नहीं किसी की, मान त्याग दो हे भगवन् ॥
तत्क्षण शल्य विलीन हुई, तुम शुक्ल ध्यान में लीन हुए
फिर अन्तर्मुहूर्त में स्वामी, मोह क्षीण स्वाधीन हुए ॥
चार घातिया कर्म नष्ट कर, आप हुए केवलज्ञानी

जय जयकार विश्व में गूँजा, सारी जगती मुसकानी ॥
झलका लोकालोक ज्ञान में, सर्व द्रव्य गुण पर्यायें
एक समय में भूत भविष्यत्, वर्तमान सब दर्शायें ॥
फिर अघातिया कर्म विनाशे, सिद्ध लोक में गमन किया
अष्टापद से मुक्ति हुई, तीनों लोकों ने नमन किया ॥
महा मोक्ष फल पाया तुमने, ले स्वभाव का अवलंबन
हे भगवान बाहुबलि स्वामी, कोटि-कोटि शत-शत वंदन ॥
आज आपका दर्शन करने, चरण-शरण में आया हूँ
शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको, यही भाव भर लाया हूँ ॥
भाव शुभाशुभ भव निर्माता, शुद्ध भाव का दो प्रभु दान
निज परिणति में रमण करूँ प्रभु, हो जाऊँ मैं आप समान ॥
समकित दीप जले अन्तर में, तो अनादि मिथ्यात्व गले
राग-द्वेष परिणति हट जाये, पुण्य पाप सन्ताप टले ॥
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का, आश्रय लेकर बढ़ जाऊँ
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा, मुक्ति शिखर पर चढ़ जाऊँ ॥
मोक्ष-लक्ष्मी को पाकर भी, निजानन्द रस लीन रहूँ
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ, सदा सुखी स्वाधीन रहूँ ॥
आज आपका रूप निरख कर, निज स्वरूप का भान हुआ
तुम-सम बने भविष्यत् मेरा, यह दृढ़ निश्चय ज्ञान हुआ
हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित, होकर की है यह पूजन
प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो, कटें हमारे भव बंधन ॥
चक्रवर्ति इन्द्रादिक पद की नहीं कामना है स्वामी
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद पायें हे! अन्तर्यामी ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

घर-घर मंगल छाये जग में वस्तु स्वभाव धर्म जानें
वीतराग विज्ञान ज्ञान से, शुद्धातम को पहिचानें ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सीमन्धर-भगवान-हुकमचन्द-भारिल्ल

जयति बाहुबलि स्वामी, जय जय करूँ वंदना बारम्बार
निज स्वरूप का आश्रय लेकर, आप हुए भवसागर पार ॥
हे त्रैलोक्यनाथ त्रिभुवन में, छाई महिमा अपरम्पार
सिद्धस्वपद की प्राप्ति हो गई, हुआ जगत में जय-जयकार ॥
पूजन करने मैं आया हूँ, अष्ट द्रव्य का ले आधार

यही विनय है चारों गति के, दु:ख से मेरा हो उद्धार ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल निर्मल जल प्रभु पद-पंकज में आज चढ़ाता हूँ
जन्म-मरण का नाश करूँ, आनन्दकन्द गुण गाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल मलय सुगन्धित पावन, चन्दन भेंट चढ़ाता हूँ
भव आताप नाश हो मेरा, ध्यान आपका ध्याता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

उत्तम शुभ्र अखण्डित तन्दुल, हर्षित चरण चढ़ाता हूँ
अक्षयपद की सहज प्राप्ति हो, यही भावना भाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

काम शत्रु के कारण अपना, शील स्वभाव न पाता हूँ
काम भाव का नाश करूँ मैं, सुन्दर पुष्प चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

तृष्णा की भीषण ज्वाला में, प्रतिपल जलता जाता हूँ
क्षुधा-रोग से रहित बनूँ मैं, शुभ नैवेद्य चढ़ाता हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोह ममत्व आदि के कारण, सम्यक् मार्ग न पाता हूँ
यह मिथ्यात्व तिमिर मिट जाये, प्रभुवर दीप चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

है अनादि से कर्म बन्ध दु:खमय, न पृथक् कर पाता हूँ
अष्टकर्म विध्वंस करूँ, अत एव सु-धूप चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सहज भाव सम्पदा युक्त होकर, भी भव दु:ख पाता हूँ

परम मोक्षफल शीघ्र मिले, उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्य भाव से स्वर्गादिक पद, बार-बार पा जाता हूँ
निज अनर्घ्य पद मिला न अब तक, इससे अर्घ्य चढ़ाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर चरणों में शीश झुकाता हूँ
अविनश्वर शिव सुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आदिनाथ सुत बाहुबलि प्रभु, मात सुनन्दा के नन्दन
चरम शरीरी कामदेव तु , पोदनपुर पति अभिनन्दन ॥
छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर, भरत चढ़े वृषभाचल पर
अगणित चक्री हुए नाम लिखने को मिला न थल तिल भर ॥
मैं ही चक्री हुआ, अहं का मान धूल हो गया तभी
एक प्रशस्ति मिटाकर अपनी, लिखी प्रशस्ति स्व हस्त जभी ॥
चले अयोध्या किन्तु नगर में, चक्र प्रवेश न कर पाया
ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा में न अभी आया ॥
भरत चक्रवर्ती ने चाहा, बाहुबलि आधीन रहे
ठुकराया आदेश भरत का, तु स्वतंत्र स्वाधीन रहे ॥
भीषण युद्ध छिड़ा दोनों भाई के मन संताप हुए
दृष्टि-मल्ल-जल युद्ध भरत से करके विजयी आप हुए ॥
क्रोधित होकर भरत चक्रवर्ती, ने चक्र चलाया है
तीन प्रदक्षिणा देकर कर में, चक्र आपके आया है ॥
विजय चक्रवर्ती पर पाकर, उर वैराग्य जगा तत्क्षण
राज्यपाट तज ऋषभदेव के, समवशरण को किया गमन ॥
धिक्-धिक् यह संसार और, इसकी असारता को धिक्कार
तृष्णा की अनन्त ज्वाला में, जलता आया है संसार ॥
जग की नश्वरता का तु ने, किया चिंतवन बारम्बार
देह भोग संसार आदि से, हुई विरक्ति पूर्ण साकार ॥
आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले, व्रत संयम को किया ग्रहण
चले तपस्या करने वन में, रत्नत्रय को कर धारण ॥
एक वर्ष तक किया कठिन तप, कायोत्सर्ग मौन पावन
किन्तु शल्य थी एक हृदय में, भरत-भूमि पर है आसन ॥
केवलज्ञान नहीं हो पाया, एक शल्य ही के कारण

परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक, जय करके भी अटका मन ॥
भरत चक्रवर्ती ने आकर, श्री चरणों में किया नमन
कहा कि वसुधा नहीं किसी की, मान त्याग दो हे भगवन् ॥
तत्क्षण शल्य विलीन हुई, तु शुक्ल ध्यान में लीन हुए
फिर अन्तर्मुहूर्त में स्वामी, मोह क्षीण स्वाधीन हुए ॥
चार घातिया कर्म नष्ट कर, आप हुए केवलज्ञानी
जय जयकार विश्व में गूँजा, सारी जगती मुसकानी ॥
झलका लोकालोक ज्ञान में, सर्व द्रव्य गुण पर्यायें
एक समय में भूत भविष्यत्, वर्तमान सब दर्शायें ॥
फिर अघातिया कर्म विनाशे, सिद्ध लोक में गमन किया
अष्टापद से मुक्ति हुई, तीनों लोकों ने नमन किया ॥
महा मोक्ष फल पाया तुमने, ले स्वभाव का अवलंबन
हे भगवान बाहुबलि स्वामी, कोटि-कोटि शत-शत वंदन ॥
आज आपका दर्शन करने, चरण-शरण में आया हूँ
शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको, यही भाव भर लाया हूँ ॥
भाव शुभाशुभ भव निर्माता, शुद्ध भाव का दो प्रभु दान
निज परिणति में रमण करूँ प्रभु, हो जाऊँ मैं आप समान ॥
समकित दीप जले अन्तर में, तो अनादि मिथ्यात्व गले
राग-द्वेष परिणति हट जाये, पुण्य पाप सन्ताप टले ॥
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का, आश्रय लेकर बढ़ जाऊँ
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा, मुक्ति शिखर पर चढ़ जाऊँ ॥
मोक्ष-लक्ष्मी को पाकर भी, निजानन्द रस लीन रहूँ
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ, सदा सुखी स्वाधीन रहूँ ॥
आज आपका रूप निरख कर, निज स्वरूप का भान हुआ
तुम-सम बने भविष्यत् मेरा, यह दृढ़ निश्चय ज्ञान हुआ
हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित, होकर की है यह पूजन
प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो, कटें हमारे भव बंधन ॥
चक्रवर्ति इन्द्रादिक पद की नहीं कामना है स्वामी
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद पायें हे! अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

घर-घर मंगल छाये जग में वस्तु स्वभाव धर्म जानें
वीतराग विज्ञान ज्ञान से, शुद्धातम को पहिचानें ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

दशलक्षण-धर्म-द्यानतरायजी

उत्तम क्षमा मारदव आरजव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अन्वयार्थ : उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव ये जीव के भाव हैं, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग ये मोक्ष प्राप्ति के उपाय हैं, उत्तम आकिंचन, उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म में सार है अर्थात् उत्कृष्ट हैं । ये दश धर्म चारों गतियों के दुःखों से निकालकर मोक्ष सुख को करने वाले हैं ।

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्माय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हिमवन पर्वत से निकलने वाली धारा के जल (गंगा नदी का जल) मुनिराजों के मन के समान निर्मल शीतल और सुगंधित जल से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की सदा पूजा करता हूँ ।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : दशो दिशाओं को सुगंधित करने वाले चन्दन और केशर को घिसकर संसार की ताप को नष्ट करने के लिए दश लक्षण धर्म की पूजा करता हूं ।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : मलरहित अखण्ड, (जो टूटे हुए न हो) उत्कृष्ट चन्द्रमा के समान श्वेत उज्जवल चावलों से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की हमेशा पूजा करता हूँ ।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अनेक प्रकार के पुष्पों से जिनकी सुगंधी ऊर्ध्व लोक तक फैल रही है । भव की ताप को नष्ट करने के लिए 'दश लक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ ।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस-संजुगत
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अनेक प्रकार के उत्कृष्ट छहों रसों से युक्त नैवेद्य से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : कपूर की बत्ती बनाकर सुन्दर लगने वाले दीपक को धारण कर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अगर आदि से धूप को तैयार कर उसकी सुगंधि को सर्व दिशाओं मे फैलाकर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : अनेक प्रकार के नासिका को, नेत्रो को और मन को मोहित करने वाले आर्थात् अच्छे लगने वाले फलों से भव की ताप नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

आठों दरब सँवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसौं
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : जल चन्दन आदि आठों द्रव्यों को सजाकर अत्यन्त उत्साह पूर्वक भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूं ।

उत्तम क्षमा

पीड़ैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा ॥

अन्वयार्थ : बहुत दुर्जन लोग दुख देवें, बांधकर अनेक प्रकार से मारपीट करे । यातनायें दे वहाँ हे पवित्र आत्मा क्रोध को न करके विवेक् पूर्वक उत्तम क्षमा को धारण कीजिए ।

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस, पर भव सुखदाई
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै
घर तैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै ॥
ते करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भाई उत्तमक्षमा को ग्रहण करो यह क्षमा इस भव में यश और अगले भव में सुख को देने वाली है, कोई अज्ञानी गुणों को अवगुण रूप भी कहता है गालियाँ (अपशब्द) भी देता है तो भी मन में खेद (दुःख) नहीं करना चाहिए । ऐसा वह अज्ञानी अपशब्द कहता हुआ हमारी कोई वस्तु छीन लेवे, बांध देवे, अनेक प्रकार से मारे, घर मे निकाल देवे, शरीर का छेदन करे (विदारण करे) तब भी वहां उससे बैर भाव धारण नहीं करना चाहिए । किन्तु चिन्तन करना चाहिए कि पूर्व भवों में मैंने जो पाप कर्मों का संचय किया या जो पाप कर्म किये हे जीव अब उन्हें क्यों नहीं सहन करोगे (भोगोगे) । अत्यन्त भीषण क्रोध रूपी अग्नि को हे जीव समता रूपी अत्यन्त शीतल जल से बुझाओ । अर्थात् क्रोध के समय समता धाराण करो ।

उत्तम मार्दव

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥

अन्वयार्थ : मान महा विष के समान है यह मान (नीच गति) संसार में नरक गति को करने वाला है | कोमलता (मृदुता) रूपी अनुपम अमृत को ग्रहण करने वाले जीव हमेशा सुख प्राप्त करते हैं । मान करने से नीच गोत्र का आस्रव करते हैं और संसार में नीच जातियों में जन्म लेते हैं ।

उत्तम मार्दव गुन मन-माना, मान करन को कौन ठिकाना
बस्यो निगोद माहिं तैं आया, दमरी रूँकन भाग बिकाया ॥
रूँकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया ॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम मार्दव गुण मन को अच्छा लगने वाला है, मान करने का क्या आधार है क्योंकि अनंत: काल से निगोद में रहता था वहाँ से आकर स्थावर में वनस्थति काय का जीव हुआ कभी दमरी (सबसे छोटी मुद्रा) के भाव बिक गया कभी रुकन अर्थात् बिना मूल्य के ही बिक गया भाग्य उदय से यह जीव देव हुआ और देव पर्याय से आकर एकेन्द्री हो गया, उत्तम पर्याय से चांडाल हुआ, राजा भी, कीड़ों में जाकर उत्पन्न हो गया हे आत्मा, क्या जीवन, युवावस्था और धन का घमंड करता है । ये सब जल के बुलबुले के समान क्षणभर में नष्ट होने वाले है । जिनमें बहुत गुण है अर्थात् गुणवान है जिनकी बड़ी आयु है ऐसे माता-पिता आदि की विनय करना चाहिए जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

उत्तम आर्जव

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु-सम्पदा ॥

अन्वयार्थ : छल कपट नहीं करना चाहिए धन सम्पत्ति चोरों के यहाँ नहीं होती वे हमेशा निर्धन ही होते है (इसीलिये चोरों के शहर नहीं बसते हैं) किन्तु जिनका स्वभाव सरल होता है उनके यहाँ बहुत धन सम्पदा होती है ।

उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये ॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगार-सी ॥
नहिं लहै लछी अधिक छल करि, करम-बन्ध विशेषता
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तम-आर्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम आर्जव सरल स्वभाव को कहते हैं । रंचमात्र भी दगा दुख को देने वाला है, जो विचार मन में हो वही वचन में रहना और जो वचन से कहा जाय वही काय से किया जाना चाहिए । इस प्रकार से तीनों योगों को सरल करना चाहिए जैसे निर्मल स्वच्छ दर्पण में जैसा अपना मुँह करोगे वैसा ही दिखेगा । छल कपट की प्रीति अंगारों से प्रीति करने के समान है (जैसे अंगारों में ऊपर राख दिखती है और अन्दर अग्नि दहकती रहती है) । अधिक छल करके कोई भी धन सम्पदा प्राप्त नहीं कर सकता बल्कि अधिक कर्म बंध करता है उस कर्मबंध का ध्यान नहीं करता और छल करता रहता है जैसे - बिल्ली आख बंद करके दूध पीते समय भय का त्याग करती है और पीछे मार पड़ेगी ध्यान नही रखती उसी प्रकार छल करने वाला कर्म बंध का ध्यान नहीं करते हुए छल करता रहता है ।

उत्तम शौच

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसार में ॥

अन्वयार्थ : हृदय में संतोष धारण कर शरीर से तपस्या करना चाहिए । दोष रहित शौच धर्म ही संसार में सबसे बड़ा धर्म है ।

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना
आशा-फांस महा दुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष सुभावतैं ॥
ऊपर अमल मल भर्‍यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम शौच धर्म सर्व जगत में विख्यात है, यह लोभ कषाय के अभाव में होता है । लोभ सर्व पापों को (उत्पन्न) करने वाला है । आशा-इच्छा रूपी पाश भयानक दुःखों को देने वाली है अत: संतोष को धारण करने वाले जीव सुख को प्राप्त करते हैं । इस जीव की शुचिता (पवित्रता) शील, जप, तप, ज्ञान, ध्यान के प्रभाव से होती है हमेशा गंगा, यमुना आदि नदियों में एवं समुद्र में भी स्नान करने से शुचिता अर्थात् पवित्रता नहीं होती क्योकि इस शरीर का स्वभाव ही अपवित्र है । यह ऊपर तो अत्यन्त निर्मल दिखता है परन्तु इसके अन्दर मल भरा हुआ है । ऐसे शरीर को किस प्रकार पवित्र कहा जा सकता है । जिनका शरीर तो मलिन है पर जो गुणों के भडार है ऐसे महाव्रती साधु ही इस शौच गुण को प्राप्त करते है ।

उत्तम सत्य

कठिन वचन मति बोल, पर-निन्दा अरु झूठ तज
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी ॥

अन्वयार्थ : कठोर वचन, पर निंदा, और झूठ वचनों का त्याग करना सत्य धर्म है । सत्य रूपी जवाहर रत्न का उपयोग करना चाहिए क्योकि सत्यवादी प्राणी संसार में सुखी रहते हैं ।

उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा, साँच गुण लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम सत्य धर्म पालन करना चाहिए, दूसरों का विश्वासघात नहीं करना चाहिए । सत्यवादी और झूठे मनुष्यों को देखो, झूठ बोलने वाले पुत्र पर भी विश्वास नही किया जाता अर्थात् झूठे व्यक्तियो पर कोई विश्वास नही करता । (हमने अभी तक सच्चे और झूठे मनुष्य ही देखे है लोकन अपने आत्मा के पवित्र स्वभाव के पास जाकर नहीं देखा यह निश्चय सत्य धर्म का लक्षण है । साचे झूठे मनुष्यों को तो देखता है किन्तु अपने अन्तर में स्थित शुद्ध आत्म स्वरूप को नहीं देखता जो आत्मा का सत् स्वरूप है)। निस्वार्थ सत्यवादी का सभी विश्वास करते हैं और अमानत स्वरूप धन भी देते हैं । मुनिराजों की और श्रावकों की प्रतिष्ठा (इज्जत) सत्य गुण से (सत्य धर्म से) ही है । राजा बसु ऊँचे सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था झूठ बोलने के कारण से नरक में गया और सत्य को बोलने वाला नारद स्वर्ग गया ।

उत्तम संयम

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो
संजम-रतन सँभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं ॥

अन्वयार्थ : छह काय के जीवों की रक्षा करना और पांच इन्द्रियों और मन को वश में करना उत्तम संयम धर्म है । संयम रूपी रत्न को संभाल कर रखना चाहिए क्योंकि विषय वासना रूपी बहुत चोर घूम रहे हैं ।

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाँहीं ॥
ठाहीं पृथीवी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥

जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीच में
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम-मुख बीच में ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम संयम धर्म को हे मन धारण करो इसे धारण करने से अनेक भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं । यह संयम स्वर्ग, नरक और पशु (तिर्यंच) गति में नहीं है । यह संयम आलस का हरण करने वाला और सुख को करने वाला है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये स्थावर और त्रस इन छह काय के जीवों पर दयाभाव धारण कर स्पर्शन, रसना, घान, चक्षु कान और मन को वश करना संयम धर्म है । इस संयम के बिना तीर्थकर भी मोक्ष को प्राप्त नही हुए और जिसके नहीं धारण करने से ही यह आत्मा संसार रूपी कीचड़ में फंसा रहता है । हमें इस संयम को एक क्षण को भी नही भूलना चाहिए हम जम अर्थात् मृत्यु के मुँह में आ रहे हैं ।

उत्तम तप

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकतिसम ॥

अन्वयार्थ : उत्तम तप को देवो के राजा इन्द्र भी चाहते हैं | यह तप कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए वज्र के समान है । यह सुख देने वाला तप बारह प्रकार का है । इन तपों को अपनी शक्ति अनुसार क्यो धारण नही करते हो ?

उत्तम तप सब माहिं बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा ॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता ॥
अति महा दुरलभ त्याग विषय-कषाय जो तप आदरैं
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम तप धर्म का सब ग्रन्थों मे वर्णन मिलता है । कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए यह वज्र के समान है । अनादिकाल से यह जीव निगोद मे रह रहा है । वहाँ से निकलकर पृथ्वी आदि स्थावर हुआ स्थावर के बाद त्रस पयाय में विकलेन्द्री हुआ और फिर पशुओं के शरीर को धारण किया अब दुर्लभ यह मनुष्य पर्याय प्राप्त कीया है । उसमे भी उच्चकुल, पूर्ण आयु, निरोग शरीर, जिनवाणी का संयोग, तत्व ज्ञान, आत्म चिन्तन मे उपयोग अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त किया है जो व्यक्ति अत्यन्त महा दुर्लभ विषय और कषाय का त्याग कर तप को आदरपूर्वक ग्रहण करते है वे मनुष्यभव रूपी स्वर्ण गृह पर रत्नमयी कलशा चढाते है अर्थात् नर जन्म धन्य करते है ।

उत्तम त्याग

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए ॥

अन्वयार्थ : दान चार प्रकार के होते हैं । चारों दान चार संघ अर्थात् मुनि , आर्यिका, श्रावक, श्राविका को देना चाहिए । धन, सम्पत्ति, वैभव बिजली की चमक की तरह है अत: मनुष्य भव का लाभ लेना चाहिए ।

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै ॥
दोनों सँभारै कूप-जल सम, दरब घर में परिनया
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया ॥
धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम त्याग समस्त संसार मे श्रेष्ठ है । ये दान औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और आहारदान के भेद से चार प्रकार का है । यह तो व्यवहार त्याग है । निश्चय त्याग, राग द्वेष के त्याग को कहते हैं । ज्ञानीजन दोनों दान (निश्चय और व्यवहार) करते हैं । कुए का पानी यदि खर्च न हो तो खराब हो जाता है और यदि खर्च होता रहे तो खराब नही होता । उसी प्रकार घर में धन सम्पत्ति

वैभव हो तो दान करना चाहिए जो श्रेष्ठ है नही तो नष्ट हो जायेगा लेकिन रहने वाला नही है । धन्य है वे साधु जो शास्त्र दान, अभय दान के देने वाले है और राग द्वेष का त्याग करने वाले है । बिना दान के श्रावक और साधु दोनों ही सम्यक् ज्ञान को प्राप्त नहीं होते ।

उत्तम आकिंचन्य

परिग्रह चौबिस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए ॥

अन्वयार्थ : परिग्रह चौबीस भेद, यह व्यवहार आकिंचन्य धर्म है और तिसना भाव उछेद, यह निश्चय आकिंचन्य धर्म है । परिग्रह के २४ भेद (अंतरंग १४ और बाह्य १०) अंतरंग - मिथ्यात्व + चार कषाय + नौ कषाय = १४ बाह्य - खेत + मकान + रुपया + सोना + गोधन आदि + अनाज + दासी + दास + कपड़े + बर्तन व मसाले आदि = १० परिग्रह के चौबीस भेद है उनका त्याग (व्यवहार आकिंचन्य) मुनिराज करते हैं और तृष्णा भाव को नष्ट करते है (निश्चय आकिझन) । श्रावको भी धीरे-धीरे दोनो प्रकार के परिग्रहो को घटाना चाहिए ।

उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो
फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लँगोटी की दुख भालै ॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरैं
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परैं ॥
घर माहिं तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सौं
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगार सौं ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमाकिंचन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम आकिंचन्य श्रेष्ठ गुण है । परिग्रह चिन्ता-दुख के ही पर्याय है । छोटी सी फ़ांस भी पूरे शरीर को दुखी कर देती है उसी प्रकार लंगोटी का आवरण या लंगोटी की चाह दुख को देने वाली होती है । यह मनुष्य, महाव्रत अर्थात निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की मुद्रा को धारण किये बिना समता और सुख को प्राप्त नही कर सकता । वे मुनिराज धन्य हैं जो पर्वतो पर नग्न खडे रहकर तप करते है उनके चरणो की पूजा सुर-असुर आदि सभी करते हैं । घर मे रहते हुए भी जो तृष्णा को घटाते हैं, तथा जिनको संसार में रूचि नही है, ऐसे जीवो का धन, यद्यपि धन बुरा ही होता है, परोपकार में लगने के कारण फिर भी अच्छा कहा गया है ।

उत्तम ब्रह्मचर्य

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा ॥

अन्वयार्थ : धन्य है वे मुनिराज जो अन्तर से नग्न है (अंतरंग परिग्रह से रहित) शरीर से भी नग्न (बाह्य परिग्रह से रहित) खडे रहते है । शील की रक्षक नौ बाढे - १ स्त्री-राग वर्धक कथा न सुनना, २ स्त्रियों के मनोहर अगों को न देखना, ३ पहले भोगे हुए भोगों को याद न करना, ४ गरिष्ठ व स्वादिष्ट भोजन न करना, ५ अपने शरीर को श्रंगारित न करना, ६ स्त्रियों की शैया-आसन पर न बैठना, ७ स्त्रियों से घुल-मिल कर बातें न करना, ८ भर-पेट भोजन न करना, १ कामोत्तेचक नृत्य , फिल्म, टीवी न देखना ।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे ॥
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचैं भरैं ॥
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा
'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़ि कै, शिव-महल में पग धरा ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : शील को नौ बाडें लगाकर सुरक्षित रखना चाहिए (व्यवहार ब्रह्मचर्य) और अन्तर में ब्रह्म अर्थात् आत्म चिन्तन करना चाहिए (निश्य बह्मचर्य) शील की नौ बाड़ों की एवं आत्म चिन्तन डन दोनों की प्राप्ति के अभिलाषी बनके मनुष्य जन्म सफल करना चाहिए । उत्तम ब्रह्मचर्य मन मे धारण का स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री के रूप में देखना चहिये । यह जीव रणभूमि में शूरवीरों द्वारा की जाने वाली बाणों की वर्षा को सहन कर लेता है । परन्तु स्त्रीयों के क्रूर नेत्र रूपी बाण को सहन नहीं कर पाता ऐसा काम रोग से पीड़ित स्त्री के अपवित्र शरीर में रति (प्रेम) करता है जिस प्रकार श्मशान में मरे हुए सडे हुए शरीर में कौआ प्रेम करके चौंचों से मृत शरीर को खाता है । संसार में स्त्री विष बेल के समान है । इसलिए सभी मुनिराजों ने स्त्रियों का त्याग कर दिया । श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि ये दस धर्म रूपी सीढ़ियां चढ़कर मोक्ष रूपी महल में प्रवेश हो जाता है ।

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय ॥

अन्वयार्थ : दशलक्षण धर्म की सदा वदना करता हूँ । इससे मन के अनुकूल फल की प्राप्ति होती है दशलक्षण धर्म की आगमानुकूल आरती कहता हूं हे भगवान मेरी सहायता कीजिए |

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई
उत्तम मार्दव विनय प्रकासे, नाना भेद ज्ञान सब भासे॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी ॥
उत्तम सत्य-वचन मुख बोले, सो प्रानी संसार न डोले
उत्तम संजम पाले ज्ञाता, नर-भव सफल करै, ले साता ॥
उत्तम तप निरवांछित पाले, सो नर करम-शत्रु को टाले
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई ॥
उत्तम आकिंचन व्रत धारे, परम समाधि दशा विसतारे
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावे, नर-सुर सहित मुकति-फल पावे ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्माय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : उत्तम क्षमा जिनके मन मे होती है उनके मन मे राग द्वेष आदि विकारभाव अंतर और बाह्य मे भी कोई शत्रु नही रहता । उत्तम मार्दव धर्म, विनयगुण का प्रकाशन करके अनेक प्रकार से भेद-विज्ञान करवाता है । उत्तम आर्जव धर्म छलकपट को नाश करता है एवं खोटी गतियों से छुडाकर श्रेष्ठ गतियों मे उत्पन्न करवाता है । जो उत्तम सत्य वचन मुख से बोलते है वे जीव संसार में परिभ्रमण नही करते । उत्तम शौच धर्म लोभ कषाय का नाश करता है, जिनके संतोष है वे गुणों के भंडार होते है । उत्तम संयम धर्म को जो ज्ञानी जन धारण करते है वे साता को प्राप्त करके मनुष्य भव को सफल करते है । इच्छा रहित उत्तम तप धर्म का पालन करने से मनुष्यों के कर्म रूपी शत्रुओं का नाश हो जाता है । जो व्यक्ति उत्तम त्याग करते है वे भोग भूमि और स्वर्ग के सुख भोग कर मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं । जो उत्तम आकिंचन्य धर्म को धारण करते है वे परम समाधि को प्राप्त होते है । उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म को जो मन में धारण करते है वे मनुष्य देव गति को प्राप्त कर मोक्षफल प्राप्त करते हैं । द्यानत राय जी - यह दस लक्षण धर्म कर्म की निर्जरा कर भव रूपी पिंजरा को नष्ट कर अजर-अमर पद को प्राप्त कर सुख की राशि अर्थात् अनंत सुख की प्राप्ति कराते हैं ।

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि
अजर अमर पद को लहैं, 'द्यानत' सुख की राशि ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

पंचमेरु-पूजन

गीता छन्द

तीर्थंकरोंके न्हवन - जलतें भये तीरथ शर्मदा,
तातें प्रदच्छन देत सुर - गन पंच मेरुन की सदा
दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम - प्रतिमा होहि सुख दुख भाजहीं ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि अस्सी जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जल सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
ॐ ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दर-विद्युन्मालि-पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा

जल केशर करपूर मिलाय, गंध सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छत सों पूजौं जिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

वरन अनेक रहे महकाय, फूल सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

मन वांछित बहु तुरत बनाय, चरू सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम-हर उज्जवल ज्योति जगाय, दीप सों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा

खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्री जिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचों॥
ॐ ह्रीं पंचमेरूसम्बन्धि-जिन चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मंदर कहा
विद्युन्माली नामि, पंच मेरु जग में प्रगट ॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजे, भद्र शाल वन भू पर छाजे
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥१॥
ऊपर पंच-शतकपर सोहे, नंदन-वन देखत मन मोहे
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥२॥
साढ़े बांसठ सहस ऊंचाई, वन सुमनस शोभे अधिकाई
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥३॥
ऊंचा जोजन सहस-छतीसं, पाण्डुक-वन सोहे गिरि-सीसं
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥४॥
चारों मेरु समान बखाने, भू पर भद्रशाल चहुं जाने
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥५॥
ऊंचे पांच शतक पर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥६॥
साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सोमनस चार बहुरंगा
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥७॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥८॥
सुर नर चारन वंदन आवें, सो शोभा हम किंह मुख गावें
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥९॥

पंच मेरु की आरती, पढ़े सुनें जो कोय
'ध्यानत' फल जाने प्रभू, तुरत महासुख होय ॥
ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

विद्यमान-बीस-तीर्थंकर-द्यानतरायजी

(पं. द्यानतरायजी कृत)

द्वीप अढ़ाई मेरु पन, अरु तीर्थंकर बीस
तिन सबकी पूजा करूँ, मन-वच-तन धरि सीस ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरा:! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरा:! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ: ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरा: अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् सन्निधि करणं

इन्द्र-फणीन्द्र-नरेन्द्र-वंद्य पद निर्मल धारी
शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि-सम नीर सों (हो) पूजों तृषा निवार
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूर्यप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-श्रीभुजंग-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-यशोधर-अजितवीर्येति विंशति विद्यमान तीर्थंकरेभ्य भवातापविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

तीन लोक के जीव पाप-आताप सताये
तिनकों साता दाता शीतल वचन सुहाये ॥
बावन चंदन सों जजूँ (हो) भ्रमन-तपत निरवार ॥ सीमं. ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी ॥
तंदुल अमल सुगंध सों (हों) पूजों तुम गुणसार ॥ सीमं. ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

भविक-सरोज-विकाश निंद्य-तम हर रवि-से हो
जति-श्रावक आचार कथन को तुमही बड़े हो ॥
फूल सुवास अनेक सों (हो) पूजों मदन-प्रहार ॥ सीमं. ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

काम-नाग विषधाम नाश को गरुड़ कहे हो

छुधा महा दव-ज्वाल तास को मेघ लहे हो ॥
नेवज बहुघृत मिष्ट सों (हों) पूजों भूखविडार ॥
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

उद्यम होन न देत सर्व जगमांहि भर्यो है
मोह-महातम घोर नाश परकाश कर्यो है ॥
पूजों दीप प्रकाश सों (हो) ज्ञान-ज्योति करतार ॥ सीमं. ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म आठ सब काठ भार विस्तार निहारा
ध्यान अगनि कर प्रकट सर्व कीनो निरवारा ॥
धूप अनूपम खेवतें (हो) दु:ख जलैं निरधार ॥ सीमं. ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

मिथ्यावादी दुष्ट लोभsहंकार भरे हैं
सबको छिन में जीत जैन के मेरु खड़े हैं ॥
फल अति उत्तम सों जजों (हों) वांछित फल-दातार ॥ सीमं. ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल-फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है
गणधर-इन्द्रनि हू तैं थुति पूरी न करी है ॥
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जग तैं लेहु निकार ॥ सीमं. ॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

ज्ञान-सुधाकर चन्द, भविक-खेत हित मेघ हो
भ्रम-तम भान अमन्द, तीर्थंकर बीसों नमों ॥

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी
बाहु बाहु जिन जग-जन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥
जात सुजात केवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं, अनंतवीरज वीरज कोषं ॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं

वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं ॥
भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं ॥
वीरसेन वीरं जग जानैं, महाभद्र महाभद्र बखानै ॥
नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजित वीरज बलधारी ॥
धनुष पाँचसै काय विराजै, आयु कोटि पूर्व सब छाजै
समवशरण शोभित जिनराजा, भवजल-तारन-तरन जिहाजा ॥
सम्यक् रत्नत्रय-निधि दानी, लोकालोक-प्रकाशक ज्ञानी
शत-इन्द्रनि करि वंदित सोहैं, सुर-नर-पशु सबके मन मोहैं ॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूर्यप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-श्रीभुजंग-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-यशोधर-अजितवीर्येति विंशति विद्यमान तीर्थंकरेभ्य अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तुमको पूजें वंदना, करैं धन्य नर सोय
'द्यानत' सरधा मन धरैं, सो भी धर्मी होय ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

सोलहकारण-भावना-द्यानतरायजी

सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये
हरषे इन्द्र अपार मेरुपै ले गये ॥
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसौं
हमहू षोडश कारन भावैं भावसौं ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणानि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणानि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणानि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कंचन-झारी निरमल नीर पूजों जिनवर गुन-गंभीर
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर-पद-दाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतीचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद् भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्य इतिषोडशकारणेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदन घसौं कपूर मिलाय पूजौं श्रीजिनवरके पाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल धवल सुंगध अनूप पूजौं जिनवर तिहुं जग-भूप
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार पूजौं-जिनवर जग-आधार
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरू हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह, तीर्थंकर-पद-दाय
परम गुरू हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

सद नेवज बहुविधि पकवान पूजौं श्रीजिनवर गुणखान
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार पूजूं श्रीजिन केवलधार
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर कपूर गंध शुभ खेय श्रीजिनवर आगे महकेय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजौं जिन वांछित-दातार
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आठों दरव चढ़ाय 'द्यानत' वरत करौं मन लाय
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

प्रत्येक भावना के अर्घ्य (सवैया तेईसा)

दर्शन शुद्ध न होवत जो लग, तो लग जीव मिथ्याती कहावे
काल अनंत फिरे भव में, महादुःखनको कहुं पार न पावे ॥
दोष पचीस रहित गुण-अम्बुधि, सम्यग्दरशन शुद्ध ठरावे
'ज्ञान' कहे नर सोहि बड़ो, मिथ्यात्व तजे जिन-मारग ध्यावे ॥
ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धि भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देव तथा गुरूराय तथा, तप संयम शील व्रतादिक-धारी
पापके हारक कामके छारक, शल्य-निवारक कर्म-निवारी ॥
धर्म के धीर कषायके भेदक, पंच प्रकार संसार के तारी
'ज्ञान' कहे विनयो सुखकारक, भाव धरो मन राखो विचारी ॥
ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नता भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शील सदा सुखकारक है, अतिचार-विवर्जित निर्मल कीजे
दानव देव करें तसु सेव, विषानल भूत पिशाच पतीजे ॥
शील बड़ो जग में हथियार, जू शीलको उपमा काहे की दीजे
'ज्ञान' कहे नहिं शील बराबर, तातें सदा दृढ़ शील धरीजे ॥
ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रत भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञान सदा जिनराज को भाषित, आलस छोड़ पढ़े जो पढ़ावे
द्वादश दोउ अनेकहुँ भेद, सुनाम मती श्रुति पंचम पावे ॥
चारहुँ भेद निरन्तर भाषित, ज्ञान अभीक्षण शुद्ध कहावे
'ज्ञान' कहे श्रुत भेद अनेक जु, लोकालोक हि प्रगट दिखावे ॥
ॐ ह्रीं अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भ्रात न तात न पुत्र कलत्र न, संगम दुर्जन ये सब खोटो
मन्दिर सुन्दर, काय सखा सबको, हमको इमि अंतर मोटो ॥
भाउ के भाव धरी मन भेदन, नाहिं संवेग पदारथ छोटो
'ज्ञान' कहे शिव-साधन को जैसो, साह को काम करे जु बणोटो ॥
ॐ ह्रीं संवेग भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पात्र चतुर्विध देख अनूपम, दान चतुर्विध भावसुं दीजे
शक्ति-समान अभ्यागत को, अति आदर से प्रणिपत्य करीजे ॥
देवत जे नर दान सुपात्रहिं, तास अनेकहिं कारण सीझें
बोलत 'ज्ञान' देहि शुभ दान जु, भोग सुभूमि महासुख लीजे ॥
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्याग भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म कठोर गिरावन को निज, शक्ति-समान उपोषण कीजे
बारह भेद तपे तप सुन्दर, पाप जलांजलि काहे न दीजे ॥
भाव धरी तप घोर करी, नर जन्म सदा फल काहे न लीजे
'ज्ञान' कहे तप जे नर भावत, ताके अनेकहिं पातक छीजे ॥
ॐ ह्रीं शक्तितस्तप भावनयै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

साधुसमाधि करो नर भावक, पुण्य बड़ो उपजे अघ छीजे
साधु की संगति धर्मको कारण, भक्ति करे परमारथ सीजे ॥
साधुसमाधि करे भव छूटत, कीर्ति-छटा त्रैलोक में गाजे
'ज्ञान' कहे यह साधु बड़ो, गिरिश्रृंग गुफा बिच जाय विराजे ॥
ॐ ह्रीं साधुसमाधि भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म के योग व्यथा उदये, मुनि पुंगव कुन्त सुभेषज कीजे
पित्त-कफानिल (वात) साँस, भगन्दर, ताप को शूल महागद छीजे ॥
भोजन साथ बनाय के औषध, पथ्य कुपथ्य विचार के दीजे
'ज्ञान' कहे नित वैय्यावृत्य करे तस देव पतीजे ॥
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरण भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देव सदा अरिहन्त भजो जई, दोष अठारा किये अति दूरा
पाप पखाल भये अति निर्मल, कर्म कठोर किए चकचूरा ॥
दिव्य-अनन्त-चतुष्टय शोभित, घोर मिथ्यान्ध-निवारण सूरा
'ज्ञान' कहे जिनराज अराधो, निरन्तर जे गुण-मन्दिर पूरा ॥
ॐ ह्रीं अर्हद् भक्ति भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

देवत ही उपदेश अनेक सु, आप सदा परमारथ-धारी
देश विदेश विहार करें, दश धर्म धरें भव-पार- उतारी ॥
ऐसे अचारज भाव धरी भज, सो शिव चाहत कर्म निवारी
'ज्ञान' कहे गुरू-भक्ति करो नर, देखत ही मनमांहि विचारी ॥
ॐ ह्रीं आचार्य भक्ति भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

आगम छन्द पुराण पढ़ावत, साहित तर्क वितर्क बखाने
काव्य कथा नव नाटक पूजन, ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने ॥
ऐसे बहुश्रुत साधु मुनीश्वर, जो मन में दोउ भाव न आने
बोलत 'ज्ञान' धरी मन सान जु, भाग्य विशेष तें ज्ञानहि साने ॥
ॐ ह्रीं बहुश्रुतिभक्ति भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

द्वादश अंग उपांग सदागम, ताकी निरंतर भक्ति करावे
वेद अनूपम चार कहे तस, अर्थ भले मन मांहि ठरावे ॥
पढ़ बहुभाव लिखो निज अक्षर, भक्ति करी बड़ि पूज रचावे
'ज्ञान कहे जिन आगम-भक्ति, करे सद्-बुद्धि बहुश्रुत पावे ॥
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्ति भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भाव धरे समता सब जीवसु, स्तोत्र पढ़े मुख से मनहारी
कायोत्सर्ग करे मन प्रीतसु, वंदन देव-तणों भव तारी ॥
ध्यान धरी मद दूर करी, दोउ बेर करे पड़कम्मन भारी
'ज्ञान' कहे मुनि सो धनवन्त जु, दर्शन ज्ञान चरित्र उघारी ॥
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणि भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जिन-पूजा रचे परमारथसूं जिन आगे नृत्य महोत्सव ठाणे
गावत गीत बजावत ढोल, मृदंगके नाद सुधांग बखाणे ॥
संग प्रतिष्ठा रचे जल-जातरा, सद् गुरू को साहमो कर आणे
'ज्ञान' कहे जिन मार्ग-प्रभावन, भाग्य-विशेषसु जानहिं जाणे ॥
ॐ ह्रीं मार्गप्रभावना भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

गौरव भाव धरो मन से मुनि-पुंगव को नित वत्सल कीजे
शीलके धारक भव्य के तारक, तासु निरंतर स्नेह धरीजे ॥
धेनु यथा निजबालक को, अपने जिय छोड़ि न और पतीजे
'ज्ञान' कहे भवि लोक सुनो, जिन वत्सल भाव धरे अघ छीजे ॥
ॐ ह्रीं प्रवचन-वात्सल्य भावनायै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जाप्य मंत्र :-
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयै नमः, ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नमः, ॐ ह्रीं शीलव्रताय नमः,
ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः, ॐ ह्रीं संवेगाय नमः, ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः,
ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः, ॐ ह्रीं साधुसमाध्यै नमः, ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः,
ॐ ह्रीं अर्हद् भक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं आचार्यभक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्त्यै नमः,
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्त्यै नमः, ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाण्यै नमः, ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनायै नमः,
ॐ ह्रीं प्रवचनवात्सल्यै नमः

जयमाला
षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास
पाप पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश॥

दरश विशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई
विनय महाधारे प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी ॥
शील सदा दृढ़ जो नर पाले, सो औरनकी आपद टाले
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं ॥
जो संवेग-भाव विस्तारे, सुरग-मुकति-पद आप निहारे
दान देय मन हरष विशेषे, इह भव जस परभव सुख पेखे ॥
जो तप तपे खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा
साधु-समाधि सदा मन लावे, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावे ॥
निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया
जो अरहंत-भगति मन आने, सो जन विषय कषाय न जाने ॥
जो आचारज-भगति करै है, सो निर्मल आचार धरै है
बहुश्रुतवंत-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥
प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहे ज्ञान परमानंद-दाता
षट् आवश्य काय सों साधे, सोही रत्न-त्रय आराधे ॥
धरम-प्रभाव करे जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै ॥

एही सोलह भावना, सहित धरे व्रत जोय
देव-इन्द्र-नर-वंद्य पद, 'द्यानत' शिव-पद होय ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यः पूणार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुन्दर षोडशकारण भावना निर्मल चित्त सुधारक धारे
कर्म अनेक हने अति दुर्द्धर जन्म जरा भय मृत्यु निवारे ॥
दुःख दरिद्र विपत्ति हरे भव-सागर को पार उतारे
'ज्ञान' कहे यही षोडशकारण, कर्म निवारण, सिद्ध सु धारें ॥
इत्याशीर्वाद (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

नंदीश्वर-द्वीप-पूजन

द्यानतरायजी

सरव परव में बड़ो अठाई परव है
नन्दीश्वर सुर जाहिं लेय वसु दरब है
हमैं सकति सो नाहिं इहां करि थापना
पूजैं जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमा समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

अन्वयार्थ : सब पर्वों में सबसे बड़ा पर्व अष्टान्हिका पर्व है इस पर्व में चतुर्णिकाय (चारो निकाय के) के देव अष्ठ द्रव्य को लेकर अकृत्रिम चैत्यालय में जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने नंदीश्वर द्वीप जाते हैं । हमारी शक्ति नंदीश्वर द्वीप तक जाने की नहीं है । अत: हम यहीं पर नंदीश्वर द्वीप के जिनालयों की स्थापना कर जिनालय और जिनालयों मे स्थित जिन बिम्बों की अपने हित के लिए पूजा करते हैं ।

कंचन-मणि मय-भृंगार, तीरथ-नीर भरा
तिहुं धार दई निरवार, जामन मरन जरा
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे पूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिण दिक्षु द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाश नाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान स्वर्ण के रत्न जडित मूंग (कलश) में तीर्थ का जल भरकर जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने को आपके चरणों के समक्ष तीन धार देता हूँ । नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरो की प्रतिमाओं की आठ दिन तक आनंदित होता हुआ उत्साह को धारण कर पूजा करता हूँ । नंदीश्वर द्वीप महान है चारों दिशाओं में सुन्दरता को धारण किये हुए है वहाँ बावन जिन मंदिर है जो देवों और मनुष्यों के मन मोहित करने वाले हैं ।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चंदन नाहीं
प्रभु यह गुन कीजै सांच, आयो तुम ठाहीं
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो संसार ताप विनाश नाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान भव की ताप को नष्ट करने के लिए शीतल सुगंधित चन्दन समर्थ नहीं है यह गुण तो आप में ही है, अर्थात् (भव की ताप नष्ट करने में आप ही समर्थ हो) । इसलिए चंदन लेकर आपके समीप आया हूँ । नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की, आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ ।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै
सब जीते अक्ष-समाज, तुम सम अरु को है
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों

वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव श्रेष्ठ अक्षतों का पुंज आपके समक्ष रखा हुआ बड़ा सुशोभित हो रहा है । आपने सभी इन्द्रिय समूह को जीत लिया है । आपके समान और कोई नही है । नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ ।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं
लहुं शील लच्छमी एव, छूटों सूलनसों
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो काम बाण विध्वंस नाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान आप काम को नष्ट करने वाले हो, पुष्पों से आपकी पूजा करता हूँ । शील रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर संसार के दुःखों से छूटना चाहता हूँ । नंदीश्वर द्वीप के बावन जिन मंदिरों की आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की आनंदित होता हुआ उत्साह से पूजा करता हूँ ।

नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : इन्द्रियों को बलवान बनाने वाला नैवद्य है, हे भगवान उन इन्द्रियों को आपने समाप्त कर दिया है (अब आप अहार नहीं लेते) जो अत्यन्त आश्चर्य की बात है इसीलिए श्रेष्ठ नैवेद्य आपके निकट सुशोभित हो रहा है ।

दीपक की ज्योति प्रकाश, तुम तन मांहि लसै
टूटे करमन की राश, ज्ञान कणी दरशे
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें

बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : हे भगवान! दीपक की ज्योति का प्रकाश आपके शरीर में सुशोभित हो रहा है । आपकी दीपक से पूजा करने से कर्म नष्ट हो जाते हैं और केवल-ज्ञान की किरण फूट पड़ती है ।

कृष्णा गरु धूप सुवास, दश दिशि नारि वरैं
अति हरष भाव परकाश, मानों नृत्य करैं
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अष्ट कर्म दह नाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : कृष्ण अगर आदि सुगंधित धूप की सुगंधि दशों दिशाओं को इस प्रकार सुगंधित कर रही है मानो दश दिशा रूपी स्त्रियों का वरण ही कर रही हो और अत्यन्त हर्षित होकर हर्ष को प्रकाशित करने को नृत्य ही कर रही हो ।

बहु विधि फल ले तिहुं काल, आनंद राचत हैं
तुम शिव फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : बहुत प्रकार के तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले अर्थात् छहों ऋतुओं के, आनंद को देने वाले फलों से आपकी पूजा करता हूँ । हे दीनदयाल प्रभु ! आप मुझे मोक्ष रूपी फल प्रदान करें ऐसी हम आपसे याचना करते हैं ।

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों
'द्यानत' कीज्यो शिव खेत, भूमि समरपतु हों
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों
वसु दिन प्रतिमैं अभिराम, आनंद-भाव धरों
नंदीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें
बावन जिन मन्दिर जान सुर नर मन मोहें

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : यह अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य मैने अपने कल्याण के लिए किया है जिसे आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ । श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि हे नाथ मैने मोक्ष की खेती की है । उसकी भूमि में बीज स्वरूप यह अर्ध्य समर्पित कर रहा हूँ ।

जयमाला

कार्तिक फागुन साढके, अंत आठ दिन माहिं
नंदीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहिं

अन्वयार्थ : कार्तिक, फाल्गुन, और आषाढ़ माह के अंतिम आठ दिनों में देव गण नंदीश्वर द्वीप पूजा करने जाते है । हम असमर्थ होने के कारण (इसी स्थान पर) यहाँ ही पूजा करते है ।

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा, लाख चौरासिया इक दिश में लहा
आठमों द्वीप नंदीश्वरं भास्वरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
चार दिशि चार अंजन गिरी राजहीं, सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं
ढोल सम गोल ऊपर तले सुन्दरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी, एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी
चहु दिशा चार वन लाख जोजन वरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
सोल वापीन मधि सोल गिरि दधि-मुखं, सहस दश महा-जोजन लखत ही सुखं
बावरी कौन दो माहि दो रति करं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे, चार सोलै मिले सर्व बावन लहे
एक इक सीस पर एक जिन मन्दिरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
बिंब अठ एक सौ रतन-मयि सोहहीं, देव देवी सरव नयन मन मोहहीं
पांच सै धनुष तन पद्म आसन परम, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
लाल नख-मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं, स्याम-रंग भौंह सिर केश छबि देत हैं
बचन बोलत मनों हंसत कालुष हरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥
कोटि शशि भानु दुति तेज छिप जात है, महा-वैराग परिणाम ठहरात है
वयन नहिं कहै लखि होत सम्यक धरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुख करं ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाश ज्जिनालयस्थ जिन प्रतिमाभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अन्वयार्थ : नंदीश्वर द्वीप की एक दिशा का विस्तार चौड़ाई एक सौ त्रेसठ करोड चौरासी लाख महा योजन है । आगम में नंदीश्वर द्वीप आठवां द्वीप कहा गया है सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सर्व प्रतिमाओं को नमस्कार करता हूँ ।

नंदीश्वर जिन धाम, प्रतिमा महिमा को कहै
'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव सुख करै

अन्वयार्थ : नंदीश्वर द्वीप के जिन मंदिरों, एवं प्रतिमाओं की महिमा को कौन कह सकता है द्यानतराय जी कहते हैं कि इनका नाम लेना मात्र ही भक्ति है जो मोक्ष सुख को करने वाली है ।

निर्वाणक्षेत्र-पवैयाजी

परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये
सिद्धभूमि निश-दीस, मन-वच-तन पूजा करौं ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत् भवत् वषट् सन्निधि करणं

शुचि क्षीर-दधि-समनीर निरमल, कनक-झारी में भरौं
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं
भव-ताप कौ सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य: चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मोती-समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनन्द धरि तरौं
औगुन-हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य: अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन के हरौं
दु:ख-धाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य: पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज अनेक प्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौं
यह भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं
संशय-विमोह-विभरम-तम-हर, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भाव पावन आचरौं
सब करम पुञ्ज जलाय दीज्यो, जोर-कर विनती करौं ॥सम्मेद. ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौं
निहचैं मुकति-फल-देहु मोको, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य: फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गन्ध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं ॥सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रीचौबीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमों
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं ॥

नमों ऋषभ कैलासपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौं, सन्मति पावापुर अभिनन्दौं ॥
वन्दौं अजित अजित-पद-दाता, वन्दौं सम्भव भव-दु:ख घाता
वन्दौं अभिनन्दन गण-नायक, वन्दौं सुति सुति के दायक ॥
वन्दौं पद्म मुकति-पद्ाकर, वन्दौं सुपास आश-पासहर
वन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा, वन्दौं सुविधि सुविधि-निधि-कन्दा ॥
वन्दौं शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दौं श्रेयांस श्रेयांस महीतल
वन्दौं विमल-विमल उपयोगी, वन्दौं अनन्त-अनन्त सुखभोगी ॥
वन्दौं धर्म-धर्म विस्तारा, वन्दौं शान्ति, शान्ति मनधारा
वन्दौं कुन्थु, कुन्थु रखवालं, वन्दौं अर अरि हर गुणमालं ॥
वन्दौं मल्लि काम मल चूरन, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत पूरन
वन्दौं नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दौं पार्श्व-पास भ्र जगहर ॥
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भू पर
एक बार वन्दै जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥
नरपति नृप सुर शक्र कहावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै
विघन विनाशन मंगलकारी, गुण-विलास वन्दौं भवतारी ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो तीरथ जावै, पाप मिटावै, ध्यावै गावै, भगति करै
ताको जस कहिये, संपति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सरस्वती-पूजन

कविश्री द्यानतराय

(दोहा)

जनम-जरा-मृतु क्षय करे, हरे कुनय जड़-रीति
भवसागर सों ले तिरे, पूजे जिनवच-प्रीति ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै पुष्पांजलिं क्षिपामि ।

(थाली में विराजमान शास्त्रजी के समक्ष पुष्पांजलि धरें)

(त्रिभंगी)

क्षीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुख संगा
भरि कंचनझारी, धार निकारी, तृषा निवारी हित चंगा ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी
शारदपद वंदूं, मन अभिनंदूं, पाप निकंदूं दाह हरी ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

सुखदास कमोदं, धारक मोदं, अति अनुमोदं चंद समं
बहु भक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

बहु फूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनंदरासं लाय धरे
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया मिष्टमहा
पूजूँ थुति गाऊँ, प्रीति बढ़ाऊँ, क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै क्षुधरोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कर दीपक जोतं, तमक्षय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़े
तुम हो परकाशक भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़े ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुभगंध दशों कर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं
सब पाप जलावें, पुण्य कमावें, दास कहावें सेवत हैं ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बादाम छुहारे, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं
मनवाँछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता ध्यावत हैं ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

नयनन सुखकारी, मृदु गुनधारी, उज्ज्वल भारी मोलधरें
शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करें ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञान-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन अक्षत, फूल चरु अरु, दीप धूप अति फल लावे
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुखपावे ॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई ॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

(सोरठा छन्द)
ओंकार ध्वनिसार, द्वादशांग वाणी विमल
नमूं भक्ति उर धार, ज्ञान करे जड़ता हरे ॥

(चौपाई)
पहलो 'आचारांग' बखानो, पद अष्टादश-सहस प्रमानो
दूजो 'सूत्रकृतं' अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरुभाषं ॥
तीजो 'ठाना अंग' सुजानं, सहस बयालिस पद सरधानं
चौथो 'समवायांग' निहारं, चौंसठ सहस लाख-इक धारं ॥
पंचम 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं
छट्ठो 'ज्ञातृकथा' विस्तारं, पाँच लाख छप्पन हज्जारं ॥
सप्तम 'उपासकाध्ययनांगं', सत्तर सहस ग्यारलख भंगं
अष्टम 'अंतकृतं' दस ईसं, सहस अठाइस लाख तेईसं ॥
नवम 'अनुत्तरदश' सुविशालं, लाख बानवे सहस चवालं
दशम 'प्रश्नव्याकरण' विचारं, लाख तिरानवे सोल हजारं ॥
ग्यारम 'सूत्रविपाक' सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं ॥
द्वादश 'दृष्टिवाद पन भेदं, इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्याहन हैं॥
इक सौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने ॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं
साढ़े इकीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये ॥

(दोहा)
जा बानी के ज्ञान तें, सूझे लोकालोक
'द्यानत' जग-जयवंत हो, सदा देत हूँ धोक ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

आदिनाथ-भगवान

नाभिराय मरूदेवि के नंदन, आदिनाथ स्वामी महाराज
सर्वार्थ सिद्धितैं आप पधारे, मध्यलोक माहि जिनराज

इंद्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज
आह्वानन सबविधि मिल करके, अपने कर पूजें प्रभुपाय

अन्वयार्थ : आदिनाथ स्वामी महाराज नाभिराय और मरू देवि के (नंदन) पुत्र हैं, आप सर्वार्थ सिद्धि से इस मध्य लोक में पधारे हैं, इंद्र आदि देव जन्मोत्सव मानाने के लिए आये! हम सब मिलकर विधि पूर्वक आवाहनन, स्थापना करके, मन में विराजमान, सन्निधिकरण पूर्वक भगवान् के चरणों की पूजा करते हैं

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

क्षीरोदधि को उज्जवल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय
जनम जरा दुःख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मैं क्षीरसागर के स्वच्छ जल को लेकर श्री जिनेन्द्र भगवान् के चरणों को पूजने के लिए जाता हूँ । जन्म और बुढ़ापे के कष्टों के निवारण हेतु प्रभु जी के कमल चरणो पर जल अर्पित करता हूँ । मैं श्री आदिनाथ के चरणों में मन वचन काय से (बलि बलि) सर्वस्व अर्पण करता हूँ । हे करुणानिधि, आप मेरे सांसारिक दुखों का निवारण कर दीजिये, इसलिए मैं प्रभु आप के चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिरी चंदन दाह निकंदन, कंचन झारी में भर ल्याय !!
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, भव आताप तुरत मिट जाय !
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय!
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय !!

अन्वयार्थ : मलयागिरि का सर्वश्रेष्ठ, जलन का निवारक चंदन स्वर्ण की झारी में भरकर लाया हूँ । हेभव्य जीवों! इसको श्रीजी के चरणों में अर्पित करो, इससे संसार के दुखों का तुरंत निवारण हो जाता है । श्री आदिनाथ के कमल चरणों पर मैं मन वचन काय से सर्वस्व अर्पण करता हूँ । हे करुणानिधि, आप मेरे सांसारिक दुखों का निवारण कर दीजिये, इसलिए मैं प्रभु आप के चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शुभशालि अखंडित सौरभ मंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, अक्षय पद को तुरत उपाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : (शुभ) अच्छे शाली वन के (अखंडित) साबुत, सुगन्धित अक्षतों को प्रासुक जल से धोकर लाया हूँ । हे भव्य जीवों ! अक्षतों को श्रीजी के चरणों में अर्पित करना ही (अक्षय-पद) मोक्ष-पद की प्राप्ति का तुरंत उपाय है । श्री आदिनाथ के कमल चरणों पर मैं मन वचन काय से सर्वस्व अर्पण करता हूँ । हे करुणानिधि,आप मेरे सांसारिक दुखों का निवारण कर दीजिये,इसलिए मैं प्रभु आप के चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेल चमेली, श्री गुलाब के पुष्प मंगाय
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, कामबाण तुरत नसि जाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : हे भव्य जीवों ! कमल, केतकी, बेल,चमेली और गुलाब के पुष्प मंगाकर भगवान् के चरणों में अर्पित करने से कामवासनाओं का तुरंत नाश होता है ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज लीना षट्-रस भीना, श्री जिनवर आगे धरवाय
थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, जिन गुण गावत मन हरषाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मैं षट् रसों से **[भीना]** परिपूर्ण नैवेद्य से भरा थाल, क्षुधा रोग को नष्ट करने के लिए भगवान् के समक्ष रख/अर्पित कर रहा हूँ जिनेन्द्र भगवान् के गुणो का गान करते हुए मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हो रहा है ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा

जगमग जगमग होत दशोंदिश, ज्योति रही मंदिर में छाय
श्रीजी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुखदाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मै दीपक लेकर आया हूँ जिसकी ज्योति मंदिर जी को जगमगा कर दसो दिशाओ मे फैलकर प्रकाशित कर रही है । ऐसे दीपक से भगवान् के समक्ष आरती करने से अत्यंत दुखदायी मोहरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर कपूर सुगंध मनोहर, चंदन कूट सुगंध मिलाय
श्री जी के सन्मुख खेय धूपायन, कर्मजरे चहुँगति मिटि जाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मैंने अगर, कपूर और मनोहर सुगन्धित चंदन और अन्य सुगन्धित पदार्थों को कूट कर धूप बनायी है । भगवान् के सम्मुख धूपायन में इनको मैं खे रहा हूँ जिस से मेरे कर्म नष्ट हो जाए और मेरा चतुर गति रूप संसार समाप्त हो जाए ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्री फल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय
महा मोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : मैं श्री फल, बादाम, सुपारी, केला, छुहारा आदि सभी प्रकार के फल लेकर आया हूँ, उन्हें महा मोक्षफल प्राप्त करने के लिए,प्रभु आपके चरणों में अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय
दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय

अन्वयार्थ : पवित्र शुद्ध, स्वच्छ जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य लेकर प्रसन्न चित मन से दीप, धुप और फलों के अर्घ को हाथ में लेकर नाचते हुए, ताली बजाते हुए और ढोल बजते हुए भगवान् की पूजा करता हूँ

ॐ ह्रीं आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

पञ्च कल्याणक के अर्घ

सर्वारथ सिद्धितैं चये, मरू देवी उर आय
दोज असित आषाढ़ की,जजूँ तिहारे पाय

अन्वयार्थ : सर्वार्थ सिद्धि से चय कर (वहाँ आयु पूर्ण कर) आप मरू देवी माता के उदर/गर्भ में आषाढ़ बदी /कृष्णा पक्ष के द्वितीया को आये थे! मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ !

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्ण द्वितीयायं गर्भ कल्याणक प्राप्ताये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान्
सुरपति उत्सव अति करा, मैं पूजौं धरी ध्यान

अन्वयार्थ : चैत वदी/ कृष्णा के नवमी को भगवान् आदिनाथ का जन्म हुआ था, उस समय (सुरपति) इंद्र ने अति उत्साह पूर्वक उत्सव मनाया था ! मैं आपकी ध्यान पूर्वक पूजा करता हूँ !

ॐ ह्रीं चैतकृष्ण नवम्यां जन्मकल्याणक प्राप्ताये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

तृण वत् ऋद्धि सब छांड़ि के, तप धार्यो वन जाय
नौमी चैत असेत की, जजूँ तिहारे पाय

अन्वयार्थ : भगवन आपने समस्त वैभव को तृण के सामान छोड़कर वन में जाकर चैत वदी नवमी को तप धारण कर लिया !हम आपके चरणों की पूजा करते है

ॐ ह्रीं चैत कृष्ण नवम्यां तप कल्याणक प्राप्ताये श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

फाल्गुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान
इंद्र आय पूजा करी, मैं पूजो यह थान

अन्वयार्थ : फाल्गुन कृष्ण एकादशी को आपको केवल ज्ञान उत्पान होने के कारण इंद्र ने यहाँ आकर आपकी पूजा करी थी, मैं भी इस(थान) स्थान पर आकर आपके ज्ञान कल्याणक की पूजा करता हूँ

ॐ ह्रीं फाल्गुन कृष्ण एकादशम्यां ज्ञान कल्याणक प्राप्ताये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

माघ चतुर्दशी कृष्ण को, मोक्ष गए भगवान्
भवि जीवों को बोधिके, पहुँचे शिवपुर थान

अन्वयार्थ : माघ कृष्ण (वदि) चतुर्दशी को भगवान् आदिनाथ भव्य जीवों को उपदेश देकर मोक्ष (शिवपुर थान), सिद्धालय पधारे थे

ॐ ह्रीं माघ कृष्णचतुर्दश्यां मोक्ष कल्याणक प्राप्ताये श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आदीश्वर महाराज, मैं विनती तुम से करूँ
चारों गति के माहिं, मैं दु:ख पायो सो सुनो ॥

[लावनी छन्द]

ये अष्ट-कर्म मैं हूँ एकलो ये दुष्ट महादु:ख देत हो
कबहूँ इतर-निगोद में मोकूँ पटकत करत अचेत हो
म्हारी दीनतणी सुन वीनती

प्रभु! कबहुँक पटक्यो नरक में, जठे जीव महादु:ख पाय हो
निष्ठुर निरदई नारकी, जठै करत परस्पर घात हो ॥म्हारी-२॥

कोइयक बांधे खंभ सों पापी दे मुग्दर की मार हो
कोइयक काटे करौत सों पापी अंगतणी देय फाड़ हो ॥म्हारी-३॥

प्रभु! इहविधि दु:ख भुगत्या घणां, फिर गति पाई तिरियंच हो
हिरणा बकरा बाछला पशु दीन गरीब अनाथ हो
पकड़ कसाई जाल में पापी काट-काट तन खांय हो ॥म्हारी-४॥

प्रभु! मैं ऊँट बलद भैंसा भयो, जा पे लाद्यो भार अपार हो
नहीं चाल्यो जब गिर पड़्यो, पापी दें सोंटन की मार हो ॥म्हारी-५॥

प्रभु! कोइयक पुण्य-संयोग सूं, मैं तो पायो स्वर्ग-निवास हो
देवांगना संग रमि रह्यो, जठै भोगनि को परिवास हो ॥म्हारी-६॥

प्रभु! संग अप्सरा रमि रह्यो, कर कर अति-अनुराग हो
कबहुँक नंदन-वन विषै, प्रभु कबहुँक वनगृह-माँहिं हो ॥म्हारी-७॥

प्रभु! यहि विधिकाल गमायके, फिर माला गई मुरझाय हो
देव-थिति सब घट गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो
सोच करत तन खिर पड्यो,फिर उपज्यो गरभ में जाय हो ॥म्हारी-८॥

प्रभु! गर्भतणा दु:ख अब कहूँ, जठै सकुड़ाई की ठौर हो
हलन चलन नहिं कर सक्यो, जठै सघन-कीच घनघोर हो ॥म्हारी-९॥

प्रभु! माता खावे चरपरो, फिर लागे तन संताप हो
प्रभु! जो जननी तातो भखे, फिर उपजे तन संताप हो ॥म्हारी-१०॥

प्रभु! औंधे-मुख झूल्यो रह्यो, फेर निकसन कौन उपाय हो
कठिन कठिन कर नीसर्यो, जैसे निसरे जंत्री में तार हो ॥म्हारी-११॥

प्रभु! निकसत ही धरत्यां पड्यो, फिर लागी भूख अपार हो
रोय-रोय बिलख्यो घनो, दु:ख-वेदन को नहिं पार हो ॥म्हारी-१२॥

प्रभु! दु:ख-मेटन समरथ धनी, या तें लागूँ तिहारे पांय हो
सेवक अर्ज करे प्रभु मोकूँ, भवदधि-पार उतार हो ॥म्हारी-१३॥

दोहा
श्री जी की महिमा अगम है, कोई न पावे पार
मैं मति-अल्प अज्ञान हूँ, कौन करे विस्तार

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मन ल्याय
सुरगों में संशय नहीं, निश्चय शिवपुर जाय

॥- इत्याशीर्वाद: पुष्पांजलिं क्षिपेत् -॥

श्रीआदिनाथ-पूजन

परमपूज्य वृषभेष स्वयंभू देवजू
पिता नाभि मरुदेवि करें सुर सेवजू ॥
कनक वरण तन-तुंग धनुष पनशत तनो

कृपासिंधु इत आइ तिष्ठ मम दुख हनो ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

हिमवनोद् भव वारि सु धारिके, जजत हौं गुनबोध उचारिके
परमभाव सुखोदधि दीजिये, जन्ममृत्यु जरा क्षय कीजिये ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलय चन्दन दाहनिकन्दनं, घसि उभै कर में करि वन्दनं
जजत हौं प्रशमाश्रय दीजिये, तपत ताप तृषा छय कीजिये ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अमल तन्दुल खंडविवर्जितं, सित निशेष महिमामियतर्जितं
जजत हौं तसु पुंज धरायजी, अखय संपति द्यो जिनरायजी ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल चंपक केतकि लीजिये, मदनभंजन भेंट धरीजिये
परमशील महा सुखदाय हैं, समरसूल निमूल नशाय हैं ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

सरस मोदनमोदक लीजिये, हरनभूख जिनेश जजीजिये
सकल आकुल अंतकहेतु हैं, अतुल शांत सुधारस देतु हैं ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय क्षुधादिरोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

निविड़ मोह महातम छाइयो, स्वपर भेद न मोहि लखाइयो
हरनकारण दीपक तासके, जजत हौं पद केवल भासके ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर चन्दन आदिक लेय के, परम पावन गंध सु खेय के
अगनिसंग जरें मिस धूम के, सकल कर्म उड़े यह घूम के ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस पक्व मनोहर पावने, विविध ले फल पूज रचावने
त्रिजगनाथ कृपा अब कीजिये, हमहिं मोक्ष महाफल दीजिये ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलफलादि समस्त मिलायके, जजत हौं पद मंगल गायके
भगत वत्सल दीन दयालजी, करहु मोहि सुखी लखि हालजी ॥
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
असित दोज आषाढ़ सुहावनो, गरभ मंगल को दिन पावनो
हरि सची पितुमातहिं सेवही, जजत हैं हम श्री जिनदेव ही ॥
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णा द्वितीयादिने गर्भमगंलप्राप्ताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा
असित चैत सु नौमि सुहाइयो, जनम मंगल ता दिन पाइयो
हरि महागिरिपे जजियो तबै, हम जजें पद पंकज को अबै ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णा नवमीदिने जन्ममगंलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा
असित नौमि सु चैत धरे सही, तप विशुद्ध सबै समता गही
निज सुधारस सों भर लाइके, हम जजें पद अर्घ चढ़ाइके ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णा नवमीदिने दीक्षामगंलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित फागुन ग्यारसि सोहनों, परम केवलज्ञान जग्यो भनौं
हरि समूह जजें तहँ आइके, हम जजें इत मंगल गाइके ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित चौदसि माघ विराजई, परम मोक्ष सुमंगल साजई
हरि समूह जजें कैलाशजी, हम जजें अति धार हुलास जी ॥
ॐ ह्रीं माघकृष्णा चतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
जयमाला

जय जय जिनचन्दा आदि जिनन्दा, हनि भवफन्दा कन्दा जू
वासव शतवंदा धरि आनन्दा, ज्ञान अमंदा नन्दा जू

त्रिलोक हितंकर पूरन पर्म, प्रजापति विष्णु चिदातम धर्म
जतीसुर ब्रह्मविदाबंर बुद्ध, वृषंक अशंक क्रियाम्बुधि शुद्ध
जबै गर्भागम मंगल जान, तबै हरि हर्ष हिये अति आन
पिता जजनी पद सेव करेय, अनेक प्रकार उमंग भरेय
जन्मे जब ही तब ही हरि आय, गिरेन्द्रविषै किय न्हौन सुजाय
नियोग समस्त किये तित सार, सु लाय प्रभू पुनि राज अगार
पिता कर सौंपि कियो तित नाट, अमंद अनंद समेत विराट
सुथान पयान कियो फिर इंद, इहां सुर सेव करें जिनचन्द
कियौ चिरकाल सुखाश्रित राज, प्रजा सब आनँद को तित साज

सुलिप्त सुभोगिनि में लखि जोग, कियो हरि ने यह उत्तम योग
निलंजन नाच रच्यो तुम पास, नवों रस पूरित भाव विलास
बजै मिरदंग दम दम जोर, चले पग झारि झनांझन जोर
घना घन घंट करे धुनि मिष्ट, बजै मुहचंग सुरान्वित पुष्ट
खड़ी छिनपास छिनहि आकाश, लघु छिन दीरघ आदि विलास
ततच्छन ताहि विलै अविलोय, भये भवतैं भवभीत बहोय
सुभावत भावन बारह भाय, तहां दिव ब्रह्म रिषीश्वर आय
प्रबोध प्रभू सु गये निज धाम, तबे हरि आय रची शिवकाम
कियो कचलौंच प्रयाग अरण्य, चतुर्थम ज्ञान लह्यो जग धन्य
धर् यो तब योग छमास प्रमान, दियो श्रेयांस तिन्हें इखु दान
भयो जब केवलज्ञान जिनेंद्र, समोसृत ठाठ रच्यो सु धनेंद्र
तहां वृष तत्व प्रकाशि अशेष, कियो फिर निर्भय थान प्रवेश
अनन्त गुनातम श्री सुखराश, तुम्हें नित भव्य नमें शिव आश

यह अरज हमारी सुन त्रिपुरारी, जन्म जरा मृतु दूर करो
शिवसंपति दीजे ढील न कीजे, निज लख लीजे कृपा धरो
ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो ऋषभेश्वर पूजे, मनवचतन भाव शुद्ध कर प्रानी
सो पावै निश्चै सों, भुक्ति औ मुक्ति सार सुख थानी
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीअजितनाथ-पूजन

त्याग वैजयन्त सार सार-धर्म के अधार,
जन्मधार धीर नम्र सुष्टु कौशलापुरी
अष्ट दुष्ट नष्टकार मातु वैजयाकुमार,
आयु लक्षपूर्व दक्ष है बहत्तरैपुरी ॥
ते जिनेश श्री महेश शत्रु के निकन्दनेश,
अत्र हेरिये सुदृष्टि भक्त पै कृपा पुरी
आय तिष्ठ इष्टदेव मैं करौं पदाब्जसेव,
परम शर्मदाय पाय आय शर्न आपुरी ॥
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिन ! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाह्रदपानी निर्मल आनी, सौरभ सानी सीतानी
तसु धारत धारा तृषा निवारा, शांतागारा सुखदानी ॥
श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खग्गेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जग्गेशं ॥
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि चंदन बावन ताप मिटावन, सौरभ पावन घसि ल्यायो
तुम भवतपभंजन हो शिवरंजन, पूजन रंजन मैं आयो ॥ श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सितखंड विवर्जित निशिपति तर्जित, पुंज विधर्जित तंदुल को
भवभाव निखर्जित शिवपदसर्जित, आनंदभर्जित दंदल को ॥ श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मनमथ-मद-मंथन धीरज-ग्रंथन, ग्रंथ-निग्रंथन ग्रंथपति
तुअ पाद कुसेसे आधि कुशेसे, धारि अशेसे अर्चयती ॥ श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

आकुल कुलवारन थिरताकारन, क्षुधाविदारन चरु लायो
षट् रस कर भीने अन्न नवीने, पूजन कीने सुख पायो ॥ श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक-मनि-माला जोत उजाला, भरि कनथाला हाथ लिया
तुम भ्रमतम हारी शिवसुख कारी, केवलधारी पूज किया
श्री अजित जिनेशं नुतनाकेशं, चक्रधरेशं खग्गेशं
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजौं ख्याता जग्गेशं ॥
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगरादिक चूरन परिमल पूरन, खेवत क्रूरन कर्म जरें
दशहूं दिश धावत हर्ष बढ़ावत, अलि गुण गावत नृत्य करें ॥ श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बादाम नंरगी श्रीफल पुंगी आदि अभंगी सों अरचौं
सब विघनविनाशे सुख प्रकाशै, आतम भासै भौ विरचौं ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलफल सब सज्जे, बाजत बज्जै, गुनगनरज्जे मनमज्जे
तुअ पदजुगमज्जै सज्जन जज्जै, ते भवभज्जै निजकज्जै ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंच कल्याणक अर्घ्यावली

जेठ असेत अमावशि सोहे, गर्भदिना नँद सो मन मोहे
इंद फनिंद जजे मनलाई, हम पद पूजत अर्घा चढ़ाई ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णा-अमावस्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

माघ सुदी दशमी दिन जाये, त्रिभुवन में अति हरष बढ़ाये
इन्द फनिंद जजें तित आई, हम इत सेवत हैं हुलशाई ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्ला दशमीदिने जन्मंगलप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

माघ सुदी दशमी तप धारा, भव तन भोग अनित्य विचारा
इन्द फनिंद जजैं तित आई, हम इत सेवत हैं सिरनाई ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्ला दशमीदिने दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पौषसुदी तिथि ग्यारस सुहायो, त्रिभुवनभानु सु केवल जायो
इन्द फनिंद जजैं आई, हम पद पूजत प्रीति लगाई ॥
ॐ ह्रीं पौषशुक्लाएकादशीदिनेज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचमि चैतसुदी निरवाना, निजगुनराज लियो भगवाना
इन्द फनिंद जजैं तित आई, हम पद पूजत हैं गुनगाई ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ला पंचमीदिने निर्वाणमंगलप्राप्ताय श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
दोहाः- अष्ट दुष्टको नष्ट करि इष्टमिष्ट निज पाय
शिष्ट धर्म भाख्यो हमें पुष्ट करो जिनराय

जय अजित देव तुअ गुन अपार, पै कहूँ कछुक लघु बुद्धि धार
दश जनमत अतिशय बल अनन्त, शुभ लच्छन मधुबचन भनंत
संहनन प्रथम मलरहित देह, तन सौरभ शोणित स्वेत जेह
वपु स्वेदबिना महरुप धार, समचतुर धरें संठान चार

दश केवल, गमन अकाशदेव, सुरभिच्छ रहै योजन सतेव
उपसर्गरहित जिनतन सु होय, सब जीव रहित बाधा सुजोय
मुख चारि सरबविद्या अधीश, कवलाअहार सुवर्जित गरीश
छायाबिनु नख कच बढ़ै नाहिं, उन्मेश टमक नहिं भ्रकुटि माहिं
सुरकृत दशचार करों बखान, सब जीवमित्रता भाव जान
कंटक विन दर्पणवत सुभूम, सब धान वृच्छ फल रहै झूम
षटरितु के फूल फले निहार, दिशि निर्मल जिय आनन्द धार
जंह शीतल मंद सुगंध वाय, पद पंकज तल पंकज रचाय
मलरहित गगन सुर जय उचार, वरषा गन्धोदक होत सार
वर धर्मचक्र आगे चलाय, वसु मंगलजुत यह सुर रचाय 8
सिंहासन छत्र चमर सुहात, भामंडल छवि वरनी न जात
तरु उच्च अशोक रु सुमनवृष्टि, धुनि दिव्य और दुन्दुभि सुमिष्ट
हग ज्ञान शर्म वीरज अनन्त, गुण छियालीस इम तुम लहन्त
इन आदि अनन्ते सुगुनधार, वरनत गनपति नहिं लहत पार
तब समवशरणमँह इन्द्र आय, पद पूजन बसुविधि दरब लाय
अति भगति सहित नाटक रचाय, ताथेई थेई थेई धुनि रही छाय
पग नूपुर झननन झनननाय, तननननन तननन तान गाय
घननन नन नन घण्टा घनाय, छम छम छम छम घुंघरु बजाय
द्रम द्रम द्रम द्रम द्रम मुरज ध्वान, संसाग्रदि सरंगी सुर भरत तान
झट झट झट अटपट नटत नाट, इत्यादि रच्यो अद्भुत सुठाट
पुनि वन्दि इन्द्र सुनुति करन्त, तुम हो जगमें जयवन्त सन्त
फिर तुम विहार करि धर्मवृष्टि, सब जोग निरोध्यो परम इष्ट
सम्मेदथकी तिय मुकति थान, जय सिद्धशिरोमन गुननिधान
'वृन्दावन' वन्दत बारबार, भवसागरतें मोहि तार तार 15

जय अजित कृपाला गुणमणिमाला, संजमशाला बोधपति
वर सुजस उजाला हीरहिमाला, ते अधिकाला स्वच्छ अती
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो जन अजित जिनेश जजें हैं, मनवचकाई
ताकों होय अनन्द ज्ञान सम्पति सुखदाई ॥
पुत्र मित्र धनधान्य, सुजस त्रिभुवनमहँ छावे
सकल शत्रु छय जाय अनुक्रमसों शिव पावे
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीसंभवनाथ-पूजन

जय संभव जिनचन्द्र सदा हरिगनचकोरनुत
जयसेना जसु मातु जैति राजा जितारिसुत ॥
तजि ग्रीवक लिय जन्म नगर श्रावस्ती आई
सो भव भंजन हेत भगत पर होहु सहाई
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

मुनि मन सम उज्ज्वल जल लेकर, कनक कटोरी में धार
जनम जरा मृतु नाश करन कों, तुम पदतर ढारों धारा ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन पावे ॥
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

तपत दाह को कन्दन चंदन मलयागिरि को घसि लायो
जगवंदन भौफंदन खंदन समरथ लखि शरनै आयो ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन पावे ॥
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास कमलवासित, सित सुन्दर अनियारे
पुंज धरौं जिन चरनन आगे, लहौं अखयपद कों प्यारे ॥संभव॥
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेल चमेली, चंपा जूही सुमन वरा
ता सों पूजत श्रीपति तुम पद, मदन बान विध्वंस करा ॥संभव॥
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर मोदन मोदक, खाजा ताजा सरस बना
ता सों पद श्रीपति को पूजत, क्षुधा रोग ततकाल हना ॥संभव॥
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

घटपट परकाशक भ्रमतम नाशक, तुमढिग ऐसो दीप धरौं
केवल जोत उदोत होहु मोहि, यही सदा अरदास करौं ॥संभव॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्नागर श्रीखंडादिक चूर हुतासन में
खेवत हौं तुम चरन जलज ढिग, कर्म छार जरिहै छन में ॥संभव॥
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल लौंग बदाम छुहारा, एला पिस्ता दाख रमैं
लै फल प्रासुक पूजौं तुम पद देहु अखयपद नाथ हमैं ॥संभव॥
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ किया
तुमको अरपौं भाव भगतिधर, जै जै जै शिव रमनि पिया ॥
संभव जिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावे
निज निधि ज्ञान दरश सुख वीरज, निराबाध भविजन पावे ॥
ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
माता गर्भ विषै जिन आय, फागुन सित आठैं सुखदाय
सेयो सुर-तिय छप्पन वृन्द, नाना विधि मैं जजौं जिनन्द ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुन शुक्लाष्टम्यां गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
कार्तिक सित पूनम तिथि जान, तीन ज्ञान जुत जनम प्रमाण
धरि गिरि राज जजे सुरराज, तिन्हें जजौं मैं निज हित काज ॥
ॐ ह्रीं कार्तिक शुक्ला पूर्णिमायां जन्मकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
मंगसिर सित पून्यों तप धार, सकल संग तजि जिन अनगार
ध्यानादिक बल जीते कर्म, चचौं चरन देहु शिवशर्म ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षपूर्णिमायां तपकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
कार्तिक कलि तिथि चौथ महान, घाति घात लिय केवल ज्ञान
समवशरनमहँ तिष्ठे देव, तुरिय चिह्न चचौं वसुभेव ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाचतुर्थी ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
चैतशुक्ल तिथि षष्ठी चोख, गिरिसम्मेदतें लीनों मोख
चार शतक धनु अवगाहना, जजौं तास पद थुति कर घना ॥
ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ला षष्ठीदिने मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्री संभव के गुन अगम, कहि न सकत सुरराज
मैं वश भक्ति सु धीठ ह्वै, विनवौं निजहित काज

जिनेश महेश गुणेश गरिष्ट, सुरासुर सेवित इष्ट वरिष्ट
धरे वृषचक्र करे अघ चूर, अतत्व छपातम मर्द्दन सूर ॥
सुतत्त्व प्रकाशन शासन शुद्ध, विवेक विराग बढ़ावन बुद्ध
दया तरु तर्पन मेघ महान, कुनय गिरि गंजन वज्र समान ॥
सुगर्भरु जन्म महोत्सव मांहि, जगज्जन आनन्दकन्द लहाहिं
सुपूरब साठहि लच्छ जु आय, कुमार चतुर्थम अंश रमाय ॥
चवालिस लाख सुपूरब एव, निकंटक राज कियो जिनदेव
तजे कछु कारन पाय सु राज, धरे व्रत संजम आतम काज ॥
सुरेन्द्र नरेन्द्र दियो पयदान, धरे वन में निज आतम ध्यान
किया चव घातिय कर्म विनाश, लयो तब केवलज्ञान प्रकाश ॥
भई समवसृति ठाट अपार, खिरै धुनि झेलहिं श्री गणधार
भने षट्-द्रव्य तने विसतार, चहूँ अनुयोग अनेक प्रकार ॥
कहें पुनि त्रेपन भाव विशेष, उभै विधि हैं उपशम्य जुभेष
सुसम्यकचारित्र भेद-स्वरुप, भये इमि छायक नौ सु अनूप ॥
दृगौ बुधि सम्यक चारितदान, सुलाभ रु भोगुपभोगप्रमाण
सुवीरज संजुत ए नव जान, अठार छयोपशम इम प्रमान ॥
मति श्रुत औधि उभै विधि जान, मनःपरजै चखु और प्रमान
अचक्खु तथा विधि दान रु लाभ, सुभोगुपभोग रु वीरजसाभ ॥
व्रताव्रत संजम और सु धार, धरे गुन सम्यक चारित भार
भए वसु एक समापत येह, इक्कीस उदीक सुनो अब जेह ॥
चहुँ गति चारि कषाय तिवेद, छह लेश्या और अज्ञान विभेद
असंजम भाव लखो इस माहिं, असिद्धित और अतत्त कहाहिं ॥
भये इकबीस सुनो अब और, सुभेदत्रियं पारिनामिक ठौर
सुजीवित भव्यत और अभव्व, तरेपन एम भने जिन सव्व ॥
तिन्हो मँह केतक त्यागन जोग, कितेक गहे तें मिटे भव रोग
कह्यो इन आदि लह्यो फिर मोख, अनन्त गुनातम मंडित चोख ॥
जजौं तुम पाय जपौं गुनसार, प्रभु हमको भवसागर तार
गही शरनागत दीनदयाल, विलम्ब करो मति हे गुनमाल ॥
घताः- जै जै भव भंजन जन मन रंजन, दया धुरंधर कुमतिहरा
वृन्दावन वंदत मन आनन्दित, दीजै आतम ज्ञान वरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो बांचे यह पाठ सरस संभव तनो
सो पावे धनधान्य सरस सम्पति घनो ॥
सकल पाप छय जाय सुजस जग में बढ़े
पूजत सुर पद होय अनुक्रम शिव चढ़े
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीअभिनन्दननाथ-पूजन

अभिनन्दन आनन्दकंद, सिद्धारथनन्दन
संवर पिता दिनन्द चन्द, जिहिं आवत वन्दन ॥
नगर अयोध्या जनम इन्द, नागिंद जु ध्यावें
तिन्हें जजन के हेत थापि, हम मंगल गावें 1
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्र ! अत्र मम सभिहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पदमद्रहगत गंगचंग, अंभग-धार सु धार है
कनकमणि नगजड़ित झारी, द्वार धार निकार है ॥
कलुषताप निकंद श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द हैं
पद वंद वृन्द जजें प्रभू, भवदंद फंद निकंद हैं ॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल चन्दन कदलि नन्दन, जल सु संग घसाय के
होय सुगंध दशों दिशा में, भ्रमें मधुकर आय के ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

हीर हिम शशि फेन मुक्ता सरिस तंदुल सेत हैं
तास को ढिग पुञ्ज धारौं अक्षयपद के हेत हैं ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

समर सुभट निघटन कारन सुमन सु मन समान
सुरभि तें जा पे करें झंकार मधुकर आन हैं ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

सरस ताजे नव्य गव्य मनोज्ञ चितहर लेय जी

छुधाछेदन छिमा छितिपति के चरन चरचेय जी ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

अतत तम-मर्दन किरनवर, बोधभानु-विकाश है
तुम चरनढिग दीपक धरौं, मो कों स्वपर प्रकाश है ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

भुर अगर कपूर चुर सुगंध, अगिनि जराय है
सब करमकाष्ठ सु काटने मिस, धूम धूम उड़ाय है ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

7

आम निंबु सदा फलादिक, पक्क पावन आन जी
मोक्षफल के हेत पूजौं, जोरि के जुग पान जी ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट द्रव्य संवारि सुन्दर सुजस गाय रसाल ही
नचत रजत जजौं चरन जुग, नाय नाय सुभाल ही ॥कलुष॥
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

शुकल छट्ट वैशाख विषै तजि, आये श्री जिनदेव
सिद्धारथा माता के उर में, करे सची शुचि सेव ॥
रतन वृष्टि आदिक वर मंगल, होत अनेक प्रकार
ऐसे गुननिधि को मैं पूजौं, ध्यावौं बारम्बार ॥
ॐ ह्री वैशाखशुक्ला षष्ठीदिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
माघ शुकल तिथि द्वादशि के दिन, तीन लोक हितकार
अभिनन्दन आनन्दकंद तुम, लिनो जग अवतार ॥
एक महूरत नरकमांहि हू, पायो सब जिय चैन
कनकवरन कपि-चिह्न-धरन पद जजौं तुम्हें दिन रैन ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्ला द्वादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
साढ़े छत्तिस लाख सुपूरब, राज भोग वर भोग
कछु कारन लखि माघ शुकल, द्वादशि को धार् यो जोग ॥
षष्टम नियम समापत करि, लिय इंद्रदत्त घर छीर
जय धुनि पुष्प रतन गंधोदक, वृष्टि सुगंध समीर ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्ला द्वादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
पौष शुक्ल चौदशि को घाते, घाति करम दुखदाय

उपजायो वर बोध जास को, केवल नाम कहाय ॥
समवसन लहि बोधि धरम कहि, भव्य जीव सुखकन्द
मो कों भवसागर तें तारो, जय जय जय अभिनन्द ॥
ॐ ह्रीं पौषशुक्ला चतुर्दश्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
जोग निरोग अघातिघाति लहि, गिर समेद तें मोख
मास सकल सुखरास कहे, बैशाख शुकल छठ चोख ॥
चतुरनिकाय आय तित कीनी, भगति भाव उमगाय
हम पूजत इत अरघ लेय जिमि, विघन सघन मिट जाय ॥
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ला षष्ठीदिने मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

दोहाः- तुंग सु तन धनु तीन सौ, औ पचास सुख धाम
कनक वरन अवलौकि के, पुनि पुनि करुं प्रणाम

सच्चिदानन्द सद्ज्ञान सद्दर्शनी, सत्स्वरुपा लई सत्सुधा सर्सनी
सर्वाआनन्दाकंदा महादेवा, जास पादाब्ज सेवैं सबै देवता
गर्भ औ जन्म निःकर्म कल्यान में, सत्व को शर्म पूरे सबै थान में
वंश इक्ष्वाकु में आप ऐसे भये, ज्यों निशा शर्द में इन्दु स्वेच्छै ठये

होत वैराग लौकांतुर बोधियो, फेरि शिविकासु चढ़ि गहन निज सोधियो
घाति चौघातिया ज्ञान केवल भयो, समवसरनादि धनदेव तब निरमयो
एक है इन्द्र नीली शिला रत्न की, गोल साढ़ेदशै जोजने रत्न की
चारदिश पैड़िका बीस हज्जार है, रत्न के चूर का कोट निरधार है
कोट चहुंओर चहुंद्वार तोरन खँचे, तास आगे चहूं मानथंभा रचे
मान मानी तजैं जास ढिग जाय के, नम्रता धार सेवें तुम्हें आय के

बिंब सिंहासनों पै जहां सोहहीं, इन्द्रनागेन्द्र केते मने मोहहीं
वापिका वारिसों जत्र सोहे भरी, जास में न्हात ही पाप जावै टरी
तास आगे भरी खातिका वारि सों, हंस सूआदि पंखी रमैं प्यार सों
पुष्प की वाटिका बाग वृक्षें जहां, फूल औ श्री फले सर्व ही हैं तहां
कोट सौवर्ण का तास आगे खड़ा, चार दर्वाज चौ ओर रत्नों जड़ा
चार उद्यान चारों दिशा में गना, है धुजापंक्ति और नाट्यशाला बना
तासु आगें त्रिती कोट रुपामयी, तूप नौ जास चारों दिशा में ठयी
धाम सिद्धान्त धारीनके हैं जहां, औ सभाभूमि है भव्य तिष्ठें तहां
तास आगे रची गन्धकूटी महा, तीन है कट्टिनी चारु शोभा लहा
एक पै तौ निधैं ही धरी ख्यात हैं, भव्य प्रानी तहां लो सबै जात हैं

दूसरी पीठ पै चक्रधारी गमै, तीसरे प्रातिहारज लशै भाग में
तास पै वेदिका चार थंभान की, है बनी सर्व कल्यान के खान की
तासु पै हैं सुसिंघासनं भासनं, जासु पै पद्म प्राफुल्ल है आसनं
तासु पै अन्तरीक्षं विराजै सही, तीन छत्रे फिरें शीस रत्ने यही
वृक्ष शोकापहारी अशोकं लसै, दुन्दुभी नाद औ पुष्प खंते खसै
देह की ज्योतिसों मण्डलाकार है, सात सौ भव्य ता में लखेंसार है
दिव्य वानी खिरे सर्व शंका हरे, श्री गनाधीश झेलें सु शक्ति धरे
धर्मचक्री तुही कर्मचक्री हने, सर्वशक्री नमें मोद धारे घने
भव्य को बोधि सम्मेदतें शिव गये, तत्र इन्द्रादि पूजै सु भक्तिमये
हे कृपासिंधु मो पै कृपा धारिये, घोर संसार सों शीघ्र मो तारिये
छन्दः- जय जय अभिनन्दा आनंदकंदा, भव समुन्द्र वर पोत इवा
भ्रम तम शतखंडा, भानुप्रचंडा, तारि तारि जग रैन दिवा

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीअभिनन्दन पाप निकन्दन तिन पद जो भवि जजै सु धहर
ता के पुन्य भानु वर उग्गे दुरित तिमिर फाटै दुखकार ॥
पुत्र मित्र धन धान्य कमल यह विकसै सुखद जगतहित प्यार
कछुक काल में सो शिव पावै, पढ़ै सुने जिन जजै निहार ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीसुमतिनाथ-पूजन

संजम रतन विभूषन भूषित, दूषन वर्जित श्री जिनचन्द
सुमति रमा रंजन भवभंजन, संजययंत तजि मेरु नरिंद ॥
मातु मंगला सकल मंगला, नगर विनीता जये अमंद
सो प्रभु दया सुधा रस गर्भित आय तिष्ठ इत हरो दुःख दंद

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पंचम उदधितनों सम उजज्वल, जल लीनों वरगंध मिलाय
कनक कटोरी माहिं धारि करि, धार देहु सुचि मन वच काय ॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय

तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागर घनसार घसौं वर, केशर अर करपूर मिलाय
भवतपहरन चरन पर वारौं, जनम जरा मृतु ताप पलाय ॥हरि
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शशिसम उज्ज्वल सहित गंधतल, दोनों अनी शुद्ध सुखदास
सौ लै अखय संपदा कारन, पुञ्ज धरौं तुम चरनन पास
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवनके राय
तुम पद पद्म सद्म शिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय ॥
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेल चमेली, करना अरु गुलाब महकाय
सो ले समरशूल छयकारन, जजौं चरन अति प्रीति लगाय ॥हरि
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य गव्य पकवान बनाऊँ, सुरस देखि दृग मन ललचाय
सौ लै छुधारोग, धरौं चरण ढिग मन हरषाय ॥हरि
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

रतन जड़ित अथवा घृतपूरित, वा कपूरमय जोति जगाय
दीप धरौं तुम चरनन आगे जातें केवलज्ञान लहाय ॥हरि
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागरु चंदन, चूरि अगनि में देत जराय
अष्टकरम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम धूम यह तासु उड़ाय ॥हरि
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल मातुलिंग वर दाड़िम, आम निंबु फल प्रासुक लाय
मोक्ष महाफल चाखन कारन, पूजत हौं तुमरे जुग पाय ॥हरि0
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु दीप धूप फल सकल मिलाय
नाचि राचि शिरनाय समरचौं, जय जय जय 2 जिनराय ॥हरि
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

संजयंत तजि गरभ पधारे, सावनसेत दुतिय सुखकारे
रहे अलिप्त मुकुर जिमि छाया, जजौं चरन जय 2 जिनराया ॥
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्ला द्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैत सुकल ग्यारस कहँ जानो, जनमे सुमति त्रयज्ञानों
मानों धर्यो धरम अवतारा, जजौं चरनजुग अष्ट प्रकासा ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

बैशाख सुकल नौमि भाखा, ता दिन तप धरि निज रस चाखा
पारन पद्म सद्म पय कीनों, जजत चरन हम समता भीनों ॥
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ला नवम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुकल चैत एकादश हाने, घाति सकल जे जुगपति जाने
समवसरनमँह कहि वृष सारं, जजहुं अनंत चतुष्टयधारं ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां ज्ञान कल्याणकप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैत सुकल ग्यारस निरवानं, गिरि समेद तें त्रिभुवन मानं
गुन अनन्त निज निरमल धारी, जजौं देव सुधि लेहु हमारी ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

सुमति तीन सौ छत्तीसौं, सुमति भेद दरसाय
सुमति देहु विनती करौं, सु मति विलम्ब कराय
दयाबेलि तहँ सुगुननिधि, भविक मोद-गण-चन्द
सुमतिसतीपति सुमति कों, ध्यावौं धरि आनन्द
पचं परावरतन हरन, पंच सुमति सिर देन
पंच लब्धि दातार के, गुन गाऊँ दिन रैन

पिता मेघराजा सबै सिद्ध काजा, जपें नाम ता को सबै दुःखभाजा
महासुर इक्ष्वाकुवंशी विराजे, गुणग्राम जाकौ सबै ठौर छाजै
तिन्हों के महापुण्य सों आप जाये, तिहुँलोक में जीव आनन्द पाये
सुनासीर ताही धरी मेरु धायो, क्रिया जन्म की सर्व कीनी यथा यों
बहुरि तातकों सौंपि संगीत कीनों, नमें हाथ जोरी भलीभक्ति भीनों
बिताई दशै लाख ही पूर्व बालै, प्रजा उन्तीस ही पूर्व पालै

कछु हेतु तें भावना बारा भाये, तहाँ ब्रह्मलोकान्त देव आये
गये बोधि ताही समै इन्द्र आयो, धरे पालकी में सु उद्यान ल्यायो
नमः सिद्ध कहि केशलोंचे सबै ही, धर्यो ध्यान शुद्धं जु घाती हने ही
लह्यो केवलं औ समोसर्न साजं, गणाधीश जु एक सौ सोल राजं
खिरै शब्द ता में छहौं द्रव्य धारे, गुनौपर्ज उत्पाद व्यय ध्रौव्य सारे
तथा कर्म आठों तनी थिति गाजं, मिले जासु के नाश तें मोच्छराजं
धरें मोहिनी सत्तरं कोड़कोड़ी, सरित्पत्प्रमाणं थिति दीर्घ जोड़ी
अवर्ज्ञान दृग्वेदिनी अन्तरायं, धरें तीस कोड़ाकुड़ि सिन्धुकायं
तथा नाम गोतं कुड़ाकोड़ि बीसं, समुद्र प्रमाणं धरें सत्तईसं
सु तैतीस अब्धि धरें आयु अब्धिं, कहें सर्व कर्मों तनी वृद्धलब्धिं
जघन्यं प्रकारे धरे भेद ये ही, मुहूर्तं वसू नामं-गोतं गने ही
तथा ज्ञान दृग्मोह प्रत्यूह आयं, सुअन्तर्मुहूर्त्तं धरें थित्ति गायं
तथा वेदनी बारहें ही मुहुर्तं, धरैं थित्ति ऐसे भन्यो न्यायजुत्तं
इन्हें आदि तत्वार्थ भाख्यो अशेसा, लह्यो फेरि निर्वाण मांहीं प्रवेसा
अनन्तं महन्तं सुरंतं सुतंतं, अमन्दं अफन्दं अनन्तं अभन्तं
अलक्षं विलक्षं सुलक्षं सुदक्षं, अनक्षं अवक्षं अभक्षं अतक्षं
अवर्णं सुवर्णं अमर्णं अकर्णं, अभर्णं अतर्णं अशर्णं सुशर्णं
अनेकं सदेकं चिदेकं विवेकं, अखण्डं सुमण्डं प्रचण्डं सदेकं
सुपर्मं सुधर्मं सुशर्मं अकर्मं, अनन्तं गुनाराम जयवन्त धर्मं
नमें दास वृन्दावनं शर्न आई, सबै दुःख तें मोहि लीजे छुड़ाई
घत्ता- तुम सुगुन अनन्ता घ्यावत सन्ता, भ्रमतम भंजन मार्तंडा
सतमत करचंडा भवि कज मंडा, कुमति-कुबल-भन गन हंडा ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

सुमति चरन जो जजैं भविक जन मनवचकाई
तासु सकल दुख दंद फंद ततछिन छय जाई ॥
पुत्र मित्र धन धान्य शर्म अनुपम सो पावै
'वृन्दावन' निर्वाण लहे निहचै जो ध्यावै ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीपद्मप्रभ-पूजन

पदम-राग-मनि-वरन-धरन, तनतुंग अढ़ाई
शतक दंड अघखंड, सकल सुर सेवत आई ॥
धरनि तात विख्यात सु सीमाजू के नंदन

पदम चरन धरि राग सुथापौं इत करि वंदन ॥

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्रावतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

पूजौं भाव सों, श्री पदमनाथपद सार, पूजौं भाव सों टेक
गंगाजल अति प्रासुक लीनों, सौरभ सकल मिलाय
मन वचन तन त्रयधार देत ही, जनम-जरा-मृतु जाय
पूजौं भाव सों, श्री पदमनाथ पद-सार, पूजौं भाव सों ॥
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिर कपूर चंदन घसि, केशर रंग मिलाय
भवतपहरन चरन पर वारौं, मिथ्याताप मिटाय पूजौं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल उज्ज्वल गंध अनी जुत, कनक थार भर लाय
पुंज धरौं तुव चरनन आगे, मोहि अखयपद दाय पूजौं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मदार कल्पतरु-जनित, सुमन शुचि लाय
समरशूल निरमूल-करनकों, तुम पद पद्म चढ़ाय पूजौ
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर आदि मनोहर, सद्य सजे शुचि लाय
क्षुधा रोग निर्वारन कारन, जजौं हरष उर लाय पूजौं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक ज्योति जगाय ललित वर, धूम रहित अभिराम
तिमिर मोह नाशन के कारन, जजौं चरन गुनधाम पूजौं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागर मलयगिर चंदन, चूर सुगंध बनाय
अगनि माहिं जारौं तुम आगे, अष्टकर्म जरि जाय पूजौं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस-वरन रसना मन भावन, पावन फल अधिकार
ता सों पूजौं जुगम चरन यह, विघम करम निरवार पूजौं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि मिलाय गाय गुन, भगति भाव उमगाय
जजौं तुमहिं शिवतिय वर जिनवर, आवागमन मिटाय पूजौं
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पच कलयणक अरघयवल
छंद द्रुतविलंबिता तथा सुन्दरी (मात्रा 16)
असित माघ सु छट्ट बखानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये
ऊरध ग्रीवक सों चये राज जी, जजत इन्द्र जजैं हम आज भी ॥
ॐ ह्रीं माघकृष्णा षष्ठीदिने गर्भ मंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

आसित कार्तिक तेरस को जये, त्रिजग जीव सुआनंद को लये
नगर स्वर्ग समान कुसंबिका, जजतु हैं हरिसंजुत अंबिका ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णा त्रयोदश्यां जन्ममंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित तेरस कार्तिक भावनी, तप धर्यो वन षष्टम पावनी
करत आतमध्यान धुरंधरो, जजत हैं हम पाप सबै हरो ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णा त्रयोदश्यां तपो मंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
शुकल-पूनम चैत सुहावनी, परम केवल सो दिन पावनी
सुर-सुरेश नरेश जजें तहां, हम जजें पद पंकज को इहां ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ला पूर्णिमायां केवलज्ञान प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित फागुन चौथ सुजानियो, सकलकर्म महारिपु हानियो
गिरसमेद थकी शिव को गये, हम जजें पद ध्यानविषै लये ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णा चतुर्थीदिने मोक्षमंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभ जिनेनद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
जय पद्मजिनेशा शिवसद्मेशा, पाद पद्म जजि पद्मेशा
जय भव तम भंजन, मुनिमम कंजन, रंजन को दिव साधेसा

जय-जय जिन भविजन हितकारी, जय जय जिन भव सागर तारी
जय जय समवसरन धन धारी, जय जय वीतराग हितकारी
जय तुम सात तत्त्व विधि भाख्यौ, जय जय नवपदार्थ लखिआख्यो
जय षट्द्रव्य पंचजुतकाय, जय सब भेद सहित दरशाया
जय गुनथान जीव परमानो, पहिले महिं अनंत-जिव जानो

जय दूजे सासादन माहीं, तेरह कोड़ि जीव थित आहीं
जय तीजे मिश्रित गुणथाने, जीव सु बावन कोड़ि प्रमाने
जय चौथे अविरतिगुन जीवा, चार अधिक शत कोड़ि सदीवा
जय जिय देशावरत में शेषा, कोड़ि सात सा है थित वेशा
जय प्रमत्त षट्शून्य दोय वसु, नव तीन नव पांच जीवलसु
जय जय अपरमत्त दुइ कोरं, लक्ष छानवै सहस बहोरं
निन्यानवे एकशत तीना, ऐते मुनि तित रहहिं प्रवीना
जय जय अष्टम में दुइ धारा, आठ शतक सत्तानों सारा
उपशम में दुइ सौ निन्यानों, छपक माहिं तसु दूने जानों
जय इतने इतने हितकारी, नवें दशें जुगश्रेणी धारी
जय ग्यारें उपशम मगगामी, दुइ सौ निन्यानौं अधगामी
जयजय छीनमोह गुनथानो, मुनि शत पांच अधिक अट्ठानों
जय जय तेरह में अरिहंता, जुग नभपन वसु नव वसु तंता
एते राजतु हैं चतुरानन, हम वंदें पद थुतिकरि आनन
हैं अजोग गुन में जे देवा, मन सों ठानों करों सुसेवा
तित तिथि अ इ उ ऋ लृ भाषत, करिथित फिर शिव आनंद चाखत
ऐ उतकृष्ट सकल गुनथानी, तथा जघन मध्यम जे प्रानी
तीनों लोक सदन के वासी, निजगुन परज भेदमय राशी
तथा और द्रव्यन के जेते, गुन परजाय भेद हैं तेते
तीनों कालतने जु अनंता, सो तुम जानत जुगपत संता
सोई दिव्य वचन के द्वारे, दे उपदेश भविक उद्धारे
फेरी अचल थल बासा कीनो, गुन अनंत निजआनंद भीनो
चरम देह तें किंचित ऊनो, नर आकृति तित ह्वै नित गूनो
जय जय सिद्धदेव हितकारी, बार बार यह अरज हमारी
मोकों दुखसागर तें काढ़ो, 'वृन्दावन' जांचतु है ठाड़ो

जय जय जिनचंदा पद्मानंदा, परम सुमति पद्माधारी
जय जनहितकारी दयाविचारी, जय जय जिनवर अविकारी ॥
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जजत पद्म पद पद्म सद्म ताके सुपद्म अत
होत वृद्धि सुत मित्र सकल आनंदकंद शत ॥
लहत स्वर्गपदराज, तहाँ तें चय इत आई
चक्री को सुख भोगि, अंत शिवराज कराई ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीसुपार्श्वनाथ-पूजन

जय जय जिनिंद गनिंद इन्द, नरिंद गुन चिंतन करें
तन हरीहर मनसम हरत मन, लखत उर आनन्द भरें ॥
नृप सुपरतिष्ठ वरिष्ठ इष्ट, महिष्ठ शिष्ट पृथी प्रिया
तिन नन्दके पद वन्द वृन्द, अमंद थापत जुतक्रिया ॥
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल जल शुचि गंध मिलाय, कंचनझारी भरकर लाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौं मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिर चंदन घसि सार, लीनो भवतप भंजनहार
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास अखंड, उज्ज्वल जलछालित सित मंड
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

प्रासुक सुमन सुगंधित सार, गुंजत अलि मकरध्वजहार
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

छुधाहरण नेवज वर लाय, हरौं वेदनी तुम्हें चढ़ाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्वलित दीप भरकरि नवनीत, तुम ढिग धारतु हौं जगमीत
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविधि गन्ध हुताशन माहिं, खेवत क्रूर करम जरि जाहिं
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
तुम पद पूजौं मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल केला आदि अनूप, ले तुम अग्र धरौं शिवभूप
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब साजि गुनगाय, नाचत राचत भगति बढ़ाय
दया निधि हो, जय जगबंधु दया निधि हो ॥तुम
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
सुकल भादव छट्ठ सु जानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये
करत सेव शची रचि मात की, अरघ लेय जजौं वसु भांत की ॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लाषष्ठीदिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सुकल जेठ दुवादशि जन्मये, सकल जीव सु आनन्द तन्मये
त्रिदशराज जजें गिरिराजजी, हम जजें पद मंगल साजजी ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लाद्वादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
जनम के तिथि पे श्रीधर ने धरी, तप समस्त प्रमादन को हरी
नृप महेन्द्र दियो पय भाव सौं, हम जजें इत श्रीपद चाव सों ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लाद्वादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
भ्रमर फागुन छट्ठ सुहावनो, परम केवलज्ञान लहावनो
समवसर्न विषैं वृष भाखियो, हम जजें पद आनन्द चाखनो ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णा षष्ठीदिने केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित फागुन सातय पावनो, सकल कर्म कियो छय भावनो
गिरि समेदथकी शिव जातु हैं, जजत ही सब विघ्न विलातु हैं ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णा सप्तमीदिने मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
तुंग अंग धनु दोय सौ, शोभा सागरचन्द
मिथ्यातपहर सुगुनकर, जय सुपास सुखकंद

जयति जिनराज शिवराज हितहेत हो, परम वैराग आनन्द भरि देत हो ॥
गर्भ के पूर्व षट्मास धनदेव ने, नगर निरमापि वाराणसी सेव में ॥
गगन सों रतन की धार बहु वरषहीं, कोड़ि त्रैअर्द्ध त्रैवार सब हरषहीं ॥
तात के सदन गुनवदन रचना रची, मातु की सर्वविधि करत सेवा शची ॥
भयो जब जनम तब इन्द्र-आसन चल्यो, होय चकित तब तुरित अवधितैं लखि भल्यो ॥
सप्त पग जाय शिर नाय वन्दन करी, चलन उमग्यो तबै मानि धनि धनि घरी ॥
सात विधि सैन गज वृषभ रथ बाज ले, गन्धरव नृत्यकारी सबै साज ले ॥
गलित मद गण्ड ऐरावती साजियो, लच्छ जोजन सुतन वदन सत राजियो ॥
वदन वसुदन्त प्रतिदन्त सरवर भरे, ता सु मधि शतक पनबीस कमलिनि खरे ॥
कमलिनी मध्य पनवीस फूले कमल, कमल-प्रति-कमल मँह एक सौ आठ दल ॥
सर्वदल कोड़ शतबीस परमान जू, ता सु पर अपछरा नचहिं जुतमान जू ॥
ततता ततता वितता ताथई, धृगतता धृगतता धृगतता में लई ॥
धरत पग सनन नन सनन नन गगन में, नूपुरे झनन नन झनन नन पगन में ॥
नचत इत्यादि कई भाँति सों मगन में, केई तित बजत बाजे मधुर पगन में ॥
केई दृम दृम दुदृम दृम मृदंगनि धुनै, केई झल्लरि झनन झंझनन झंझनै ॥
केई संसाग्रते सारंगि संसाग्र सुर, केई बीना पटह बंसि बाजें मधुर ॥
केई तनतन तनन तनन ताने पुरैं, शुद्ध उच्चारि सुर केई पाठैं फुरैं ॥
केइ झुकि झुकि फिरे चक्र सी भामिनी, धृगगतां धृगगतां पर्म शोभा बनी ॥
केई छिन निकट छिन दूर छिन थूल-लघु, धरत वैक्रियक परभाव सों तन सुभगु ॥
केई करताल-करताल तल में धुनें, तत वितत घन सुषिरि जात बाजें मुनै ॥
इन्द्र आदिक सकल साज संग धारिके, आय पुर तीन फेरी करी प्यार तें ॥
सचिय तब जाय परसूतथल मोद में, मातु करि नींद लीनों तुम्हें गोद में ॥
आन-गिरवान नाथहिं दियो हाथ में, छत्र अर चमर वर हरि करत माथ में ॥
चढ़े गजराज जिनराज गुन जापियो, जाय गिरिराज पांडुक शिला थापियो ॥
लेय पंचम उदधि-उदक कर कर सुरनि, सुरन कलशनि भरे सहित चर्चित पुरनि ॥
सहस अरु आठ शिर कलश ढारें जबै, अघघ घघ घघघ घघ भभभ भभ भौ तबै ॥
धधध धध धधध धध धुनि मधुर होत है, भव्य जन हंस के हरस उद्योत है ॥
भयो इमि न्हौन तब सकल गुन रंग में, पोंछि श्रृंगार कीनों शची अंग में ॥
आनि पितुसदन शिशु सौंपि हरि थल गयो, बाल वय तरुन लहि राज सुख भोगियो ॥
भोग तज जोग गहि, चार अरि कों हने, धारि केवल परम धरम दुइ विध भने ॥
नाशि अरि शेष शिवथान वासी भये, ज्ञानदृग अरि शेष शिवथान वासी भये
दीन जन की करुण सुन लीजिये, धरम के नन्द को पार अब कीजिये ॥

जय करुनाधारी, शिवहितकारी, तारन तरन जिहाजा हो
सेवत नित वन्दे, मनआंनदे, भवभय मेटनकाजा हो
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री सुपार्श्व पदजुगल जो जजें पढ़े यह पाठ
अनुमोदें सो चतुर नर पावें आनन्द ठाठ ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीचन्द्रप्रभनाथ-पूजन

चारुचरन आचरन, चरन चितहरन चिह्नचर्
चंद-चंद-तनचरित, चंद थल चहत चतुर नर ॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिद्चक्र गुनाकर
चंचल चलित सुरेश, चूलनुत चक्र-धनुरर्हर ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - जो भव्य जीव आठों द्रव्यों को लेकर चन्द्र प्रभ भगवान् की पूजा करते है उनके भव-भव के **[अघ]** पाप नष्ट हो जाते हैं और मुक्ति-सुख की प्राप्ति होती है । जन्म के **[त्रास]** दुःख मिट जाते है, समस्त अमंगल दूर हो जाते हैं । वृंदावन कवि ये देखकर, पूजा करते है जिस से मोक्ष सुख की प्राप्ति हो सके ।

चर अचर हितू तारन तरन, सुनत चहकि चिर नंद शुचि
जिनचंद चरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रच्चि रुचि ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - आप **[चर]** त्रस व **[अचर]** स्थावर जीवों के **[हितू]** हितकारी है (क्योकि उनकी अहिंसा का निरंतर आप उपदेश देते है) आप संसार को **[तारन]** स्वयं पार करने तथा **[तरन]** अन्यों को पार कराने वाले है । आपके **[शुचि]** पवित्र **[चिरनंद]** अनंतसुख की चर्चा सुनकर भव्य जीव प्रसन्न हो जाते है । ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान् के चरणों की **[चरच्यो]** पूजा करने को **[चहत]** इच्छा रखता हुआ मेरा चित रुपी चकोर नाच / (प्रसन्न हो) रहा है । अर्थात ऐसे चन्द्र प्रभु भगवान् की मैं हृदय से पूजा कर रहा हूँ ।

धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृपनंद
मातु लक्षमना उर जये, थापौं चंद जिनंद

अन्वयार्थ : अर्थ - शरीर डेढ़सौ धनुष **[तुंग]** ऊंचा, महासेन **[नृप]** राजा के **[नंद]** पुत्र, माता लछमना के उर से उत्पन्न चन्द्रप्रभ भगवान् की मैं यहाँ स्थापना करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाह्रद निरमल नीर, हाटक भृंग भरा
तुम चरन जजौं वरवीर, मेटो जनम जरा ॥
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - हे **[वर]** श्रेष्ठ वीर ! **[गंगाह्रद]** गंगा नदी का स्वच्छ **[नीर]** जल, **[हाटक]** स्वर्ण के **[भृंग]** घड़े में भरकर, मैं आपके चरणों की **[जजों]** पूजा करता हूँ । आप मेरे जन्म और बुढ़ापे को नष्ट कर दीजिये । श्री चन्द्रप्रभ भगवान् की **[दुति]** कांति **[चंद]** चंद्रमा समान है, उनके चरणों में **[चंद]** चंद्रमा का चिन्ह है, मैं मनवचनकाय और **[अमंद]** अच्छे/शुद्ध भावों से अपनी आत्मा का प्रकाश जागृत करने के लिये / आत्मा के भान के लिए उनकी **[जजत]** पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीखण्ड कपूर सुचंग, केशर रंग भरी

घसि प्रासुक जल के संग, भवआताप हरी
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - मैं [**श्रीखण्ड**] चंदन और [**सुचंग**] श्रेष्ठ कपूर लेकर केशर के रंग से परिपूर्ण, प्रासुक जल में घिस कर आपको, अपने संसार के दुखों के निवारण हेतु, अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल सित सोम समान, सम लय अनियारे
दिये पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - [**सोम**] चद्रमा के समान [**सित**] सफ़ेद शालीवन के [**अनियारे**] साबुत [**तंदुल**] चावलों के मनोहर पुंज लेकर आपके [**पदतर**] पूजनीय चरणों में अक्षय पद की प्राप्ति के लिए रख रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुर द्रुम के सुमन सुरंग, गंधित अलि आवे
ता सों पद पूजत चंग, कामविधा जावे
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - मैं [**सुर**] देवताओं के [**द्रुम**] वृक्षों अर्थात कल्पवृक्ष से [**सुरंग**] अच्छे रंगो के सुगन्धित, [**अलि**] भंवरो से मंडराते [**सुमन**] फूलों को [**तासों**] आपके चरणों में [**चंग**] उत्साहपूर्वक [**काम बिथा**] कामवासना को नष्ट करने के लिए रखता हूं ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज नाना परकार, इंद्रिय बलकारी
सो ले पद पूजौं सार, आकुलता-हारी
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - विभिन्न प्रकार के इंद्रियों को [**बलकारी**] शक्ति प्रदान करने वाले नेवज से अपनी [**आकुलता हारी**] क्षुधा की वेदना को नष्ट करने के लिए आपके [**सार**] श्रेष्ठ चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तम भंजन दीप संवार, तुम ढिग धारतु हौं
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुण याचतु हौं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ- मोह रूपी [**तम**] अन्धकार को [**भंजन**] नष्ट करने के लिए, [**दीप संवार**] दीप को प्रज्ज्वलित करके, आपके [**ढिग**] समक्ष, रखता हूँ क्योकि आपमें यह गुण है इसलिए मेरा [**तिमिरमोह**] मोह-अन्धकार दूर कर दीजिये ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दसगंध हुतासन माहिं, हे प्रभु खेवतु हौं
मम करम दुष्ट जरि जाहिं, या तें सेवतु हौं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - मैं **[दशगंध]** दस प्रकार के सुगन्धित पदार्थो से धुप बना कर, दुष्ट कर्म को **[जरि]** जलाने के लिए, **[हुताशन]** अग्नि में **[खेवतु]** खेकर आप की प्रभु सेवा/पूजा कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अति उत्तम फल सु मंगाय, तुम गुण गावतु हौं
पूजौं तनमन हरषाय, विघन नशावतु हौं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - मै सर्वोत्तम फलो को मंगाकर आपके गुणो को गाता हूँ,तन मन से हर्षित होकर आपकी मैं पूजा करता हूँ क्योकि आप विघ्नो को नष्ट करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमौं
पूजौं अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमौं
श्री चंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लसै
मन वच तन जजत अमंद-आतम-जोति जगे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - आठों **[पुनीत]** पवित्र द्रव्यों को **[सजी]** सजाकर, **[आठों अंग नमों]** आठों अंगो को झुक कर नमस्कार करता हुआ । आठवें हितकारी जिनेन्द्र भगवान चन्द्रप्रभू की बारम्बार, **[अष्टम अवनी]** आठवी पृथ्वी - सिद्धशिला, पर **[गमों]** जाने के लिए पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भली
हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्मसिता ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - चैत्र की **[कलि]** वदी पंचमी **[अलि]** बहुत **[सुहात]** अच्छी लगती है क्योकि इस दिन आप **[गरभागम]** गर्भ में पधारे थे और आपने जीवों को मंगल एवं **[मोद भरी]** प्रसन्नता प्रदान करी थी **[हरि]** इंद्र ने हर्षित होकर माता पिता की पूजा करी थी । हम आपका ध्यान करके **[शर्मसिता]** पवित्र सुख को प्राप्त करते है ।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णा पंचम्यांगर्भमंगलंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कलि पौष एकादशि जन्म लयो, तब लोकविषै सुख थोक भयो
सुरईश जजैं गिरिशीश तबै, हम पूजत हैं नुत शीश अबै ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - भगवान् आपने पौष [**कलि**] वदी एकादशी को जन्म लिया था उस समय समस्त लोक [**सुखथोक**] पूर्णतया सुखी हो गया था । [**सुर ईश**] तब इंद्र ने आपकी [**गिरशीश**] समेरू पर्वत पर ले जाकर [**जजें**] पूजा करी थी । हम यहाँ [**अबै**] अब आपकी मस्तक झुका कर नित्य पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि पौष इग्यारसि पर्व वरा
निज ध्यान विषै लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - आपने पौष [**कलि**] कृष्ण एकादशी [**पर्व वरा**] श्रेष्ठ पर्व के दिन अत्यंत [**दुद्धर**] दुर्लभ और महान तप को धारण किया (आपका तप कल्याणक हुआ), आप अपनी आत्मा के ध्यान में लवलीन हो गए जो धन्य जीव इस दिन कि पूजा करते है उनके विघ्न नष्ट हो जाते है ।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगल मंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वर केवल भानु उद्योत कियो, तिहुंलोकतणों भ्रम मेट दियो
कलि फाल्गुन सप्तमि इंद्र जजें, हम पूजहिं सर्व कलंक भजें ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - हे [**वर**] भगवन् [**तणों**] आपने केवलज्ञान रुपी [**भानु**] सूर्य को [**उद्योत**] प्रकट किया था । [**तिहुँ**] तीनों लोक के जीवों का [**भ्रम**] मिथ्यात्व मेट दिया था फाल्गुन [**कलि**] कृष्ण सप्तमि के दिन इंद्र ने आपकी पूजा करी थी । हम भी आपकी पूजा करते है जिससे सभी कर्म कलंक नष्ट हो जाए ।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णा सप्तम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित फाल्गुन सप्तमि मुक्ति गये, गुणवंत अनंत अबाध भये
हरि आय जजे तित मोद धरे, हम पूजत ही सब पाप हरे ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - भगवन आप फाल्गुन [**सित**] शुक्ल सप्तमि को मोक्ष पधारे, आप [**गुणवंत अनंत**] अनंतगुणों सहित, [**अबाध**] बाधा रहित हो गए । [**हरि**] इंद्र ने आकर अत्यंत [**मोद**] प्रसन्नता पूर्वक [**तित**] आपकी [**जजें**] पूजा करी थी । हम भी समस्त पापों को [**हरे**] हरने हेतु आपकी पूजा करते है ।

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

हे मृगांद अंकित चरण, तुम गुण अगम अपार
गणधर से नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार

अन्वयार्थ : अर्थ - हे चन्द्रप्रभ भगवान् ! आपके चरणों में [**मृगांक**] चंद्रमा का चिन्ह अंकित है आपके अनन्तगुण [**अगम**] अवर्णीय [**अपार**] अथाह है, गणधर देव भी उनकी [**पार**] थाह नहीं प्राप्त कर सकते [**तौ**] तो [**को**] कौन उनकी [**सार**] श्रेष्ठता का [**वरनत**] वर्णन कर सकता है ।

पै तुम भगति मम हिये, प्रेरे अति उमगाय
तातैं गाऊं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय

अन्वयार्थ : अर्थ - [**पै**] फिर भी मेरे [**हिये**] हृदय में आपकी भक्ति मुझे [**प्रेरे**] प्रेरित करके अत्यंत [**उमगाय**] उत्साहित कर रही है इसलिए आपके गुणों का गान करता हूँ, इसमें आप ही मेरी सहायता कीजिये ।

जय चंद्र जिनेंद्र दयानिधान, भवकानन हानन दव प्रमान
जय गरभ जनम मंगल दिनंद, भवि-जीव विकाशन शर्म कन्द ॥१॥

अन्वयार्थ : अर्थ - हे चंद्रप्रभ भगवान् आपकी जय हो । आप दया के [**निदान**] भण्डार है, संसार रुपी [**कानन**] जंगल को नष्ट करने के लिए दावानल के समान है, आपका गर्भ और जन्म कल्याणक हुआ था, आपकी जय हो, [**भवि**] भव्यजीव रुपी कमलों के हृदय

को [**विकाशन**] विकसित करने के लिए आप सूर्य के समान है और [**शर्मकन्द**] सुख को उत्पन्न करने वाले हो ।

दशलक्ष पूर्व की आयु पाय, मनवांछित सुख भोगे जिनाय
लखि कारण ह्वै जगतैं उदास, चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुख निवास ॥२॥

अन्वयार्थ : अर्थ - भगवन आपने दस लाख पूर्व की आयु प्राप्त करी जिस के गृहस्थ अवस्था में मन वांछित सुखों को भोगो था । कुछ कारणवश आप संसार से उदासीन होकर, सुख के स्थानों, बारह भावनाओं का चिंतवन करने लगे ।

तित लोकांतिक बोध्यो नियोग, हरि शिविका सजि धरियो अभोग
तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय, ताछिन की शोभा को कहाय ॥३॥

अन्वयार्थ : अर्थ - लौकान्तिक देव अपने नियोगानुसार उनके [**बोध्यो नियोग**] वैराग्य की अनुमोदना के लिए [**तित**] वहां आये । इंद्र ने [**शिविका**] पालकी सजा कर रखी । चन्द्रप्रभ भगवान् ! [**तापै**] उस पर चढ़ कर आप, तप धारण करने के लिए जंगल की ओर बढ़े, [**ताछिन**] उस समय की शोभा का वर्णन करने में कौन समर्थ है ।

जिन अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गल गुलक हार
सित रतन जड़ित भूषण विचित्र, सित चन्द्र चरण चरचें पवित्र ॥४॥

अन्वयार्थ : अर्थ - जिनेन्द्र भगवान् का [**अंग सेत**] शरीर [**सित**] श्वेत चंद्रमा के समान था, उन के ऊपर सफ़ेद चॅवर ढोरे जा रहे थे, सिर के ऊपर भी सफ़ेद छत्र थे, गले में [**गुलक**] सुंदर, श्वेत रत्नों से जड़ित हार था, भिन्न-भिन्न आभूषण भी पहने हुए थे ऐसे श्वेत पवित्र चरणों वाले चन्द्रप्रभ भगवान् की हम अर्चना / पूजा करते है ।

सित तनद्युति नाकाधीश आप, सित शिविका कांधे धरि सुचाप
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चित्त में चिंतत जात पर्व ॥५॥

अन्वयार्थ : अर्थ - आपके शरीर की कांति सफ़ेद है आप [**नाकाधीश**] देवताओं के स्वामी है, आपकी श्वेत [**सुचाप**] धनुषाकार [**शिविका**] पालकी को इंद्र और देव कंधे पर रख कर ले जाते है । उस जलूस में सभी सुरेश नरेश आपके यश (गुणों)का चिंतवन करते हुए जाते है ।

सित चंद्र नगर तें निकसि नाथ, सित वन में पहुचे सकल साथ
सित शिला शिरोमणि स्वच्छ छाँह, सित तप तित धार्यो तुम जिनाह ॥६॥

अन्वयार्थ : अर्थ - भगवन आप चन्द्रनगर से निकलकर वन में [**सकल**] सब के साथ पहुंचे । वहाँ श्वेत, स्वच्छ और [**शिरोमणि**] श्रेष्ठ शिला पर आप ने तप धारण किया अर्थात सारे वस्त्र, आभूषण त्याग कर आपने निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा धारण करी ।

सित पय को पारण परम सार, सित चंद्रदत्त दीनों उदार
सित कर में सो पय धार देत, मानो बांधत भवसिंधु सेत ॥७॥

अन्वयार्थ : अर्थ - आपकी [**सित पय**] श्वेत दूध की श्रेष्टम रसीली [**पारण**] पारणा उदार सेठ चन्द्रदत्त द्वारा हुई । आपके श्वेत हाथों में वे दूध की धार देते थे, ऐसा लग रहा था जैसे संसार सागर पर [**सेत**] पुल ही बांध रहे हो ।

मानो सुपुण्य धारा प्रतच्छ, तित अचरज पन सुर किय ततच्छ
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवल ज्योति जग्यो अनन्त ॥८॥

अन्वयार्थ : अर्थ - आपके हाथ में दूध की धारा प्रत्यक्ष पुण्य की धारा बहती हुई लग रही थी । वहाँ पर देवताओं ने [**ततच्छ**] उसी क्षण [**अचरज**] पञ्चाशचर्य (रत्नवर्षा, पुष्पवर्षा, मंदसुगंध, बयार, भिन्न-भिन्न बाजे बजना, अबोध आनंद का उच्चारण) किए । फिर आप गहन तप करने के लिए चले गए जिसके द्वारा आपने अनंत केवलज्ञान रुपी ज्योति को [**जग्यो**] प्राप्त किया ।

लहि समवसरन रचना महान, जा के दरसन सब पाप हान
जहँ तरु अशोक शोभै उतंग, सब शोक तनो चूरै प्रसंग ॥९॥

अन्वयार्थ : अर्थ - केवलज्ञान प्राप्त करते ही आपने समवशरण विभूति प्राप्त करी अर्थात इंद्र ने कुबेर को भेजकर महान समवशरण की रचना करवाई । जिसको देखते ही सब पाप नष्ट हो जाते है । वहाँ [**उतंग**] ऊँचा अशोक [**तरु**] वृक्ष शोभित हो रहा था जो कि समस्त शोक के प्रसंगो को [**चूरै**] नष्ट कर रहा था ।

सुर सुमन वृष्टि नभ तें सुहात, मनु मन्मथ तजि हथियार जात
बानी जिनमुख सों खिरत सार, मनु तत्व प्रकाशन मुकुर धार ॥१०॥

अन्वयार्थ : अर्थ - वहाँ, देवता **[नभ]** आकाश से सुगन्धित सुहावने पुष्पों की **[वर्षा]** वृष्टि करते है, ऐसा लगता है मानो **[मन्मथ]** कामदेव अपने हथियारों को छोड़ कर भाग रहा हो । भगवन के मुख से वहाँ श्रेष्ठ वाणी, दिव्यध्वनि, खिरती है जो कि मानो तत्वों के प्रकाशन के लिए साक्षत **[मुकुर धार]** दर्पणमय है ।

जहँ चौंसठ चमर अमर ढुरंत, मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत
सिंहासन है जहँ कमल जुक्त, मनु शिव सरवर को कमल शुक्ल ॥११॥

अन्वयार्थ : अर्थ - जहाँ चौसठ चँवर **[अमर]** देव निरंतर ढोरते है, ऐसा लगता है मानो आपके यश की **[झरि]** वर्षा मेघों द्वारा हो रही हो, गंध-कुटी के ऊपर सिंहासन है, जिस पर कमल है । यह कमल, मोक्षरूपी सरोवर का ही श्वेतकमल लग रहा है ।

दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करमजीत को है नगार
शिर छत्र फिरै त्रय श्वेत वर्ण, मनु रतन तीन त्रय ताप हर्ण ॥१२॥

अन्वयार्थ : अर्थ - **[जित]** जहाँ मधुर सुरों में दुंदभि बज रही है, ऐसा लगा मानो कर्मों पर विजय का नगाड़ा बज रहा हो । आपके सिर के ऊपर तीन छत्र, श्वेत वर्ण के फिर रहे हैं, मानो ये तीन रत्नो (रत्नत्रय) के देने वाले और तीन प्रकार के ताप अर्थात जन्म जरा मृत्यु को हरने वाले हों ।

तन प्रभा तनो मंडल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात
मनु दर्पण द्युति यह जगमगाय, भविजन भव मुख देखत सु आय ॥१३॥

अन्वयार्थ : अर्थ - आपके शरीर की प्रभा का जो सुहावना मंडल है उसमे भव्य जीव अपने-अपने सात-सात (तीन भूत, तीन भविष्य के और १ वर्तमान) भव देखते हैं । जैसे वे दर्पण में अपना मुख स्पष्ट देख कर आते है ।

इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान
ता को वरणत नहिं लहत पार, तो अंतरंग को कहै सार ॥१४॥

अन्वयार्थ : अर्थ - इन अनेक विभूतियों को देखकर आपकी बाह्य महिमा का वर्णन करना कठिन है फिर अंतरंग महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ।

अनअंत गुणनिजुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार
फिर जोग निरोध अघातिहान, सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ॥१५॥

अन्वयार्थ : अर्थ - भगवान् आपने अपने अनंतगुणों सहित विहार किया है और भव्य जीवों को संसार से पार लगने का उपदेश दिया । फिर योग-निरोध अर्थात मन-वचन-काय तीनों योगो का निरोध करके, चार अघातिया कर्मों को नष्ट करके सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्ष प्राप्त कर लिया ।

'वृन्दावन' वंदत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय
ता तें का कहौं सु बार बार, मनवांछित कारज सार सार ॥१६॥

अन्वयार्थ : अर्थ - वृदावन कवि शीश नवकार बारम्बार प्रभु की वंदना करते है - प्रभू ! आप सब जानते हो कि मेरे हृदय में क्या है, उसे मैं बार बार क्या कहूं, मेरे मन की इच्छा, **[सार सार]** श्रेष्ठ मोक्ष की प्राप्ति **[कारज]** करवा दीजिये ।

जय चंद जिनंदा, आनंदकंदा, भवभयभंजन राजैं हैं
रागादिक द्वंदा, हरि सब फंदा, मुकति मांहि थिति साजैं हैं ॥१७॥

अन्वयार्थ : अर्थ - जिनेन्द्र चन्द्र प्रभ आपकी जय हो । आप आनंद के समूह हैं, संसार के भय को नष्ट करने वाले हैं, रागादि द्वंदों के फंदो को हरने वाले हैं, आप मोक्ष में भली प्रकार विराजमान हैं ।

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजें
ता के भव-भव के अघ भाजें, मुक्तिसार सुख ताहि सजें ॥
जम के त्रास मिटें सब ताके, सकल अमंगल दूर भजें
'वृन्दावन' ऐसो लखि पूजत, जा तें शिवपुरि राज रजें ॥

अन्वयार्थ : अर्थ - जो भव्य जीव आठों द्रव्यों को लेकर चन्द्र प्रभ भगवान् की पूजा करते है उनके भव-भव के **[अघ]** पाप नष्ट हो जाते हैं और मुक्ति-सुख की प्राप्ति होती है । जन्म के **[त्रास]** दुःख मिट जाते है, समस्त अमंगल दूर हो जाते हैं । वृंदावन कवि ये देखकर, पूजा करते है जिस से मोक्ष सुख की प्राप्ति हो सके ।

श्रीपुष्पदन्त-पूजन

पुष्पदन्त भगवन्त सन्त सु जपंत तंत गुन
महिमावन्त महन्त कन्त शिवतिय रमन्त मुन ॥
काकन्दीपुर जन्म पिता सुग्रीव रमा सुत
श्वेत वरन मनहरन तुम्हैं थापौं त्रिवार नुत ॥

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

हिमवन गिरिगत गंगाजल भर, कंचन भृंग भराय
करम कलंक निवारनकारन, जजौं, तुम्हारे पाय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सुनीजे ॥
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावन चन्दन कदलीनंदन, कुंकुम संग घसाय
चरचौं चरन हरन मिथ्यातम, वीतराग गुण गाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शालि अखंडित सौरभमंडित, शशिसम द्युति दमकाय
ता को पुञ्ज धरौं चरननढिग, देहु अखय पद राय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुमन सुमनसम परिमलमंडित, गुंजत अलिगन आय
ब्रह्म-पुत्र मद भंजन कारन, जजौं तुम्हारे पाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर फेनी गोंजा, मोदन मोदक लाय
छुधा वेदनि रोग हरन कों, भेंट धरौं गुण गाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

वाति कपूर दीप कंचनमय, उज्ज्वल ज्योति जगाय
तिमिर मोह नाशक तुमको लखि, धरौं निकट उमगाय ॥मेरी

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशवर गंध धनंजय के संग, खेवत हौं गुन गाय
अष्टकर्म ये दुष्ट जरें सो, धूम सु धूम उड़ाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल मातुलिंग शुचि चिरभट, दाड़िम आम मंगाय
ता सों तुम पद पद्म जजत हौं, विघन सघन मिट जाय ॥मेरी
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल सकल मिलाय मनोहर, मनवचतन हुलसाय
तुम पद पूजौं प्रीति लाय के, जय जय त्रिभुवनराय ॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय, मेरी अरज सनीजे ॥
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पच कलयणक अरघयवल
नवमी तिथि कारी फागुन धारी, गरभ मांहिं थिति देवा जी
तजि आरण थानं कृपानिधानं, करत शची तित सेवा जी ॥
रतनन की धारा परम उदारा, परी व्योम तें सारा जी
मैं पूजौं ध्यावौं भगति बढ़ावौं, करो मोहि भव पारा जी ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णानवम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
मंगसिर सितपच्छं परिवा स्वच्छं, जनमे तीरथनाथा जी
तब ही चवभेवा निरजर येवा, आय नये निज माथा जी ॥
सुरगिर नहवाये, मंगल गाये, पूजे प्रीति लगाई जी
मैं पूजौं ध्यावौं भगत बढ़ावौं, निजनिधि हेतु सहाई जी ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपदायां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सित मंगसिर मासा तिथि सुखरासा, एकम के दिन धारा जी
तप आतमज्ञानी आकुलहानी, मौन सहित अविकारा जी ॥
सुरमित्र सुदानी के घर आनी, गो-पय पारन कीना जी
तिन को मैं वन्दौं पाप निकंदौं, जो समता रस भीना जी ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपदायां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सित कार्तिक गाये दोइज घाये, घातिकरम परचंडा जी
केवल परकाशे भ्रम तम नाशे, सकल सार सुख मंडा जी ॥
गनराज अठासी आनंदभासी, समवसरण वृषदाता जी
हरि पूजन आयो शीश नमायो, हम पूजें जगत्राता जी ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्ला द्वितीयायां ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

4

भादव सित सारा आठैं धारा, गिरिसमेद निरवाना जी
गुन अष्ट प्रकारा अनुपम धारा, जय जय कृपा निधाना जी ॥
तित इन्द्र सु आयौ, पूज रचायौ,चिह्न तहां करि दीना जी
मैं पूजत हौं गुन ध्यान मणी सों, तुमरे रस में भीना जी ॥
ॐ ह्री भाद्रपद शुक्लाऽष्टम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

लच्छन मगर सुश्वेत तन तुङ्गं धनुष शत एक
सुरनर वंदित मुकतिपति, नमौं तुम्हें शिर टेक ॥
पुहुपदन्त गुनवदन है, सागर तोय समान
क्यों करि कर-अंजुलिनि कर, करिये तासु प्रमान ॥

पुष्पदन्त जयवन्त नमस्ते, पुण्य तीर्थंकर सन्त नमस्ते
ज्ञान ध्यान अमलान नमस्ते, चिद्विलास सुख ज्ञान नमस्ते
भवभयभंजन देव नमस्ते, मुनिगणकृत पद-सेव नमस्ते
मिथ्या-निशि दिन-इन्द्र नमस्ते, ज्ञानपयोदधि चन्द्र नमस्ते
भवदुःख तरु निःकन्द नमस्ते, राग दोष मद हनन नमस्ते
विश्वेश्वर गुनभूर नमस्ते, धर्म सुधारस पूर नमस्ते
केवल ब्रह्म प्रकाश नमस्ते, सकल चराचरभास नमस्ते
विघ्नमहीधर विज्जु नमस्ते, जय ऊरधगति रिज्जु नमस्ते
जय मकराकृत पाद नमस्ते, मकरध्वज-मदवाद नमस्ते
कर्मभर्म परिहार नमस्ते, जय जय अधम-उद्धार नमस्ते
दयाधुरंधर धीर नमस्ते, जय जय गुन गम्भीर नमस्ते
मुक्ति रमनि पति वीर नमस्ते, हर्ता भवभय पीर नमस्ते
व्यय उत्पति थितिधार नमस्ते, निजअधार अविकार नमस्ते
भव्य भवोदधितार नमस्ते, 'वृन्दावन' निस्तार नमस्ते
घत्ताः- जय जय जिनदेवं हरिकृतसेवं, परम धरमधन धारी जी
मैं पूजौं ध्यावौं गुनगन गावौं, मेटो विथा हमारी जी

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति सवह

पुहुपदंत पद सन्त, जजें जो मनवचकाई
नाचें गावें भगति करें, शुभ परनति लाई ॥
सो पावें सुख सर्व, इन्द्र अहिमिंद तनों वर

अनुक्रम तें निरवान, लहें निहचै प्रमोद धर ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीशीतलनाथ-पूजन

शीतलनाथ नमौं धरि हाथ, सु माथ जिन्हों भव गाथ मिटाये
अच्युत तें च्युत मात सुनन्द के, नन्द भये पुर बद्दल आये ॥
वंश इक्ष्वाकु कियो जिन भूषित, भव्यन को भव पार लगाये
ऐसे कृपानिधि के पद पंकज, थापतु हौं हिय हर्ष बढ़ाये ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

देवापगा सु वर वारि विशुद्ध लायो, भृंगार हेम भरि भक्ति हिये बढ़ायो
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा, चर्चौं पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा ॥
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीखंड सार वर कुंकुम गारि लीनों, कं संग स्वच्छ घिसि भक्ति हिये धरीनों ॥रागा
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ता-समान सित तंदुल सार राजे, धारंत पुंज कलिकंज समस्त भाजें ॥रागा
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

श्री केतकी प्रमुख पुष्प अदोष लायो, नौरंग जंग करि भृंग सु रंग पायो ॥रागा
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नैवेद्य सार चरु चारु संवारि लायो, जांबूनद-प्रभृति भाजन शीश नायो ॥रागा
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

स्नेह प्रपूरित सुदीपक जोति राजे, स्नेह प्रपूरित हिये जजतेऽघ भाजे ॥रागा
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागरू प्रमुख गंध हुताश माहीं, खेवौं तवाग्र वसुकर्म जरंत जाही ॥रागा
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

निम्बाम्र कर्कटि सु दाड़िम आदि धारा, सौवर्ण-गंध फल सार सुपक्व प्यारा ॥रागा
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ श्री-फलादि वसु प्रासुक द्रव्य साजे, नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज बाजे ॥रागा
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
छंद इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा)
आठैं वदी चैत सुगर्भ मांही, आये प्रभू मंगलरुप थाहीं
सेवै शची मातु अनेक भेवा, चर्चौं सदा शीतलनाथ देवा ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाऽष्टम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
श्री माघ की द्वादशि श्याम जायो, भूलोक में मंगल सार आयो
शैलेन्द्र पै इन्द्र फनिन्द्र जज्जे, मैं ध्यान धारौं भवदुःख भज्जे ॥
ॐ ह्रीं माघकृष्णा द्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
श्री माघ की द्वादशि श्याम जानो, वैराग्य पायो भवभाव हानो
ध्यायो चिदानन्द निवार मोहा, चर्चौं सदा चर्न निवारि कोहा ॥
ॐ ह्रीं माघकृष्णा द्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
चतुर्दशी पौष वदी सुहायो, ताही दिना केवल लब्धि पायो
शोभै समोसृत्य बखानि धर्मं, चर्चौं सदा शीतल पर्म शर्मं ॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णाचतुर्दश्यां केवल ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
कुवार की आठैं शुद्ध बुद्धा, भये महा मोक्ष सरुप शुद्धा
सम्मेद तें शीतलनाथ स्वामी, गुनाकरं ता सु पदं नमामी ॥
ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाऽष्टम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
आप अनंत गुनाकर राजे, वस्तुविकाशन भानु समाजे
मैं यह जानि गही शरना है, मोह महारिपु को हरना है
दोहाः- हेम वरन तन तुंग धनु-नव्वै अति अभिराम
सुर तरु अंक निहारि पद, पुनि पुनि करौं प्रणाम

जय शीतलनाथ जिनन्द वरं, भव दाह दवानल मेघझरं

दुख-भुभृत-भंजन वज्र समं, भव सागर नागर-पोत-पमं
कुह-मान-मयागद-लोभ हरं, अरि विघ्न गयंद मृगिंद वरं
वृष-वारिधवृष्टन सृष्टिहितू, परदृष्टि विनाशन सुष्टु पितू
समवस्रत संजुत राजतु हो, उपमा अभिराम विराजतु हो
वर बारह भेद सभा थित को, तित धर्म बखानि कियो हित को
पहले महि श्री गणराज रजैं, दुतिये महि कल्पसुरी जु सजैं
त्रितिये गणनी गुन भूरि धरैं, चवथे तिय जोतिष जोति भरैं
तिय-विंतरनी पन में गनिये, छह में भुवनेसुर तिय भनिये
भुवनेश दशों थित सत्तम हैं, वसु-विंतर उत्तम हैं
नव में नभजोतिष पंच भरे, दश में दिविदेव समस्त खरे
नरवृन्द इकादश में निवसें, अरु बारह में पशु सर्व लसें
तजि वैर, प्रमोद धरें सब ही, समता रस मग्न लसें तब ही
धुनि दिव्य सुनें तजि मोहमलं, गनराज असी धरि ज्ञानबलं
सबके हित तत्त्व बखान करें, करुना-मन-रंजित शर्म भरें
वरने षटद्रव्य तनें जितने, वर भेद विराजतु हैं तितने
पुनि ध्यान उभै शिवहेत मुना, इक धर्म दुती सुकलं अधुना
तित धर्म सुध्यान तणों गुनियो, दशभेद लखे भ्रम को हनियो
पहलोरि नाश अपाय सही, दुतियो जिन बैन उपाया गही
त्रिति जीवविषैं निजध्यावन है, चवथो सु अजीव रमावन है
पनमों सु उदै बलटारन है, छहमों अरि-राग-निवारन है
भव त्यागन चिंतन सप्तम है, वसुमों जितलोभ न आतम है
नवमों जिन की धुनि सीस धरे, दशमों जिनभाषित हेत करे
इमि धर्म तणों दश भेद भन्यो, पुनि शुक्लतणो चदु येम गन्यो
सुपृथक्त-वितर्क-विचार सही, सुइकत्व-वितर्क-विचार गही
पुनि सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपात कही, विपरीत-क्रिया-निरवृत्त लही
इन आदिक सर्व प्रकाश कियो, भवि जीवनको शिव स्वर्ग दियो
पुनि मोक्षविहार कियो जिनजी, सुखसागर मग्न चिरं गुनजी
अब मैं शरना पकरी तुमरी, सुधि लेहु दयानिधि जी हमरी
भव व्याधि निवार करो अब ही, मति ढील करो सुख द्यो सब ही

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शीतल जिन ध्याऊं भगति बढ़ाऊं, ज्यों रतनत्रय निधि पाऊं
भवदंद नशाऊं शिवथल जाऊं, फेर न भव वन में आऊं

दिढ़रथ सुत श्रीमान् पंचकल्याणक धारी, तिन पद जुगपद्म जो जजै भक्तिधारी

सहजसुख धन धान्य, दीर्घ सौभाग्य पावे, अनुक्रम अरि दाहै, मोक्ष को सो सिधावै ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीश्रेयांसनाथ-पूजन

विमल नृप विमला सुअन, श्रेयांसनाथ जिनन्द
सिंहपुर जन्मे सकल हरि, पूजि धरि आनन्द ॥
भव बंध ध्वंसनिहेत लखि मैं शरन आयो येव
थापौं चरन जुग उरकमल में, जजनकारन देव

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कलधौत वरन उतंग हिमगिरि पदम द्रह तें आवई
सुरसरित प्रासुक उदक सों भरि भृंग धार चढ़ावई ॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं
दुखदंद फंद निकंद पूरन चन्द जोतिअमंद हैं ॥
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

गोशीर वर करपूर कुंकुम नीर संग घसौं सही
भवताप भंजन हेत भवदधि सेत चरन जजौं सही ॥श्रे
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

सित शालि शशि दुति शुक्ति सुन्दर मुक्तकी उनहार हैं
भरि थार पुंज धरंत पदतर अखयपद करतार हैं ॥श्रे
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सद सुमन सु मन समान पावन, मलय तें मधु झंकरें
पद कमलतर धरतैं तुरित सो मदन को मद खंकरें ॥श्रे
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

यह परम मोदक आदि सरस सँवारि सुन्दर चरु लियो
तुव वेदनी मदहरन लखि, चरचौं चरन शुचिकर हियो ॥श्रे
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

संशय विमोह विभरम तम भंजन दिनन्द समान हो
तातैं चरनढिग दीप जोऊँ देहु अविचल ज्ञान हो ॥श्रे
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

वर अगर तगर कपूर चूर सुगन्ध भूर बनाइया
दहि अमर जिह्वाविषैं चरनढिग करम भरम जराइया ॥श्रे
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरलोक अरु नरलोक के फल पक्क मधुर सुहावने
ले भगति सहित जजौं चरन शिव परम पावन पावने ॥श्रे
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलमलय तंदुल सुमनचरु अरु दीप धूप फलावली
करि अरघ चरचौं चरन जुग प्रभु मोहि तार उतावली ॥श्रे
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
पुष्पोत्तर तजि आये, विमलाउर जेठकृष्ण छट्टम को
सुरनर मंगल गाये, पूजौं मैं नासि कर्म काठनि को ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाषष्ठयां गर्भमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यंनिर्वपामीति स्वाहा
जनमे फागुनकारी, एकादशि तीन ग्यान दृगधारी
इक्ष्वाकु वशंतारी, मैं पूजौं घोर विघ्न दुख टारी ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यंनिर्वपामीति स्वाहा
भव तन भोग असारा, लख त्याग्यो धीर शुद्ध तप धारा
फागुन वदि इग्यारा, मैं पूजौं पाद अष्ट परकारा ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यंनिर्वपामीति स्वाहा
केवलज्ञान सुजानन, माघ बदी पूर्णतित्थ को देवा
चतुरानन भवभानन, वंदौं ध्यावौं करौं सुपद सेवा ॥
ॐ ह्रीं माघकृष्णामावस्यायां केवलज्ञानमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यंनिर्वपामीति स्वाहा
गिरि समेद तें पायो, शिवथल तिथि पूर्णमासि सावन को
कुलिशायुध गुनगायो, मैं पूजौं आप निकट आवन को ॥
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लापूर्णिमायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यंनिर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
शोभित तुंग शरीर सुजानो, चाप असी शुभ लक्षण मानो

कंचन वर्ण अनूपम सोहे, देखत रुप सुरासुर मोहे

जय जय श्रेयांस जिन गुणगरिष्ठ, तुम पदजुग दायक इष्टमिष्ट
जय शिष्ट शिरोमणि जगतपाल, जय भव सरोजगन प्रातःकाल
जय पंच महाव्रत गज सवार, लै त्याग भाव दलबल सु लार
जय धीरज को दलपति बनाय, सत्ता छितिमहँ रन को मचाय
धरि रतन तीन तिहुँशक्ति हाथ, दश धरम कवच तपटोप माथ
जय शुकलध्यान कर खड़ग धार, ललकारे आठों अरि प्रचार
ता में सबको पति मोह चण्ड, ता को तत छिन करि सहस खण्ड
फिर ज्ञान दरस प्रत्यूह हान, निजगुन गढ़ लीनों अचल थान 5
शुचि ज्ञान दरस सुख वीर्य सार, हुई समवशरण रचना अपार
तित भाषे तत्व अनेक धार, जा को सुनि भव्य हिये विचार
निजरुप लाह्यो आनन्दकार, भ्रम दूर करन को अति उदार
पुनि नयप्रमान निच्छेप सार, दरसायो करि संशय प्रहार
ता में प्रमान जुगभेद एव, परतच्छ परोछ रजै स्वमेव
ता में पतच्छ के भेद दोय, पहिलो है संविवहार सोय
ता के जुग भेद विराजमान, मति श्रुति सोहें सुन्दर महान
है परमारथ दुतियो प्रतच्छ, हैं भेद जुगम ता माहिं दच्छ 9
इक एकदेश इक सर्वदेश, इकदेश उभैविधि सहित वेश
वर अवधि सु मनपरजय विचार, है सकलदेश केवल अपार
चर अचर लखत जुगपत प्रतच्छ, निरद्वन्द रहित परपंच पच्छ
पुनि है परोच्छमहँ पंच भेद, समिरति अरु प्रतिभिज्ञान वेद
पुनि तरक और अनुमान मान, आगमजुत पन अब नय बखान
नैगम संग्रह व्यौहार गूढ़, ऋजुसूत्र शब्द अरु अमभिरुढ़
पुनि एवंभूत सु सप्त एम, नय कहे जिनेसुर गुन जु तेम
पुनि दरव क्षेत्र अर काल भाव, निच्छेप चार विधि इमि जनाव 13
इनको समस्त भाष्यौ विशेष, जा समुझत भ्रम नहिं रहत लेश
निज ज्ञानहेत ये मूलमन्त्र, तुम भाषे श्री जिनवर सु तन्त्र
इत्यादि तत्त्व उपदेश देय, हनि शेषकरम निरवान लेय
गिरवान जजत वसु दरब ईस, 'वृन्दावन' नितप्रति नमत शीश
घत्ताः- श्रेयांस महेशा सुगुन जिनेशा, वज्रधरेशा ध्यावतु हैं
हम निशदिन वन्दें पापनिकंदें, ज्यों सहजानंद पावतु हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
जो पूजें मन लाय श्रेयनाथ पद पद्म को

पावें इष्ट अघाय, अनुक्रम सों शिवतिय वरैं ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीवासुपूज्य-पूजन

श्रीमत् वासुपूज्य जिनवर पद, पूजन हेत हिये उमगाय
थापौं मन वच तन शुचि करके, जिनकी पाटलदेव्या माय ॥
महिष चिह्न पद लसे मनोहर, लाल वरन तन समतादाय
सो करुनानिधि कृपादृष्टि करि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठ इहं आय ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

गंगाजल भरि कनक कुंभ में, प्रासुक गंध मिलाई
करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई ॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई
बाल ब्रह्मचारी लखि जिन को, शिव तिय सनमुख धाई ॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

कृष्णागरु मलयागिर चंदन, केशरसंग घिसाई
भवआताप विनाशन-कारन, पूजौं पद चित लाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

देवजीर सुखदास शुद्ध वर सुवरन थार भराई
पुंज धरत तुम चरनन आगे, तुरित अखय पद पाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात संतान कल्पतरु-जनित सुमन बहु लाई
मीन केतु मद भंजनकारन, तुम पदमद्म चढ़ाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य-गव्य आदिक रसपूरित, नेवज तुरत उपाई
छुधारोग निरवारन कारन, तुम्हें जजौं शिरनाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक जोत उदोत होत वर, दश-दिश में छवि छाई
मोह तिमिर नाशक तुमको लखि, जजौं चरन हरषाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविध गंध मनोहर लेकर, वात होत्र में डाई
अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूप सु धूम उड़ाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस सुपक्क सुपावन फल ले कंचन थार भराई
मोक्ष महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरौं गुन गाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल दरव मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई
शिवपदराज हेत हे श्रीपति ! निकट धरौं यह लाई ॥वासु
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
कलि छट्ट आसाढ़ सुहायो, गरभागम मंगल पायो
दशमें दिवि तें इत आये, शतइन्द्र जजें सिर नाये॥
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाषष्ठयां गर्भमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
कलि चौदस फगुन जानो, जनमो जगदीश महानो
हरि मेरु जजे तब जाई, हम पूजत हैं चित लाई ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
तिथि चौदस फागुन श्यामा, धरियो तप श्री अभिरामा
नृप सुन्दर के पय पायो, हम पूजत अति सुख थायो ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्या तपोमंगल प्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सुदि माघ दोइज सोहे, लहि केवल आतम जोहे
अनअंत गुनाकर स्वामी, नित वंदौ त्रिभुवन नामी ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्लाद्वितीयायां केवलज्ञान मंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सित भादव चौदस लीनो, निरवान सुथान प्रवीनी
पुर चंपा थानक सेती, हम पूजत निज हित हेती ॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
चंपापुर में पंच वर-कल्याणक तुम पाय
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय

महासुखसागर आगर ज्ञान, अनंत सुखामृत मुक्त महान
महाबलमंडित खंडितकाम, रमाशिवसंग सदा विसराम
सुरिंद फनिंद खगिंद नरिंद, मुनिंद जजें नित पादारविंद
प्रभू तुम अंतरभाव विराग, सु बालहि तें व्रतशील सों राग
कियो नहिं राज उदास सरुप, सु भावन भावत आतम रुप
'अनित्य' शरीर प्रपंच समस्त, चिदातम नित्य सुखाश्रित वस्त
'अशर्न' नहीं कोउ शर्न सहाय, जहां जिय भोगत कर्म विपाय
निजातम को परमेसुर शर्न, नहीं इनके बिन आपद हर्न
'जगत्त' जथा जल बुदबुद येव, सदा जिय एक लहै फलमेव
अनेक प्रकार धरी यह देह, भ्रमे भवकानन आन न गेह
'अपावन' सात कुधात भरीय, चिदातम शुद्ध सुभाव धरीय
धरे तन सों जब नेह तबेव, सु 'आवत कर्म' तबै वसुभेव
जबै तन-भोग-जगत्त-उदास, धरे तब 'संवर' 'निर्जर' आस
करे जब कर्मकलंक विनाश, लहे तब 'मोक्ष' महासुखराश
तथा यह 'लोक' नराकृत नित्त, विलोकियते षट्द्रव्य विचित्त
सु आतमजानन 'बोध' विहिन, धरे किन तत्व प्रतीत प्रवीन
'जिनागम ज्ञानरु' संजम भाव, सबै निजज्ञान विना विरसाव
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल, सुभाव सबै जिस तें शिव हाल
लयो सब जोग सु पुन्य वशाय, कहो किमि दीजिय ताहि गँवाय
विचारत यों लौकान्तिक आय, नमे पदपंकज पुष्प चढ़ाय 11
कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार, प्रबोधि सुयेम कियो जु विहार
तबै सौधर्मतनों हरि आय, रच्यो शिविका चढ़िआय जिनाय
धरे तप पाय सु केवलबोध, दियो उपदेश सुभव्य संबोध
लियो फिर मोक्ष महासुखराश, नमें नित भक्त सोई सुख आश
नित वासव वंदत, पापनिकंदत, वासुपूज्य व्रत ब्रह्मपती
भवसंकलखंडित, आनंदमंडित, जै जै जै जैवंत जती

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वासुपूजद सार, जजौं दरबविधि भाव सों
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्ति को जो परम ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीविमलनाथ-पूजन

सहस्रार दिवि त्यागि, नगर कम्पिला जनम लिय
कृतधर्मानृपनन्द, मातु जयसेना धर्मप्रिय ॥
तीन लोक वर नन्द, विमल जिन विमल विमलकर
थापौं चरन सरोज, जजन के हेतु भाव धर ॥

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कंचन झारी धारि, पदमद्रह को नीर ले
तृषा रोग निरवारि, विमल विमलगुन पूजिये ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागर करपूर देववल्लभा संग घसि
हरि मिथ्यातमभूर, विमल विमलगुन जजतु हौं ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

वासमती सुखदास, स्वेत निशपति को हँसै
पूरे वाँछित आस, विमल विमलगुन जजत ही ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मंदार, संतानक सुरतरु जनित
जजौं सुमन भरि थार, विमल विमलगुन मदनहर ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नव्य गव्य रसपूर, सुवरण थाल भरायके
छुधावेदनी चूर, जजौं विमल विमलगुन ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

माणिक दीप अखण्ड, गो छाई वर गो दशों
हरो मोहतम चंड, विमल विमलमति के धनी ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगरु तगर घनसार, देवदारु कर चूर वर
खेवौं वसु अरि जार, विमल विमल पद पद्म ढिग ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल सेव अनार, मधुर रसीले पावने
जजौं विमलपद सार, विघ्न हरें शिवफल करें ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब संवार, मनसुखदायक पावने
जजौं अरघ भर थार, विमल विमल शिवतिय रमण ॥
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

गरभ जेठ बदी दशमी भनो, परम पावन सो दिन शोभनो
करत सेव सची जननीतणी, हम जजें पदपद्म शिरौमणी ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णादशम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
शुकलमाघ तुरी तिथि जानिये, जनम मंगल तादिन मानिये
हरि तबै गिरिराज विषै जजे, हम समर्चत आनन्द को सजे ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्लाचतुर्थ्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
तप धरे सित माघ तुरी भली, निज सुधातम ध्यावत हैं रली
हरि फनेश नरेश जजें तहां, हम जजें नित आनन्द सों इहां ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्लाचतुर्थ्यां तपोमंगल प्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
विमल माघरसी हनि घातिया, विमलबोध लयो सब भासिया
विमल अर्घ चढ़ाय जजौं अबै, विमल आनन्द देहु हमें सबै ॥
ॐ ह्रीं माघशुक्लाषष्ठयां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
भ्रमरसाढ़ छटी अति पावनो विमल सिद्ध भये मन भावनो
गिरसमेद हरी तित पूजिया, हम जजैं इत हर्ष धरैं हिया ॥
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णाषष्ठयां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
गहन चहत उड़गन गगन, छिति तिथि के छहँ जेम
तुम गुन-वरनन वरननि, माँहि होय तब केम
साठ धुनष तन तुंग है, हेम वरन अभिराम
वर वराह पद अंक लखि, पुनि पुनि करौं प्रनाम

जय केवलब्रह्म अनन्तगुनी, तुम ध्यावत शेष महेश मुनी
परमातम पूरन पाप हनी, चितचिंततदायक इष्ट धनी
भव आतपध्वंसन इन्दुकरं, वर सार रसायन शर्मभरं

सब जन्म जरा मृतु दाहहरं, शरनागत पालन नाथ वरं
नित सन्त तुम्हें इन नामनि तें, चित चिन्तन हैं गुनगाम नितैं
अमलं अचलं अटलं अतुलं, अरलं अछलं अथलं अकुलं
अजरं अमरं अहरं अडरं, अपरं अभरं अशरं अनरं
अमलीन अछीन अरीन हने, अमतं अगतं अरतं अघने
अछुधा अतृषा अभयातम हो, अमदा अगदा अवदातम हो
अविरुद्ध अक्रुद्ध अमानधुना, अतलं असलं अनअन्त गुना
अरसं सरसं अकलं सकलं, अवचं सवचं अमचं सबलं
इन आदि अनेक प्रकार सही, तुमको जिन सन्त जपें नित ही
अब मैं तुमरी शरना पकरी, दुख दूर करो प्रभुजी हमरी
हम कष्ट सहे भवकानन में, कुनिगोद तथा थल आनन में
तित जानम मर्न सहे जितने, कहि केम सकें तुम सों तितने
सुमुहूरत अन्तरमाहिं धरे, छह त्रै त्रय छः छहकाय खरे
छिति वहि वयारिक साधरनं, लघु थूल विभेदनि सों भरनं
परतेक वनस्पति ग्यार भये, छ हजार दुवादश भेद लये
सब द्वै त्रय भू षट छः सु भया, इक इन्द्रिय की परजाय लया
जुग इन्द्रिय काय असी गहियो, तिय इन्द्रिय साठनि में रहियो
चतुरिंद्रिय चालिस देह धरा, पनइन्द्रिय के चवबीस वरा
सब ये तन धार तहाँ सहियो, दुखघोर चितारित जात हियो
अब मो अरदास हिये धरिये, दुखदंद सबै अब ही हरिये
मनवांछित कारज सिद्ध करो, सुखसार सबै घर रिद्ध भरो
घत्ताः- जय विमलजिनेशा नुतनाकेशा, नागेशा नरईश सदा
भवताप अशेषा, हरन निशेशा, दाता चिन्तित शर्म सदा
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीमत विमल जिनेशपद, जो पूजें मनलाय
पूरें वांछित आश तसु, मैं पूजौं गुनगाय ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीअनन्तनाथ-पूजन

पुष्पोत्तर तजि नगर अजुध्या जनम लियो सूर्या उर आय,
सिंघसेन नृप के नन्दन, आनन्द अशेष भरे जगराय
गुन अंनत भगवंत धरे, भवदंद हरे तुम हे जिनराय,
थापतु हौं त्रय बार उचरि के, कृपासिन्धु तिष्ठहु इत आय ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शुचि नीर निरमल गंग को ले, कनक भृंग भराइया
मल करम धोवन हेत, मन वच काय धार ढराइया ॥
जगपूज परम पुनीत मीत, अनंत संत सुहावनो
शिव कंत वंत मंहत ध्यावौं, भ्रंत वन्त नशावनो ॥
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचन्द कदलीनंद कंकुम, दंद ताप निकंद है
सब पापरुजसंताप भंजन, आपको लखि चंद है ॥ज
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

कनशाल दुति उजियाल हीर, हिमाल गुलकनि तें घनी
तसु पुंज तुम पदतर धरत, पद लहत स्वछ सुहावनी ॥ज
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुष्कर अमरत जनित वर, अथवा अवर कर लाइया
तुम चरन-पुष्करतर धरत, सरशूर सकल नशाइया ॥ज
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान नैना घ्रान रसना, को प्रमोद सुदाय हैं
सो ल्यान चरन चढ़ाय रोग, छुधाय नाश कराय हैं ॥ज
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तममोह भानन जानि आनन्द, आनि सरन गही अबै
वर दीप धारौं वारि तुम ढिग, स्व-पर-ज्ञान जु द्यो सबै ॥ज
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

यह गंध चूरि दशांग सुन्दर, धूम्रध्वज में खेय हौं
वसुकर्म भर्म जराय तुम ढिग, निज सुधातम वेय हौं ॥ज
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

रसथक्क पक्क सुभक्क चक्क, सुहावने मृदु पावने
फलासार वृन्द अमंद ऐसो, ल्याय पूज रचावने ॥ज

ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि नीर चन्दन शालिशंदन, सुमन चरु दीवा धरौं
अरु धूप फल जुत अरघ करि, करजोरजुग विनति करौं ॥ज
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
असित कार्तिक एकम भावनो, गरभ को दिन सो गिन पावनो
किय सची तित चर्चन चाव सों , हम जजें इत आनंद भाव सों ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाप्रतिपदायां गर्भमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
जनम जेठवदी तिथि द्वादशी, सकल मंगल लोकविषै लशी
हरि जजे गिरिराज समाज तें, हम जजैं इत आतम काज तें ॥
ॐ ह्रीं जेष्ठकृष्णाद्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
भव शरीर विनस्वर भाइयो, असित जेठ दुवादशि गाइयो
सकल इंद्र जजें तित आइके, हम जजैं इत मंगल गाइके ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाद्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित चैत अमावस को सही, परम केवलज्ञान जग्यो कही
लही समोसृत धर्म धुरंधरो, हम समर्चत विघ्न सबै हरो ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाअमावस्यायां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
असित चैत अमावस गाइयो, अघत घाति हने शिव पाइयो
गिरि समेद जजें हरि आय के, हम जजें पद प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाअमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीअनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
तुम गुण वरनन येम जिम, खंविहाय करमान
था मेदिनी पदनिकरि, कीनो चहत प्रमान ॥
जय अनन्त रवि भव्यमन, जलज वृन्द विहँसाय
सुमति कोकतिय थोक सुख, वृद्ध कियो जिनराय ॥

जै अनन्त गुनवंत नमस्ते, शुद्ध ध्येय नित सन्त नमस्ते
लोकालोक विलोक नमस्ते, चिन्मूरत गुनथोक नमस्ते
रत्नत्रयधर धीर नमस्ते, करमशत्रुकरि कीर नमस्ते
चार अनंत महन्त नमस्ते, जय जय शिवतियकंत नमस्ते
पंचाचार विचार नमस्ते, पंच करण मदहार नमस्ते
पंच पराव्रत-चूर नमस्ते, पंचमगति सुखपूर नमस्ते
पंचलब्धि-धरनेश नमस्ते, पंच-भाव-सिद्धेश नमस्ते

छहों दरब गुनजान नमस्ते, छहों कालपहिचान नमस्ते
छहों काय रच्छेश नमस्ते, छह सम्यक उपदेश नमस्ते
सप्तव्यसनवनवह्नि नमस्ते, जय केवल अपरह्नि नमस्ते
सप्ततत्त्व गुनभनन नमस्ते, सप्त श्वभ्रगति हनन नमस्ते
सप्तभंग के ईश नमस्ते, सातों नय कथनीश नमस्ते
अष्टकरम मलदल्ल नमस्ते, अष्टजोग निरशल्ल नमस्ते
अष्टम धराधिराज नमस्ते, अष्ट गुननि सिरताज नमस्ते
जय नवकेवल प्राप्त-नमस्ते, नव पदार्थथिति आप्त नमस्ते
दशों धरम धरतार नमस्ते, दशों बंधपरिहार नमस्ते
विघ्न महीधर विज्जु नमस्ते, जय ऊरधगति रिज्जु नमस्ते
तन कनकंदुति पूर नमस्ते, इक्ष्वाकु वंश कज सूर नमस्ते
धनु पचासतन उच्च नमस्ते, कृपासिंधु मृग शुच्च नमस्ते
सेही अंक निशंक नमस्ते, चितचकोर मृग अंक नमस्ते
राग दोषमदटार नमस्ते, निजविचार दुखहार नमस्ते
सुर-सुरेश-गन-वृन्द नमस्ते, 'वृन्द' करो सुखकंद नमस्ते

जय जय जिनदेवं सुरकृतसेवं, नित कृतचित्त हुल्लासधरं
आपद उद्धारं समतागारं, वीरराग विज्ञान भरं
ॐ ह्रीं श्रीअनंतनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो जन मन वच काय लाय, जिन जजे नेह धर,
वा अनुमोदन करे करावे पढ़े पाठ वर
ताके नित नव होय सुमंगल आनन्द दाई,
अनुक्रम तें निरवान लहे सामग्री पाई ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीधर्मनाथ-पूजन

तजि के सरवारथसिद्धि विमान, सुभान के आनि आनन्द बढ़ाये
जगमात सुव्रति के नन्दन होय, भवोदधि डूबत जंतु कढ़ाये ॥
जिनके गुन नामहिं प्रकाश है, दासनि को शिवस्वर्ग मँढ़ाये
तिनके पद पूजन हेत त्रिबार, सुथापतु हौं इहं फूल चढ़ाये ॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

मुनि मन सम शुचि शीर नीर अति, मलय मेलि भरि झारी
जनमजरामृत ताप हरन को, चरचौं चरन तुम्हारी ॥
परमधरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन शरन निहारी
पूजौं पाय गाय गुन सुन्दर नाचौं दे दे तारी ॥
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

केशर चन्दन कसली नन्दन, दाहनिकन्दन लीनि
जलसंग घस लसि शसिसम शमकर, भव आताप हरीनो परम
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

जलज जीर सुखदास हीर हिम, नीर किरनसम लायो
पुंज धरत आनन्द भरत भव, दंद हरत हरषायो ॥परम
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुमन सुमन सम सुमणि थाल भर, सुमनवृन्द विहंसाई
सुमन्मथ-मद-मंथन के कारन, अरचौं चरन चढ़ाई ॥परम
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर अर्द्ध चन्द्र सम, छिद्र सहज विराजे
सुरस मधुर ता सों पद पूजत, रोग असाता भाजै ॥परम
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुन्दर नेह सहित वर दीपक, तिमिर हरन धरि आगे
नेह सहित गाऊँ गुन श्रीधर, ज्यों सुबोध उर जागे ॥परम
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागर तव दिव हरिचन्दन करपूरं
चूर खेय ज्वलन मांहि जिमि, करम जरें वसु कूरं ॥परम
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

आम्र काम्रक अनार सारफल, भार मिष्ट सुखदाई
सो ले तुम ढिग धरहुँ कृपानिधि, देहु मोच्छ ठकुराई ॥परम
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

आठों दरब साज शुचि चितहर, हरषि हरषि गुनगाई

बाजत दमदम दम मृदंग गत, नाचत ता थेई थाई ॥परम
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
पूजौं हो अबार, धरम जिनेसुर पूजौं ॥टेक
आठैं सित बैशाख की हो, गरभ दिवस अधिकार
जगजन वांछित पूर को, पूजौं हो अबार ॥धरम
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ला अष्टम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
शुकल माघ तेरसि लयो हो, धरम धरम अवतार
सुरपति सुरगिर पूजियो, पूजौं हो अबार ॥धरम
ॐ ह्रीं माघशुक्ला त्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
माघशुक्ल तेरस लयो हो, दुर्द्धर तप अविष्कार
सुरऋषि सुमनन तें पूजें, पूजौं हो अबार ॥धरम
ॐ ह्रीं माघशुक्ला त्रयोदश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
पौषशुक्ल पूनम हने अरि, केवल लहि भवितार
गण-सुर-नरपति पूजिया, पूजौं हो अबार ॥धरम
ॐ ह्रीं पौषशुक्ला पूर्णिमायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
जेठशुकल तिथि चौथ की हो, शिव समेद तें पाय
जगतपूज्यपद पूजहूँ, पूजौं हो अबार ॥धरम
ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्ला चतुर्थ्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
घनाकार करि लोक पट, सकल उदधि मसि तंत
लिखै शारदा कलम गहि, तदपि न तुव गुन अंत

जय धरमनाथ जिन गुनमहान, तुम पद को मैं नित धरौं ध्यान
जय गरभ जनम तप ज्ञानयुक्त, वर मोच्छ सुमंगल शर्म-भुक्त
जय चिदानन्द आनन्दकंद, गुनवृन्द सु ध्यावत मुनि अमन्द
तुम जीवनि के बिनु हेतु मित्त, तुम ही हो जग में जिन पवित्त
तुम समवसरण में तत्वसार, उपदेश दियो है अति उदार
ता को जे भवि निजहेत चित्त, धारें ते पावें मोच्छवित्त
मैं तुम मुख देखत आज पर्म, पायो निज आतमरुप धर्म
मो कों अब भवदधि तें निकार, निरभयपद दीजे परमसार
तुम सम मेरो जग में न कोय, तुमही ते सब विधि काज होय
तुम दया धुरन्धर धीर वीर, मेटो जगजन की सकल पीर
तुम नीतिनिपुन विन रागरोष, शिवमग दरसावतु हो अदोष

तुम्हरे ही नामतने प्रभाव, जगजीव लहें शिव-दिव-सुराव
ता तें मैं तुमरी शरण आय, यह अरज करतु हौं शीश नाय
भवबाधा मेरी मेट मेट, शिवराधा सों करौं भेंट भेंट
जंजाल जगत को चूर चूर, आनन्द अनूपम पूर पूर
मति देर करो सुनि अरज एव, हे दीनदयाल जिनेश देव
मो कों शरना नहिं और ठौर, यह निहचै जानो सुगुन मौर
'वृन्दावन' वंदत प्रीति लाय, सब विघन मेट हे धरम-राय

जय श्रीजिनधर्मं, शिवहितपर्मं, श्रीजिनधर्मं उपदेशा
तुम दयाधुरंधर विनतपुरन्दर, कर उरमन्दर परवेशा
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो श्रीपतिपद जुगल, उगल मिथ्यात जजे भव
ता के दुख सब मिटहिं, लहे आनन्द समाज सब ॥
सुर-नर-पति-पद भोग, अनुक्रम तें शिव जावे
ता तें 'वृन्दावन' यह जानि, धरम-जिन के गुन ध्यावे ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीशांतिनाथ-पूजन

(श्री बख्तावर सिंह कृत)

सर्वार्थ सुविमान त्याग गजपुर में आये
विश्वसेन भूपाल तासु के नन्द कहाये ॥
पंचम चक्री भय मदन द्वादश में राजे
मैं सेवूं तुम चारण तिष्ठाये ज्यों दुःख भाजे ॥

अन्वयार्थ : आप सर्वार्थसिद्धि विमान को छोड़कर [**गजपुर**] हस्तिनापुर में पधारे थे, विश्वसेन [**भूपाल**] राजा के [**नन्द**] पुत्र कहलाये थे । आप पांचवें चक्रवर्ती हुए और [**द्वादश**] बारहवें [**मदन**] कामदेव हुए । मैं आपके चरणों की सेवा करता हूँ, आप मेरे हृदय में पधारिये जिससे मेरे समस्त सांसारिक [**भाजे**] दुःख दूर हो जाए ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननं)
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनं)
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधि करणं)

पंचम उदधि तनो जल निर्मल कंचन कलश भरे हरषाय
धार देत ही श्री जिन सन्मुख जन्मजरामृत दूर भगाय ॥

शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद जाय ॥

अन्वयार्थ : **[पंचम उदधि]** क्षीर सागर के निर्मल जल को सोने के कलश में लेकर, अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक श्री जी के सम्मुख धार देने **[तनो]** से जन्म, जरा और मृत्यु नष्ट हो जाते है । शांतिनाथ भगवान्, आपने पांचवें चक्रवर्ती, बारहवें **[मदन]** कामदेव का पद पाया । आपके चरण कमलों की पूजा करने से रोग, शोक, दुःख और दारिद्रता नष्ट हो जाते हैं ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलियागिरि चंदन कदलीनंदन कुंकुम जल के संग घसाय
भव आताप विनाशन कारण चरचूं चरण सबै सुखदाय॥
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाये
तिन के चरण कमल के पूजे रोगशोकदुःख दारिद जाय॥

अन्वयार्थ : मैं मलियागिरि का उत्कृष्ट चंदन, **[कदली नंदन]** कपूर, कुंकुम को जल के साथ घिसकर, भव भव के समस्त दुखों को नष्ट करने के लिए लेकर आपके चरणों की पूजा करता हूँ जो कि सब सुख देने वाली है शांतिनाथ भगवान् जी आप पांचवें चक्रवर्ती, बारहवें कामदेव का पद पाया था । आप के चरण कमलों की पूजा करने से रोग, शोक, दुःख और दारिद्रता नष्ट हो जाते है ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यराशि सम उज्जवल अक्षत शशिमारीचि तसु देख लजाय
पुंज किये तुम चरणन आगे अक्षय पद के हेतु बनाये ॥शांति॥

अन्वयार्थ : मैं, पुण्यराशि के समान स्वच्छ अक्षत के पुंजो को जिन्हे देख कर **[शशिमारीचि]** चंद्रमा की किरणे भी लज्जित हो जाती है, मोक्ष पद की प्राप्ति के लिए, आपके चरणों के समक्ष अर्पित कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुर पुनीत अथवा अवनी के कुसुम मनोहर लिय मंगाय
भेंट धरत तुम चरणन के ढिंग ततक्षिन कामबाण नस जाय ॥शांति॥

अन्वयार्थ : मैं **[सुर]** देवों द्वारा लाये गये **[पुनीत]** पवित्र (कल्पवृक्ष के) अथवा **[अवनी]** पृथ्वी/मध्यलोक के मनोहर **[कुसुम]** पुष्प को मंगाकर, आप के चरणों के समक्ष अर्पित कर रहा हूँ जिससे तुरंत काम-वासना नष्ट हो जाए ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

भाँति भाँति के सद्य मनोहर कीने मैं पकवान संवार
भर थारी तुम सम्मुख लायो क्षुधा वेदनी वेग निवार ॥शांति॥

अन्वयार्थ : मैं क्षुधा की वेदना को **[वेग]** शीघ्रता से निवारण के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के, **[सद्य]** ताज़े मनोहर पकवान संवारकर, थाली में रखकर आपके सम्मुख अर्पित करने के लिए लाया हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा

घृत सनेह करपूर लाय कर दीपक ताके धरे परजार
जगमग जोत होत मंदिर में मोह अंध को देत सुटार॥शांति॥

अन्वयार्थ : **[सनेह]** चिकने घी और कपूर से **[परजार]** प्रज्ज्वलित करके दीपक आपके सम्मुख **[धरे]** अर्पित करता हूँ जिससे मंदिर जी में जग मग ज्योति होती है और मोहरुपी अन्धकार **[सुटार]** पूर्णतया दूर हो जाता है ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

देवदारु कृष्णागरु चंदन ,तगर कपूर सुगंध अपार
खेऊँ अष्ट करम जारन को धूप धनंजय माहिं सुडार ॥शांति॥

अन्वयार्थ : [**देवदारु**] देवदार की लकड़ी, चंदन और कपूर मिलाकर अत्यंत सुगंधित धुप बनाकर, अष्टकर्मों के [**जारन**] नष्ट के लिए खेता हूँ । मेरे कर्मो को नष्ट करने की कृपा करे ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

नारंगी बादाम सुकेला एला दाड़िम फल सहकार
कंचन थाल माहिं धर लायो अरचत ही पाऊँ शिवनार ॥शांति॥

अन्वयार्थ : [**माहिं**] मैं नारंगी, बादाम, केला, [**एला**] इलाइची, [**दाड़िम**] अनार, [**सहकार**] आम आदि फलों को सोने के थाल में भरकर आपकी पूजा करने के लिए लाया हूँ जिससे [**शिवनार**] मोक्ष लक्ष्मी प्राप्ति हो ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि वसु द्रव्य संवारे अर्घ चढाये मंगल गाये
'बखत रतन' के तुम ही साहिब दीजे शिवपुर राज कराय ॥शांति॥

अन्वयार्थ : जल फल आदि आठों द्रव्य को [**संवार**] मिलाकर मंगल गान करते हुए आपको अर्घ्य अर्पित करता हूँ । बख्तावर कवि कहते है कि आप ही हमारे [**साहिब**] स्वामी हो हमे [**अनर्घ**] मोक्ष [**राज्य**] दिलवा दीजिये ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

(पंच कल्याणक)

भादव सप्तमि श्यामा, सर्वार्थ त्याग नागपुर आये
माता ऐरा नाम, मैं पूजूं ध्याऊँ अर्घ शुभ लाये ॥

अन्वयार्थ : आप सर्वार्थसिद्धि त्यागकर भादव [**श्यामा**] वदी सप्तमी को माता ऐरा के उदर में, [**नागपुर**] हस्तिनापुर में पधारे मैं आपकी पूजा और ध्यान कर, शुभ अर्घ आपके समक्ष समर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय भाद्र पद कृष्णा सप्तम्यां गर्भकल्याणक प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

जन्मे तिरथ नाथं, वर जेठ असित चतुर्दशि सो है
हरि गण नावें माथं, मैं पूजूं शांति चरण युग जो है ॥

अन्वयार्थ : तीर्थंकर नाथ का जन्म [**वर**] श्रेष्ट, ज्येष्ठ [**असित**] कृष्णा चतुर्दशी को हुआ । [**हरि-गण**] देव और इंद्र ने भगवान् को [**नावें माथं**] नमस्कार किया । मैं भी शांति नाथ भगवान् के दोनों चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां जन्म कल्याणक प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

चौदस जेठ अँधियारी,कानन में जाय योग प्रभु लीन्हा
नवनिधि रत्न सुछारी, मैं बंदू आत्मसार जिन चीन्हा ॥

अन्वयार्थ : भगवान् ने ज्येष्ट वदी चतुर्दशी को **[कानन]** जंगल में जाकर **[योग]** दीक्षा धारण करी । उन्होंने नवनिधियों, रत्नो चक्रवर्ती पद को भी **[सुछारी]** त्याग दिया । मैं ऐसे शांतिनाथ भगवान् की वंदना करता हूँ **[चीन्हा]** जिन्होंने **[आत्मसार]** आत्मा की श्रेष्ठता को पहिचान लिया है ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां तपकल्याणक प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

पौष दसे उजियारा, अरि घाति ज्ञान भानु जिन पाया
प्रातिहार्य वसुधारा, मैं सेऊँ सुर नर जासु यश गाया ॥

अन्वयार्थ : पौष **[उजियारा]** शुक्ल दशमी को भगवान् ने **[अरि]** कर्मशत्रु का घात कर/चार घातिया कर्मों को नष्ट कर अपने, ज्ञान रूपी सूर्य का उदय किया अर्थात उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ । केवल ज्ञान प्राप्त होते ही उनको अष्ट प्रातिहार्य प्राप्त हुए, देवों और मनुष्यों ने भी उनके यशगान किया है; ऐसे भगवान् शांतिनाथ भगवान की मैं सेवा/पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय पौष शुक्लादशम्यां ज्ञानकल्याणक प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

सम्मेद शैल भारी, हनकर अघाति मोक्ष जिन पाई
जेठ चतुर्दिशकार, मैं पूजूं सिद्धथान सुखदाई ॥

अन्वयार्थ : सम्मेदशिखर पर्वत पर अघाती-कर्मों को **[हंकार]** नष्ट कर जिन्होंने जेठ चतुर्दशी **[कारी]** वदी को मोक्ष प्राप्त किया, मैं भगवान् के सुखदायी निर्वाण-क्षेत्र की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां मोक्ष कल्याणक प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

(जयमाला)

भये आप जिनदेव जगत में सुख विस्तारे
तारे भव्य अनेक तिन्हों के संकट टारे ॥
टारे आठों कर्म मोक्ष सुख तिनको भारी
भारी विरद निहार लही मैं शरण तिहारी ॥

अन्वयार्थ : आप जिनेन्द्र भगवान् हो गए हैं, आपने जगत में सुख का विस्तार किया है, अनेक भव्य जीवों को संसार से पार लगाकर उनके संकट दूर किये है । आपने आठों कर्मों को नष्ट कर उनको भी मोक्ष सुख प्राप्त कराया है आप के **[विरद]** यश को **[निहार]** देखकर मैं आपकी शरण में आया हूँ ।

तिहारे चरणन को नमूं दुःख दारिद संताप हर
हर सकल कर्म छिन एक में,शान्ति जिनेश्वर शांति कर ॥

अन्वयार्थ : मैं आपके चरणों को नमन करता हूँ मेरे दुःख, दरिद्रता और संताप को हर लीजिये । एक क्षण **[छिन]** में मेरे **[सकल]** समस्त कर्मों को हर लीजिये । शांतिनाथ भगवन आप शांति प्रदान करें ।

सारंग लक्षण चरण में ,उन्नत धनु चालीस
हाटक वर्ण शरीर द्युति ,नमूं शांति जग ईश ॥

अन्वयार्थ : आपके चरण में **[सारंग]** हिरन का **[लक्षण]** चिन्ह है, ऊंचाई ४० धनुष, **[हाटक]** स्वर्णमयी शरीर की काँति थी, हे जगत के स्वामी शांति नाथ भगवान् मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

प्रभो आपने सर्व के फंद तोड़े, गिनाऊँ कछू मैं तिनों नाम थोड़े
पड़ो अम्बु के बीच श्रीपाल राई, जपों नाम तेरो भए थे सहाई ॥

अन्वयार्थ : प्रभु आपने बहुत लोगों के फंदे तोड़े है, अर्थात उन्हें मुक्ति दिलाई है उनमे से कुछ के नाम मैं गिनाता हूँ । जब श्रीपाल **[राई]** राजा **[अम्बु]** समुद्र के बीच में गिर गया था तब उसने आप का नाम जपा था तब आपने उन की सहायता करी थी । कथा - मैना-सुंदरी कथा में, मैना सुंदरी के पति श्रीपाल, को धवल सेठ ने मायाचारी से धक्का देकर समुद्र में फिंकवा दिया था तब श्रीपाल, भगवान के नाम की माला जपते जपते समुद्र से पार लग गए थे ।

धरो राय ने सेठ को सूलिका पै, जपी आपके नाम की सार जपै
भये थे सहाई तबै देव आये,करी फूल वर्षा सिंहासन बनाये ॥

अन्वयार्थ : राय राजा ने सेठ सुदर्शन को सूलि पर चढ़ा दिया था, उन्होंने आपके नाम की **[सार]** श्रेष्ठ जाप जपी थी तब देवों ने आकर उनकी फूलों की वर्षा कर तथा सिंहासन बनाकर, उस पर उन्हें बैठा कर, सम्मान कर (सहाई) सहायता करी थी ।

जबै लाख के धाम वह्नि प्रजारी,भयो पांडवों पै महा कष्ट भारी
जबै नाम तेरे तनी टेर कीनी,करी थी विदुर ने वही राह दीनी ॥

अन्वयार्थ : पांडवों के लाख के **[धाम]** घर में **[वह्नि]** आग **[प्रजारी]** लगाने से, उन पर महान कष्ट आया था जब उन्होंने आपका नाम लेकर आपको **[टेर]** पुकारा था तब विदुर ने उन्हें रास्ता बता दिया था

हरी द्रोपदी घातकी खंड माहीं, तुम्हीं वहाँ सही भला ओर नाहीं
लियो नाम तेरो भलो शील पालो, बचाई तहाँ ते सबै दुःख टालो ॥

अन्वयार्थ : द्रोपदी को घातकी खंड में हर लिया गया था वहाँ अन्य कोई नहीं था, आप ही तो सहारा थे उसने । आपका नाम लेकर शील का पालन किया, आपने उसकी वहाँ रक्षा कर उसके सभी दुःख को दूर किया । कथा - एक बार द्रोपदी के महल में नारद के आने पर उसने उनको देख कर नाक मुँह सिकोड़ा था, जिससे नारद ने अपने को अपमानित महसूस किया । तब नारद ने घातकी खंड के राजा पद्मनाभ को जाके द्रौपदी का चित्र दिखाया पद्मनाभ ने अपनी विद्या को भेजकर द्रौपदी को अपने पास घातकी खंड में बुलवा लिया जिससे यहाँ तो हाहाकार मच गया और वहाँ द्रौपदी ने विचार किया मैं यहाँ कैसे आ गयी, तब उसने आपका नाम लिया जिससे उस का सारा संकट दूर हो गया, अर्जुन वहाँ पहुंचकर द्रोपदी को वापिस ले आये ।

जबै जानकी राम ने जो निकारी, धरे गर्म को भार उद्यान डारी
रटो नाम तेरो भलो सबै सौख्यदाई, करी दुर पीड़ा सु क्षण न लगाई ॥

अन्वयार्थ : जब राम जी ने गर्भावस्था में, (जानकी) सीता को निकाल कर (उद्यान) जंगल में छुड़वा दिया था तब उसने आपका नाम लिया था जिससे आपने उनकी पीड़ा को दूर करने में देर नहीं लगाई, उनकी पीड़ा क्षण भर में समाप्त हो गयी ।

व्यसन सात सेवें करें तस्कराई, सुअंजन से तारे घड़ी न लगाई
सहे अंजना चंदना दुःख जेते, गये भाग सारे जरा नाम लेते ॥

अन्वयार्थ : अंजन चोर सप्त व्यसन का सेवन करता था, **[तस्कराई]** चोरी करता था, किन्तु जब उसने इन सब का त्याग कर आपको चित्त में धारण किया तब आपको उसे संसार से पार लगाने में एक घड़ी भी नहीं लगी । अंजना और चंदना भी कितने कितने दुःख भोगे, वे आपका नाम लेते ही दूर हो गये । नोट - अंजना जी हनुमान जी की माता जी थी, चंदना जी भगवान् महावीर (की मौसी) ने उन्हें आहार दिया था

घड़े बीच में सास ने नाग डारो, भलो नाम तेरो जु सोम संभारो
गई काढ़ने को भई फूलमाला, भई है विख्यातं सबै दुःख टाला ॥

अन्वयार्थ : सास ने एक घड़े में सांप डाल गिया था, सोमसती ने आपका नाम भली प्रकार लिया था । घड़े में से उसे निकालने के लिए जब गई तो वह फूल माला बन गया, जिससे उसके शील की सब जगह प्रशंसा हुई । भगवन आपने उसके सारे दुखों को दूर कर दिया । नोट - सोम नाम की सती थी जिसके चरित्र पर दोष लगाया गया था ।

इन्हे आदि देके कहाँ लो बखानें, सुनों विरद भारी तिहँ लोक जानें
अजी नाथ मेरी जरा और हेरो, बड़ी नाव तेरी रती बोझ मेरो ॥

अन्वयार्थ : इनका मैं बखान कहाँ तक करू, आपका यश तो बड़ा भारी है । तीनों लोक में हर जीव जानता है । हे नाथ भगवन ! मेरी ओर जरा **[हेरो]** देख लीजिये, आपकी नाव बहुत बड़ी है मेरा तो भार **[रती]** थोड़ा सा ही है, (मैं भी उस में बैठ कर पार हो जाऊँ) ।

गहो हाथ स्वामी करो वेग पारा ,कहूँ क्या अबै आपनी मैं पुकारा
सबै ज्ञान के बीच भासी तुम्हारे,करो देर नाहीं मेरे शांति प्यारे ॥

अन्वयार्थ : भक्त भगवान् से विनती करते हुए कह रहा है, भगवन आप मेरा हाथ **[गहो]** पकड़ कर **[वेग]** जल्दी से पार लगा दीजिये अब आपसे और क्या कहूं, मैं तो अपनी (पुकारा) विनती आपके सामने कर रहा हूँ आपके ज्ञान के बीच में सब **[भासी]** प्रकाशमान है, (आपसे मैं अपने भूत और वर्त्तमान के दुखों के विषय में क्या कहूं आपको सब पता है) केवल ज्ञानी हैं, मेरे शांति नाथ प्रभु अब और देर मत कीजिये, अनंत काल से मैं भटकता रहा, अन्य देवों भगवानों के चककर में भटकता रहा जो कि गलत था, अब मैं सही जगह आ गया हूँ, जल्दी से संसार से मुझे निकाल लीजिये ।

श्री शान्ति तुम्हारी, कीरत भारी, सुर नरनारी गुणमाला
बख्तावर ध्यावे, रतन सुगावे, मम दुःख दारिद सब टाला ॥

अन्वयार्थ : शांतिनाथ भगवान् आपका यश तीनों लोक में बहुत फैला हुआ है । देवता हो, मनुष्य, स्त्री आदि सभी आपके गुणों की माला को धारण करते हैं अर्थात निरंतर आपका गुणगान करते हैं । बख्तावर कवि कहते हैं कि जो आपका ध्यान करता है और आपके गुणों का गान करता है वे सब पार होते हैं । मैंने भी आपके गुणों का गान किया है मेरे भी दुःख और दरिद्रता को दूर कीजिये ।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अजी एरा नन्दन छबि लखत ही आप अरणं
धरै लज्जा भारी करत श्रुति सो लाग चरणं ॥
करै सेवा सोई लहत सुख सो सार क्षण में
घने दीना तारे हम चहत हैं बास तिन में ॥

अन्वयार्थ : मैंने **[श्रुति]** सुना है कि एरा देवी के पुत्र, आपकी छवि देखते ही **[अरणं]** सूर्य भी अत्यंत लज्जित हो जाता है, सूर्य समझता था कि सर्वाधिक प्रकाशमान आभा उसके पास ही है किन्तु भगवान की आभा तो करोडो सूर्य के प्रकाश से भी अधिक है इसलिए मैं आपकी शरण में आ गया हूँ । भगवान् जी, जो आपकी सेवा/भक्ति में लगते है वे श्रेष्ठ सुखों को क्षण में प्राप्त कर लेते है आपने तो बहुतों को पार लगा दिया है हम चाहते है कि हमारा भी वास उनमे हो जाए ।

श्रीशांतिनाथ-पूजन

(श्री वृन्दावनदासजी कृत)

या भव कानन में चतुरानन, पाप पनानन घेरी हमेरी
आतम जानन मानन ठानन, बान न होन दई सठ मेरी ॥
तामद भानन आपहि हो, यह छान न आन न आनन टेरी
आन गही शरनागत को, अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

हिमगिरि गतगंगा, धार अभंगा, प्रासुक संगा, भरि भृंगा
जर-जनम-मृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदु हिंगा ॥

श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयाऽमृतेशं, मक्रेशं ॥
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

वर बावन चन्दन, कदली नन्दन, घन आनन्दन सहित घसौं
भवताप निकन्दन, ऐरानन्दन, वंदि अमंदन, चरन बसौं ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

हिमकर करि लज्जत, मलय सुसज्जत अच्छत जज्जत, भरि थारी
दुखदारिद गज्जत, सदपद सज्जत, भवभय भज्जत, अतिभारी ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

मंदार, सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलयभरं
भरि कंचनथारी, तुमढिग धारी, मदनविदारी, धीरधरं ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान नवीने, पावन कीने षटरस भीने, सुखदाई
मनमोदन हारे, छुधा विदारे, आगे धारे गुनगाई ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेय विकासे सुखरासे
दीपक उजियारा, यातें धारा, मोह निवारा, निज भासे ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

चन्दन करपूरं करि वर चूरं, पावक भूरं माहि जुरं
तसु धूम उड़ावे, नाचत जावे, अलि गुंजावे मधुर सुरं ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निंबुक भूरं ले आयो
ता सों पद जज्जौं,शिवफल सज्जौं, निजरस रज्जौं उमगायो ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी, दृग-प्यारी
तुम हो भव तारी, करुनाधारी, या तें थारी शरनारी ॥श्री
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

असित सातँय भादव जानिये, गरभ मंगल ता दिन मानिये
सचि कियो जननी पद चर्चनं, हम करें इत ये पद अर्चनं ॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णा सप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है, सकल इन्द्र सु आगत धाम है
गजपुरै गज-साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजिहों अबै ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं
भ्रमर चौदशि जेठ सुहावनी, धरम हेत जजौं गुन पावनी ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुकलपौष दशैं सुखरास है, परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है
भवसमुद्र उधारन देव की, हम करें नित मंगल सेवकी ॥
ॐ ह्रीं पौषशुक्लादशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

असित चौदशि जेठ हने अरी, गिरि समेदथकी शिव-तिय वरी
सकल इन्द्र जजैं तित आय के, हम जजैं इत मस्तक नाय के ॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

शान्ति शान्तिगुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा
मैं तिन्हें भगत मंडिते सदा, पूजिहौं कलषु हंडिते सदा ॥
मोच्छ हेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुन रत्न माल हो
मैं अबै सुगुन-दाम ही धरौं, ध्यावते तुरत मुक्ति-तिय वरौं ॥

जय शान्तिनाथ चिद्रुपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज
तुम तजि सरवारथसिद्धि थान, सरवारथजुत गजपुर महान ॥
तित जनम लियो आनन्द धार, हरि ततछिन आयो राजद्वार
इन्द्रानी जाय प्रसूति थान, तुम को कर में ले हरष मान ॥
हरि गोद देय सो मोदधार, सिर चमर अमर ढारत अपार
गिरिराज जाय तित शिला पांडु, ता पे थाप्यो अभिषेक माँड ॥
तित पंचम उदधि तनों सुवार, सुर कर कर करि ल्याये उदार
तब इन्द्र सहसकर करि अनन्द, तुम सिर धारा ढारयो समुन्द ॥
अघघघ घघघघ धुनि होत घोर, भभभभ भभ धध धध कलश शोर

दृमदृम दृमदृम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग ॥
तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान
ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल ॥
चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट थट विराट
इमि नाचत राचत भगति रंग, सुर लेत जहाँ आनन्द संग ॥
इत्यादि अतुल मंगल सु ठाठ, तित बन्यो जहाँ सुर गिरि विराट
पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौप्यो तुम तित वृद्ध थाय ॥
पुनि राजमाहिं लहि चक्ररत्न, भोग्यो छहखण्ड करि धरम जत्न
पुनि तप धरि केवल रिद्धि पाय, भवि जीवनि को शिवमग बताय ॥
शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश, गुण-मंडित अतुल अनन्त भेष
मैं ध्यावतु हौं नित शीश नाय, हमरी भवबाधा हर जिनाय ॥
सेवक अपनो निज जान जान, करुणा करि भौभय भान भान
यह विघन मूल तरु खंड खंड, चितचिन्तित आनन्द मंड मंड ॥
छन्दः- श्रीशान्ति महंता, शिवतियकंता, सुगुन अनंता, भगवंता
भव भ्रमन हनन्ता, सौख्य अनन्ता, दातारं, तारनवन्ता ॥
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शान्तिनाथ जिन के पदपंकज, जो भवि पूजें मन वच काय
जनम जनम के पातक ता के, ततछिन तजि के जायं पलाय ॥
मनवांछित सुख पावे सो नर, बांचे भगतिभाव अति लाय
ता तें 'वृन्दावन' नित वंदे, जा तें शिवपुरराज कराय ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीकुंथुनाथ-पूजन

अज अंक अजै पद राजै निशंक, हरे भवशंक निशंकित दाता
मदमत्त मतंग के माथे गँथे, मतवाले तिन्हें हने ज्यों अरिहाता ॥
गजनागपुरै लियो जन्म जिन्हौं, रवि के प्रभु नंदन श्रीमति-माता
सो कुंथु सुकंथुनि के प्रतिपालक, थापौं तिन्हें जुतभक्ति विख्याता ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कुंथु सुन अरज दास केरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
भवसिन्धु पर्यो हौं नाथ, निकारो बांह पकर मेरी ॥

प्रभु सुन अरज दासकेरी, नाथ सुन अरज दासकेरी
जगजाल पर्यो हौं वेगि निकारो बांह पकर मेरी टेक
सुरसरिता को उज्ज्वल जल भरि, कनकभृंग भेरी
मिथ्यातृषा निवारन कारन, धरौं धार नेरी ॥कुंथु
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावन चंदन कदलीनंदन, घसिकर गुन टेरी
तपत मोह नाशन के कारन, धरौं चरन नेरी ॥कुंथु
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ताफलसम उज्ज्वल अक्षत, सहित मलय लेरी
पुंज धरौं तुम चरनन आगे अखय सुपद देरी ॥कुंथु
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतकी बेला दौना, सुमन सुमनसेरी
समरशूल निरमूल हेत प्रभु, भेंट करौं तेरी ॥कुंथु
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर मोदन मोदक, मृदु उत्तम पेरी
ता सों चरन जजौं करुनानिधि, हरो छुधा मेरी ॥कुंथु
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कंचन दीपमई वर दीपक, ललित जोति घेरी
सो ले चरन जजौं भ्रम तम रवि, निज सुबोध देरी ॥कुंथु
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

देवदारु हरि अगर तगर करि चूर अगनि खेरी
अष्ट करम ततकाल जरे ज्यों, धूम धनंजेरी ॥कुंथु
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

लोंग लायची पिस्ता केला, कमरख शुचि लेरी
मोक्ष महाफल चाखन कारन, जजौं सुकरि ढेरी ॥कुंथु
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप लेरी
फलजुत जनन करौं मन सुख धरि, हरो जगत फेरी ॥कुंथु

ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

सुसावन की दशमी कलि जान, तज्यो सरवारथसिद्ध विमान
भयो गरभागम मंगल सार, जजें हम श्री पद अष्ट प्रकार ॥
ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णादशम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
महा बैशाख सु एकम शुद्ध, भयो तब जनम तिज्ञान समृद्ध
कियो हरि मंगल मंदिर शीस, जजें हम अत्र तुम्हें नुतशीश ॥
ॐ ह्री वैशाकशुक्लाप्रतिपदायां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
तज्यो षटखंड विभौ जिनचंद, विमोहित चित्त चितार सुछद
धरे तप एकम शुद्ध विशाख, सुमग्न भये निज आनंद चाख ॥
ॐ ह्री वैशाकशुक्लाप्रतिपदायां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सुदी तिय चैत सु चेतन शक्त, चहूं अरि छयकरि तादिन व्यक्त
भई समवसृत भाखि सुधर्म, जजौं पद ज्यों पद पाइय पर्म ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लातृतीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
सुदी वैशाख सु एकम नाम, लियो तिहि द्यौस अभय शिवधाम
जजे हरि हर्षित मंगल गाय, समर्चतु हौं तुहि मन-वच-काय ॥
ॐ ह्री वैशाकशुक्लाप्रतिपदायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

षट खंडन के शत्रु राजपद में हने, धरि दीक्षा षटखंडन पाप तिन्हें दने ॥
त्यागि सुदरशन चक्र धरम चक्री भये, करमचक्र चकचूर सिद्ध दिढ़ गढ़ लये ॥
ऐसे कुंथु जिनेश तने पद पद्म को, गुन अनंत भंडार महा सुख सद्म को ॥
पूजौं अरघ चढ़ाय पुरणानंद हो, चिदानंद अभिनंद इन्द्र-गन-वंद हो ॥

जय जय जय जय श्रीकुंथुदेव, तुम ही ब्रह्मा हरि त्रिंबुकेव
जय बुद्धि विदाँवर विष्णु ईश, जय रमाकांत शिवलोक शीश ॥
जय दया धुरंधर सृष्टिपाल, जय जय जगबंधु सुगनमाल
सरवारथसिद्धि विमान छार, उपजे गजपुर में गुन अपार ॥
सुरराज कियो गिर न्हौन जाय, आंनद-सहित जुत-भगति भाय
पुनि पिता सौंपि करमुदितअंग, हरितांडव-निरत कियो अभंग ॥
पुनि स्वर्ग गयो तुम इत दयाल, वय पाय मनोहर प्रजापाल
षटखंड विभौ भोग्यो समस्त, फिर त्याग जोग धार्यो निरस्त ॥
तब घाति केवल उपाय, उपदेश दियो सब हित जिनाय
जा के जानत भ्रम-तम विलाय, सम्यक् दर्शन निर्मल लहाय ॥
तुम धन्य देव किरपा-निधान, अज्ञान-क्षमा-तमहरन भान

जय स्वच्छ गुनाकर शुक्त सुक्त, जयस्वच्छ सुखामृत भुक्तिमुक्त ॥
जय भौभयभंजन कृत्यकृत्य, मैं तुमरो हौं निज भृत्य भृत्य
प्रभु असरन शरन अधार धार, मम विघ्न-तूलगिरि जारजार ॥
जय कुनय यामिनी सूर सूर, जय मन वाँछित सुख पूर पूर
मम करमबंध दिढ़ चूर चूर, निजसम आनंद दे भूर भूर ॥
अथवा जब लों शिव लहौं नाहिं, तब लों ये तो नित ही लहाहिं
भव भव श्रावक-कुल जनमसार, भवभव सतमति सतसंग धार ॥
भव भव निजआम-तत्व ज्ञान, भव-भव तपसंयमशील दान
भव-भव अनुभव नित चिदानंद, भव-भव तुमआगम हे जिनंद ॥
भव-भव समाधिजुत मरन सार, भव-भव व्रत चाहौं अनागार
यह मो कों हे करुणा निधान, सब जोग मिले आगम प्रमान ॥
जब लों शिव सम्पति लहौं नाहिं, तबलों मैं इनको लहाँहि
यह अरज हिये अवधारि नाथ, भवसंकट हरि कीजे सनाथ ॥

जय दीनदयाला, वरगुनमाला, विरदविशाला सुख आला
मैं पूजौं ध्यावौं शीश नमावौं, देहु अचल पद की चाला
ॐ ह्रीं श्रीकुंथुनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कुंथु जिनेसुर पाद पदम जो प्रानी ध्यावें
अलिसम कर अनुराग, सहज सो निज निधि पावें ॥
जो बांचे सरधहें, करें अनुमोदन पूजा
'वृन्दावन' तिंह पुरुष सदृश, सुखिया नहिं दूजा ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीअरहनाथ-पूजन

तप तुरंग असवार धार, तारन विवेक कर
ध्यान शुकल असिधार शुद्ध सुविचार सुबखतर ॥
भावन सेना, धर्म दशों सेनापति थापे
रतन तीन धरि सकति, मंत्रि अनुभो निरमापे ॥
सत्तातल सोहं सुभटि धुनि, त्याग केतु शत अग्र धरि
इहविध समाज सज राज को, अर जिन जीते कर्म अरि ॥

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कनमनिमय झारी, दृग सुखकारी, सुर सरितारी नीर भरी
मुनिमन सम उज्ज्वल, जनम जरादल, सो ले पदतल धार करी ॥
प्रभु दीन दयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं सुकुमालं
हरि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुन मालं, वरभालं ॥
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भवताप नशावन, विरद सुपावन, सुनि मन भावन, मोद भयो
तातैं घसि बावन, चंदनपावन, तुमहिं चढ़ावन, उमगि अयो ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल अनियारे, श्वेत सँवारे, शशिदुति टारे, थार भरे
पद अखय सुदाता, जगविख्याता, लखि भवत्राता पुंजधरे ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुरतरु के शोभित, सुरन मनोभित, सुमन अछोभित ले आयो
मनमथ के छेदन, आप अवेदन, लखि निरवेदन गुन गायो ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

नेवज सज भक्षक प्रासुक अक्षक, पक्षक रक्षक स्वक्ष धरी
तुम करम निकक्षक, भस्म कलक्षक, दक्षक पक्षक रक्ष करी ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तुम भ्रमतम भंजन मुनिमन कंजन, रंजन गंजन मोह निशा
रवि केवलस्वामी दीप जगामी, तुम ढिग आमी पुण्य दृशा ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशधूप सुरंगी गंध अभंगी वह्नि वरंगी माहिं हवें
वसुकर्म जरावें धूम उड़ावें, ताँडव भावें नृत्य पवें ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

रितुफल अतिपावन, नयन सुहावन, रसना भावन, कर लीने
तुम विघन विदारक, शिवफलकारक, भवदधि तारक चरचीने ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

सुचि स्वच्छ पटीरं, गंधगहीरं, तंदुलशीरं, पुष्प-चरुं

वर दीपं धूपं, आनंदरुपं, ले फल भूपं, अर्घ करुं ॥प्रभु
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
फागुन सुदी तीज सुखदाई, गरभ सुमंगल ता दिन पाई
मित्रादेवी उदर सु आये, जजे इन्द्र हम पूजन आये ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्ला तृतीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
मँगसिर शुक्ल चतुर्दशि सोहे, गजपुर जनम भयो जग मोहे
सुर गुरु जजे मेरु पर जाई, हम इत पूजें मनवचकाई ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला चतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
मंगसिर सित दसमी दिन राजे, ता दिन संजम धरे विराजै
अपराजित घर भोजन पाई, हम पूजें इत चित हरषाई ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्ला दशम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
कार्तिक सित द्वादशि अरि चूरे, केवलज्ञान भयो गुन पूरे
समवसरन तिथि धरम बखाने, जजत चरन हम पातक भाने ॥
ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्ला द्वादश्यां ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा
चैत कृष्ण अमावसी सब कर्म, नाशि वास किय शिव-थल पर्म
निहचल गुन अनंत भंडारी, जजौं देव सुधि लेहु हमारी ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाअमावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
बाहर भीतर के जिते, जाहर अर दुखदाय
ता हर कर अर जिन भये, साहर शिवपुर राय
राय सुदरशन जासु पितु, मित्रादेवी माय
हेमवरन तन वरष वर, नव्वै सहस सुआय

जय श्रीधर श्रीकर श्रीपति जी, जय श्रीवर श्रीभर श्रीमति जी
भवभीम भवोदधि तारन हैं, अरनाथ नमों सुखकारन हैं
गरभादिक मंगल सार धरे, जग जीवनि के दुखदंद हरे
कुरुवंश शिखामनि तारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
करि राज छखंड विभूति मई, तप धारत केवलबोध ठई
गण तीस जहाँ भ्रमवारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
भविजीवन को उपदेश दियो, शिवहेत सबै जन धारि लियो
जग के सब संकट टारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
कहि बीस प्ररुपन सार तहाँ, निजशर्म सुधारस धार जहाँ
गति चार हृषीपन धारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं

षट काय तिजोग तिवेद मथा, पनवीस कषा वसु ज्ञान तथा
सुर संजम भेद पसारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
रस दर्शन लेश्या भव्य जुगं, षट सम्यक् सैनिय भेद युगं
जुग हारा तथा सु अहारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
गुनथान चतुर्दस मारगना, उपयोग दुवादश भेद भना
इमि बीस विभेद उचारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
इन आदि समस्त बखान कियो, भवि जीवनि ने उर धार लियो
कितने शिववादिन धारन हैं, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
फिर आप अघाति विनाश सबै, शिवधाम विषैं थित कीन तबै
कृतकृत्य प्रभू जगतारन हैं अरनाथ नमौं सुखकारन हैं
अब दीनदयाल दया धरिये, मम कर्म कलंक सबै हरिये
तुमरे गुन को कछु पार न है, अरनाथ नमौं सुखकारन हैं

जय श्रीअरदेवं, सुरकृतसेवं समताभेवं, दातारं
अरिकर्म विदारन, शिवसुखकारन, जयजिनवर जग त्रातारं ॥
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अर जिन के पदसारं, जो पूजै द्रव्य भाव सों प्राणी
सो पावै भवपारं, अजरामर मोक्षथान सुखखानी ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीमल्लिनाथ-पूजन

अपराजित तें आय नाथ मिथलापुर जाये
कुंभराय के नन्द, प्रभावति मात बताये ॥
कनक वरन तन तुंग, धनुष पच्चीस विराजे
सो प्रभु तिष्ठहु आय निकट मम ज्यों भ्रम भाजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सुर-सरिता-जल उज्ज्वल ले कर, मनिभृंगार भराई
जनम जरामृतु नाशन कारन, जजहूं चरन जिनराई ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

बावनचंदन कदली नंदन, कुंकुमसंग घिसायो
लेकर पूजौं चरनकमल प्रभु, भवआताप नसायो ॥
राग-दोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा
यातें शरन गही जगपतिजी, वेगि हरो भवपीरा ॥
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल शशिसम उज्ज्वल लीने, दीने पुंज सुहाई
नाचत गावत भगति करत ही, तुरित अखैपद पाई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पारिजात मंदार सुमन, संतान जनित महकाई
मार सुभट मद भंजनकारन, जजहुं तुम्हें शिरनाई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

फेनी गोझा मोदन मोदक, आदिक सद्य उपाई
सो लै छुधा निवारन कारन जजहुं चरन लवलाई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तिमिरमोह उरमंदिर मेरे, छाय रह्यो दुखदाई
तासु नाश कारन को दीपक, अद्भुत जोति जगाई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अगर तगर कृष्णागर चंदन चूरि सुगंध बनाई
अष्टकरम जारन को तुम ढिग, खेवत हौं जिनराई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल लौंग बदाम छुहारा, एला केला लाई
मोक्ष महाफल दाय जानिके, पूजैं मन हरखाई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल अरघ मिलाय गाय गुन, पूजौं भगति बढ़ाई
शिवपदराज हेत हे श्रीधर, शरन गहो मैं आई ॥राग
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

चैत की शुद्ध एकैं भली राजई, गर्भकल्यान कल्यान को छाजई
कुंभराजा प्रभावति माता तने, देवदेवी जजे शीश नाये घने ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लाप्रतिपदायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मार्गशीर्षे सुदी ग्यारसी राजई, जन्मकल्यान को द्यौस सो छाजई
इन्द्र नागेंद्र पूजें गिरिंद जिन्हें, मैं जजौं ध्याय के शीश नावौं तिन्हें ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष-शुक्लैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मार्गशीर्षे सुदीग्यारसीके दिना, राजको त्याग दीच्छा धरी है जिना
दान गोछीरको नन्दसेने दयो, मैं जजौं जासु के पंच अचरज भयो ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष-शुक्लैकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पौष की श्याम दूजी हने घातिया, केवलज्ञानसाम्राज्यलक्ष्मी लिया
धर्मचक्री भये सेव शक्री करें, मैं जजौं चर्न ज्यों कर्म वक्री टरें ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णाद्वितीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

फाल्गुनी सेत पांचैं अघाती हते, सिद्ध आलै बसै जाय सम्मेदतें
इन्द्रनागेंन्द्र कीन्ही क्रिया आयके, मैं जजौं शिव मही ध्यायके गायके ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लापंचम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

तुअ नमित सुरेशा, नर नागेशा, रजत नगेशा भगति भरा
भवभयहरनेशा, सुखभरनेशा, जै जै जै शिव-रमनिवरा

जय शुद्ध चिदातम देव एव, निरदोष सुगुन यह सहज टेव
जय भ्रमतम भंजन मारतंड, भवि भवदधि तारन को तरंड
जय गरभ जनम मंडित जिनेश, जय छायक समकित बुद्धभेस
चौथे किय सातों प्रकृतिछीन, चौ अनंतानु मिथ्यात तीन
सातंय किय तीनों आयु नास, फिर नवें अंश नवमें विलास
तिन माहिं प्रकृति छत्तीस चूर, या भाँति कियो तुम ज्ञानपूर
पहिले महं सोलह कहँ प्रजाल, निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचाल
हनि थानगृद्धि को सकल कुब्ब, नर तिर्यग्गति गत्यानुपुब्ब
इक बे ते चौ इन्द्रीय जात, थावर आतप उद्योत घात
सूच्छम साधारन एक चूर, पुनि दुतिय अंश वसु कर्यो दूर
चौ प्रत्याप्रत्याख्यान चार, तीजे सु नपुंसक वेद टार
चौथे तियवेद विनाशकीन, पांचें हास्यादिक छहों छीन
नर वेद छठें छय नियत धीर, सातयें संज्ज्वलन क्रोध चीर
आठवें संज्ज्वलन मान भान, नवमें माया संज्ज्वलन हान
इमि घात नवें दशमें पधार, संज्ज्वलन लोभ तित हू विदार

पुनि द्वादशके द्वय अंश माहिं, सोलह चकचूर कियो जिनाहिं
निद्रा प्रचला इक भाग माहिं, दुति अंश चतुर्दश नाश जाहिं
ज्ञानावरनी पन दरश चार, अरि अंतराय पांचो प्रहार
इमि छय त्रेशठ केवल उपाय, धरमोपदेश दीन्हों जिनाय
नव केवललब्धि विराजमान, जय तेरमगुन तिथि गुनअमान
गत चौदहमें द्वै भाग तत्र, क्षय कीन बहत्तर तेरहत्र
वेदनी असाता को विनाश, औदारि विक्रियाहार नाश
तैजस्य कारमानों मिलाय, तन पंच पंच बंधन विलाय
संघात पंच घाते महंत, त्रय अंगोपांग सहित भनंत
संठान संहनन छह छहेव, रसवरन पंच वसु फरस भेव
जुग गंध देवगति सहित पुव्व, पुनि अगुरुलघु उस्वास दुव्व
परउपघातक सुविहाय नाम, जुत असुभगमन प्रत्येक खाम
अपरज थिर अथिर अशुभ सुभेव, दुरभाग सुसुर दुस्सुर अभेव
अन आदर और अजस्य कित्त, निरमान नीचे गोतौ विचित्त
ये प्रथम बहत्तर दिय खपाय, तब दूजे में तेरह नशाय
पहले सातावेदनी जाय, नर आयु मनुषगति को नशाय
मानुष गत्यानु सु पूरवीय, पंचेंद्रिय जात प्रकृति विधिय
त्रसवादर पर्जापति सुभाग, आदरजुत उत्तम गोत पाग
जसकीरती तीरथप्रकृति जुक्त, ए तेरह छयकरि भये मुक्त
जय गुनअनंत अविकार धार, वरनत गनधर नहिं लहत पार
ताकों मैं वंदौं बार बार, मेरी आपत उद्धार धार
सम्मेदशैल सुरपति नमंत, तब मुकतथान अनुपम लसंत
'वृन्दावन' वंदत प्रीति-लाय, मम उर में तिष्ठहु हे जिनाय

जय जय जिनस्वामी, त्रिभुवननामी, मल्लि विमल कल्यानकरा
भवदंदविदारन आनंद कारन, भविकुमोद निशिईश वरा
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जजें हैं जो प्रानी दरब अरु भावादि विधि सों,
करैं नाना भाँति भगति थुति औ नौति सुधि सों
लहै शक्री चक्री सकल सुख सौभाग्य तिनको,
तथा मोक्ष जावे जजत जन जो मल्लिजिन को ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीमुनिसुव्रतनाथ-पूजन

प्रानत स्वर्ग विहाय लियो जिन, जन्म सु राजगृहीमहँ आई
श्री सुहमित्त पिता जिनके, गुनवान महापदमा जसु माई ॥
बीस धनू तनु श्याम छवी, कछु अंक हरी वर वंश बताई
सो मुनिसुव्रतनाथ प्रभू कहँ थापतु हौं इत प्रीत लगाई ॥
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

उज्ज्वल सुजल जिमि जस तिहांरो, कनक झारीमें भरौं
जरमरन जामन हरन कारन, धार तुम पदतर करौं ॥
शिवनाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन, विरद विशाल हैं ॥
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

भवतापघायक शान्तिदायक, मलय हरि घसि ढिग धरौं
गुनगाय शीस नमाय पूजत, विघनताप सबैं हरौं ॥शिव
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल अखण्डित दमक शशिसम, गमक जुत थारी भरौं
पद अखयदायक मुकति नायक, जानि पद पूजा करौं ॥शिव
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

बेला चमेली रायबेली, केतकी करना सरौं
जगजीत मनमथहरन लखि प्रभु, तुम निकट ढेरी करौं ॥शिव
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

पकवान विविध मनोज्ञ पावन, सरस मृदुगुन विस्तरौं
सो लेय तुम पदतर धरत ही छुधा डाइन को हरौं ॥शिव
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपक अमोलिक रतन मणिमय, तथा पावन घृत भरौं
सो तिमिर मोहविनाश आतम भास कारण ज्वै धरौं ॥शिव
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

करपूर चन्दन चूर भूर, सुगन्ध पावक में धरौं
तसु जरत जरत समस्त पातक, सार निज सुख को भरौं ॥शिव

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीफल अनार सु आम आदिक पक्कफल अति विस्तरौं
सो मोक्ष फल के हेत लेकर, तुम चरण आगे धरौं ॥शिव
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जलगंध आदि मिलाय आठों दरब अरघ सजौं वरौं
पूजौं चरन रज भगतिजुत, जातें जगत सागर तरौं ॥
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनिगुन माल हैं
तसु चरन आनन्दभरन तारन तरन, विरद विशाल हैं ॥
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
तिथि दोयज सावन श्याम भयो, गरभागम मंगल मोद थयो
हरिवृन्द सची पितु मातु जजें, हम पूजत ज्यौं अघ ओघ भजें ॥
ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णा द्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

बैसाख बदी दशमी वरनी, जनमे तिहिं द्योस त्रिलोकधनी
सुरमन्दिर ध्याय पुरन्दर ने, मुनिसुव्रतनाथ हमैं सरनै ॥
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णा दशम्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर ने गहियो, वैशाख बदी दशमी कहियो
निरुपाधि समाधि सुध्यावत हैं, हम पूजत भक्ति बढ़ावत हैं ॥
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णा दशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वर केवलज्ञान उद्योत किया, नवमी वैसाख वदी सुखिया
धनि मोहनिशाभनि मोखमगा, हम पूजि चहैं भवसिन्धु थगा ॥
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णानवम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वदि बारसि फागुन मोच्छ गये, तिहुं लोक शिरोमणी सिद्ध भये
सु अनन्त गुनाकर विघ्न हरी, हम पूजत हैं मनमोद भरी ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णा द्वादश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं

निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

मुनिगण नायक मुक्तिपति, सूक्त व्रताकर युक्त
भुक्ति मुक्ति दातार लखि, वन्दौं तन-मन युक्त

जय केवल भान अमान धरं, मुनि स्वच्छ सरोज विकास करं
भव संकट भंजन लायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
घनघात वनं दवदीप्त भनं, भविबोध त्रषातुर मेघघनं
नित मंगलवृन्द वधायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
गरभादिक मंगलसार धरे, जगजीवन के दुखदंद हरे
सब तत्व प्रकाशन नायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
शिवमारग मण्डन तत्व कह्यो, गुनसार जगत्रय शर्म लह्यो
रुज रागरू दोष मिटायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
समवस्रत में सुरनार सही, गुनगावत नावत भाल मही
अरु नाचत भक्ति बढ़ायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
पग नूपुर की धुनि होत भनं, झननं झननं झननं झननं
सुरलेत अनेक रमायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
घननं घननं घन घंट बजें, तननं तननं तनतान सजें
दृमदृम मिरदंग बजायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
छिन में लघु औ छिन थूल बनें, जुत हावविभाव विलासपने
मुखतें पुनि यों गुनगायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
धृगतां धृगतां पग पावत हैं, सननं सननं सु नचावत हैं
अति आनन्द को पुनि पायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
अपने भव को फल लेत सही, शुभ भावनि तें सब पाप दही
तित तैं सुख को सब पायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
इन आदि समाज अनेक तहां, कहि कौन सके जु विभेद यहाँ
धनि श्री जिनचन्द सुधायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
पुनि देश विहार कियो जिन ने, वृष अमृतवृष्टि कियो तुमने
हमको तुमरी शरनायक है, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
हम पै करुनाकरि देव अबै, शिवराज समाज सु देहु सबै
जिमि होहुं सुखाश्रम नायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
भवि वृन्दतनी विनती जु यही, मुझ देहु अभयपद राज सही
हम आनि गही शरनायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रत दायक हैं
घत्ताः- जय गुनगनधारी, शिवहितकारी, शुद्धबुद्ध चिद्रुप पती
परमानंददायक, दास सहायक, मुनिसुव्रत जयवंत जती

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीमुनिसुव्रत के चरन, जो पूजें अभिनन्द
सो सुरनर सुख भोगि के, पावें सहजानन्द ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीनमिनाथ-पूजन

श्री नमिनाथ जिनेन्द्र नमौं विजयारथ नन्दन
विख्यादेवी मातु सहज सब पाप निकन्दन ॥
अपराजित तजि जये मिथिलापुर वर आनन्दन
तिन्हें सु थापौं यहाँ त्रिधा करि के पदवन्दन ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

सुरनदी जल उज्ज्वल पावनं, कनक भृंग भरौं मन भावनं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदांबुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिमलय मिलि केशर सों घसौं, जगतनाथ भवातप को नसौं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

गुलक के सम सुन्दर तंदुलं, धरत पुञ्जसु भुंजत संकुलं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कमल केतुकी बेलि सुहावनी, समरसूल समस्त नशावनी
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

शशि सुधासम मोदक मोदनं, प्रबल दुष्ट छुधामद खोदनं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुचि घृताश्रित दीपक जोइया, असम मोह महातम खोइया
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अमरजिह्व विषें दशगंध को, दहत दाहत कर्म के बंधको
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

फलसुपक्क मनोहर पावने, सकल विघ्न समुह नशावने
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फलादि मिलाय मनोहरं, अरघ धारत ही भवभय हरं
जजतु हौं नमि के गुण गाय के, जुगपदाम्बुज प्रीति लगाय के ॥
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंच कल्याणक अर्घ्यावली
गरभागम मंगलचारा, जुग आश्विन श्याम उदारा
हरि हर्षि जजे पितुमाता, हम पूजें त्रिभुवन-त्राता ॥
ॐ ह्रीं आश्विनकृष्णा द्वितीयां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनमोत्सव श्याम असाढ़ा, दशमी दिन आनन्द बाढ़ा
हरि मन्दर पूजे जाई, हम पूजें मन वच काई ॥
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णा दशम्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तप दुद्धर श्रीधर धारा, दशमी कलि षाढ़ उदारा
निज आतम रस झर लायो, हम पूजत आनन्द पायो ॥
ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णा दशम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित मंगसिर ग्यारस चूरे, चव घाति भये गुण पूरे
समवस्रत केवलधारी, तुमको नित नौति हमारी ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वैसाख चतुर्दशि श्यामा, हनि शेष वरी शिव वामा
सम्मेद थकी भगवन्ता, हम पूजें सुगुन अनन्ता ॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णा चतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

आयु सहस दश वर्ष की, हेम वरन तनसार
धनुष पंचदश तुंग तनु, महिमा अपरम्पार

जय जय जय नमिनाथ कृपाला, अरिकुल गहन दहन दवज्वाला
जय जय धरम पयोधर धीरा, जय भव भंजन गुन गम्भीरा
जय जय परमानन्द गुनधारी, विश्व विलोकन जनहितकारी
अशरन शरन उदार जिनेशा, जय जय समवशरन आवेशा
जय जय केवल ज्ञान प्रकाशी, जय चतुरानन हनि भवफांसी
जय त्रिभुवनहित उद्यम वंता, जय जय जय जय नमि भगवंता
जै तुम सप्त तत्व दरशायो, तास सुनत भवि निज रस पायो
एक शुद्ध अनुभव निज भाखे, दो विधि राग दोष छै आखे
दो श्रेणी दो नय दो धर्मं, दो प्रमाण आगमगुन शर्मं
तीनलोक त्रयजोग तिकालं, सल्ल पल्ल त्रय वात वलायं
चार बन्ध संज्ञागति ध्यानं, आराधन निछेप चउ दानं
पंचलब्धि पंचभाव शिव भौनें, छहों दरब सम्यक अनुकौने
हानिवृद्धि तप समय समेता, सप्तभंग वानी के नेता
संयम समुद् घात भय सारा, आथ करम मद सिध गुन धारा
नवों लबधि नवतत्व प्रकाशे, नोकषाय हरि तूप हुलाशे
दशों बन्ध के मूल नशाये, यों इन आदि सकल दरशाये
फेर विहरि जगजन उद्धारे, जय जय ज्ञान दरश अविकारे
जय वीरज जय सूक्षमवन्ता, जय अवगाहन गुण वरनंता
जय जय अगुरुलघू निरबाधा, इन गुनजुत तुम शिवसुख साधा
ता कों कहत थके गनधारी, तौ को समरथ कहे प्रचारी
ता तैं मैं अब शरने आया, भवदुख मेटि देहु शिवराया
बार बार यह अरज हमारी, हे त्रिपुरारी हे शिवकारी ॥
पर-परणति को वेगि मिटावो , सहजानन्द स्वरुप भिटावो
'वृन्दावन' जांचत शिरनाई, तुम मम उर निवसो जिनराई
जब लों शिव नहिं पावौं सारा, तब लों यही मनोरथ म्हारा

जय जय नमिनाथं हो शिवसाथं, औ अनाथ के नाथ सदम
ता तें शिर नायौ, भगति बढ़ायो, चीह्न चिह्न शत पत्र पदम
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री नमिनाथ तने जुगल, चरन जजें जो जीव
सो सुर नर सुख भोगकर, होवें शिवतिय पीव ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीनेमिनाथ-पूजन

जैतिजै जैतिजै जैतिजै नेमकी, धर्म औतार दातार श्यौचैनकी
श्री शिवानंद भौफंद निकन्द, ध्यावें जिन्हें इन्द्र नागेन्द्र ओ मैनकी ॥
परमकल्यान के देनहारे तुम्हीं, देव हो एव तातें करौं एनकी
थापि हौं वार त्रै शुद्ध उच्चार के, शुद्धताधार भवपार कूं लेन की ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के ॥टेक ॥
गंग नदी कुश प्राशुक लीनो, कंचन भृंग भराय
मन वच तन तें धार देत ही, सकल कलंक नशाय ॥
दाता मोक्ष के, श्रीनेमिनाथ जिनराय ॥ दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचन्दनजुत कदलीनन्दन, कुंकुम संग घिसाय
विघन ताप नाशन के कारन, जजौं तिहांरे पाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यराशि तुमजस सम उज्ज्वल, तंदुल शुद्ध मंगाय
अखय सौख्य भोगन के कारन, पुंज धरौं गुन गाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

पुण्डरीक सुरद्रुम करनादिक, सुगम सुगंधित लाय
दर्प्पक मनमथ भंजनकारन, जजहुं चरन लवलाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवर बावर खाजे साजे, ताजे तुरत मँगाय
क्षुधा-वेदनी नाश करन को, जजहुँ चरन उमगाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

कनक दीप नवनीत पूरकर, उज्ज्वल जोति जगाय
तिमिर मोह नाशक तुम को लखि, जजहुँ चरन हुलसाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशविध गंध मँगाय मनोहर, गुंजत अलिगन आय
दशों बंध जारन के कारन, खेवौं तुम ढिंग लाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

सुरस वरन रसना मन भावन, पावन फल सु मंगाय
मोक्ष महाफल कारन पूजौं, हे जिनवर तुम पाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय
अष्टम छिति के राज कारन को, जजौं अंग वसु नाय ॥दाता
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
सित कातिक छट्ठ अमंदा, गरभागम आनन्दकन्दा
शचि सेय शिवापद आई, हम पूजत मनवचकाई ॥
ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लाषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित सावन छट्ठ अमन्दा, जनमे त्रिभुवन के चन्दा
पितु समुन्द्र महासुख पायो, हम पूजत विघन नशायो ॥
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तजि राजमती व्रत लीनो, सित सावन छट्ठ प्रवीनो
शिवनारि तबै हरषाई, हम पूजैं पद शिर नाई ॥
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित आश्विन एकम चूरे, चारों घाती अति कूरे
लहि केवल महिमा सारा, हम पूजैं अष्ट प्रकारा ॥
ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाप्रतिपदायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं

निर्वपामीति स्वाहा

सितषाढ़ सप्तमी चूरे, चारों अघातिया कूरे
शिव ऊर्जयन्त तें पाई, हम पूजैं ध्यान लगाई ॥
ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
श्याम छवी तनु चाप दश, उन्नत गुननिधिधाम
शंख चिह्न पद में निखरि, पुनि-पुनि करौं प्रनाम

जै जै जै नेमि जिनिंद चन्द, पितु समुद देन आनन्दकन्द
शिवमात कुमुदमन मोददाय, भविवृन्द चकोर सुखी कराय
जयदेव अपूरव मारतंड, तुम कीन ब्रह्मसुत सहस खंड
शिवतिय मुखजलज विकाशनेश, नहिं रह्यो सृष्टि में तम अशेष
भवभीत कोक कीनों अशोक, शिवमग दरशायो शर्म थोक
जै जै जै जै तुम गुनगँभीर, तुम आगम निपुन पुनीत धीर
तुम केवल जोति विराजमान, जै जै जै जै करुना निधान
तुम समवसरन में तत्वभेद, दरशायो जा तें नशत खेद
तित तुमको हरि आनंदधार, पूजत भगतीजुत बहु प्रकार
पुनि गद्यपद्यमय सुजस गाय, जै बल अनंत गुनवंतराय
जय शिवशंकर ब्रह्मा महेश, जय बुद्ध विधाता विष्णुवेष
जय कुमतिमतंगन को मृगेंद, जय मदनध्वांत को रवि जिनेंद्र
जय कृपासिंधु अविरुद्ध बुद्ध, जय रिद्धिसिद्धि दाता प्रबुद्ध
जय जगजन मनरंजन महान, जय भवसागर महं सुष्टुयान
तुव भगति करें ते धन्य जीव, ते पावैं दिव शिवपद सदीव
तुमरो गुनदेव विविध प्रकार, गावत नित किन्नर की जु नार
वर भगति माहिं लवलीन होय, नाचें ताथेई थेई थेई बहोय
तुम करुणासागर सृष्टिपाल, अब मों को वेगि करो निहाल
मैं दुख अनंत वसुकरमजोग, भोगे सदीव नहिं और रोग
तुम को जग में जान्यो दयाल, हो वीतराग गुन रतन माल
ता तें शरना अब गही आय, प्रभु करो वेगि मेरी सहाय
यह विघनकरम मम खंड खंड, मनवांछित कारज मंडमंड
संसार कष्ट चकचूर चूर, सहजानन्द मम उर पूर पूर
निजपर प्रकाशबुधि देई, तजि के विलंब सुधि लेइ लेई
हम याचतु हैं बार बार, भवसागर तें मो तार तार

नहिं सह्यो जात यह जगत दुःख, तातैं विनवौं हे सुगुनमुक्ख

श्रीनेमिकुमारं जितमदमारं, शीलागारं सुखकारं
भवभयहरतारं, शिवकरतारं, दातारं धर्माधारं
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सुख धन जस सिद्धि पुत्र पौत्रादि वृद्धी
सकल मनसि सिद्धि होतु है ताहि रिद्धि ॥
जजत हरषधारी नेमि को जो अगारी
अनुक्रम अरिजारी सो वरे मोक्षनारी ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीपार्श्वनाथ-पूजन-बख्तावरजी

वर स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा सुत भये
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये ॥
नव हाथ उन्नत तन विराजै, उरग लच्छन पद लसैं
थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठो करम मेरे सब नसैं ॥

अन्वयार्थ : पार्श्वनाथ जिनेश्वर (भगवान्) [**वर**] श्रेष्ठ प्राणत स्वर्ग को [**विहाय**] छोड़कर माता वामा देवी और अश्वसेन के [**सूत**] पुत्र हुए । जिनके चरणों की वंदना [**सुर**] देवताओं ने करी थी । उनका [**तन**] शरीर नौ हाथ [**उन्नत**] ऊँचा [**विराजै**] सुशोभित था । उनके [**पद**] पैर में [**उरग**] सर्प का [**लच्छन**] चिन्ह [**लसैं**] सुशोभित था । हे जिनेन्द्र भगवान् में आपकी यहाँ स्थापना करता हूँ आप यहाँ आकर [**तिष्ठो**] विराजमान होइये (जिससे मैं आपकी पूजा करू और) मेरे सब कर्म नष्ट हो जायें ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

क्षीरसोम के समान अम्बुसार लाइये,
हेमपात्र धारि के सु आपको चढ़ाइये ॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करुं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

अन्वयार्थ : [**क्षीर**] दूध के अथवा [**सोम**] चंद्रमा के समान सफ़ेद [**सार**] श्रेष्ठ [**अम्बु**] जल को [**हेम**] स्वर्ण [**पात्र**] कलश में [**धारि**] लेकर आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

चंदनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये,
आप चरण चर्च मोह-ताप को हनीजिये ॥ पार्श्व

अन्वयार्थ : मैं चंदन, केशर आदि सुगंधित वस्तुऍं लेकर आपके चरणो की पूजा करता हूँ, आप मोह (राग द्वेष) की [**ताप**] अग्नि को [**हनीजिये**] नष्ट कर दीजिए ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

फेन, चंद्र के समान अक्षतान् लाइके,
चर्न के समीप सार पुंज को रचाइके ॥ पार्श्व

अन्वयार्थ : दूध के **[फेन]** झाग या चंद्रमा के समान श्वेत स्वच्छ चावलो के श्रेष्ठ पुंजों को बनाकर । आपके **[चर्न]** चरणों के समीप हे पार्श्वनाथ भगवान्, मैं आपकी सदा सेवा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइके,
धार चर्न के समीप काम को नशाइके ॥ पार्श्व

अन्वयार्थ : केवड़ा, गुलाब और केतकी के फूलों को चुन-चुन कर लाकर आपके चरणों के समीप, मेरे काम बाण को नष्ट करने के लिए रख रहा हूँ, आप उसे नष्ट कर दीजिये ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

घेवरादि बावरादि मिष्ट सद्य में सने,
आप चर्न चर्चतें क्षुधादि रोग को हने ॥पार्श्व

अन्वयार्थ : घेवर, बावर/ईमरती (मिठाई) आदि **[सद्य]** घी में **[सने]** बना कर **[मिष्ट]** चाशनी में डालकर आपके चरणों की पूजा करने से क्षुधा आदि रोग नष्ट हो जायेंगे ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

लाय रत्न दीप को सनेह पूर के भरुं,
वातिका कपूर बारि मोह ध्वांत को हरुं ॥पार्श्व

अन्वयार्थ : मोह रुपी **[ध्वान्त]** अन्धकार को क्षय करने के लिए,रत्न के दीपक को **[सनेह पूर]** घी से पूरा भरकर, कपूर की बत्ती से जला कर, आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

धूप गंध लेय के सुअग्निसंग जारिये,
तास धूप के सुसंग अष्टकर्म बारिये ॥पार्श्व

अन्वयार्थ : सुगन्धित धुप लेकर अग्नि के साथ जलाता हूँ **[तासु]** उस धुप के संग अष्ट कर्मों को **[बारिये]** नष्ट करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

खारिकादि चिरभटादि रत्न थाल में भरुं,
हर्ष धारिके जजूं सुमोक्ष सौख्य को वरुं ॥पार्श्व

अन्वयार्थ : **[खारिक]** छुआरा आदि, **[चिरभटा]** ककड़ी आदि को रत्न के थाल में भरकर लाया हूँ । आपकी पूजा प्रफुल्लित होकर हर्षो-उल्लास पूर्वक मोक्ष सुख के वरण (प्राप्ति) के लिए करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

नीर गंध अक्षतान पुष्प चारु लीजिये
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तैं जजीजिये ॥पार्श्व

अन्वयार्थ : जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धुप और फल आदि का अर्घ बनाकर मैं आपकी **[जजीजिये]** पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली

शुभप्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये
वैशाख तनी दुतकारी, हम पूजें विघ्न निवारी ॥

अन्वयार्थ : आप शुभ प्राणत स्वर्ग को **[विहाय]** छोड़कर वामा माता के **[उर]** पेट में वैशाख **[कारी]** कृष्ण **[दुति]** द्वितिया को आये थे । हम विघ्नों के निवारण के लिए आप (भगवान् पार्श्वनाथ जी) की पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णाद्वितीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता
श्यामा तन अद्भुत राजै, रवि कोटिक तेज सु लाजै ॥

अन्वयार्थ : तीनों लोक के सुख-दाता, त्रिलोक-नाथ का जन्म प्रसिद्द पौष कृष्ण एकादशि को हुआ था । आपका काले वर्ण का शरीर अत्यंत सुशोभित हो रहा था, उसका प्रकाश करोड़ों सूर्य के प्रकाश को भी लज्जित कर रहा था ।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णा एकादश्यांजन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कलि पौष एकादशि आई, तब बारह भावन भाई
अपने कर लौंच सु कीना, हम पूजैं चरन जजीना ॥

अन्वयार्थ : पौष कृष्ण एकादशि को आपने १२ भावनाओं को भाया । अपने हाथों से केश-लौंच कर दिक्षा धारण करी, हम आपके पूज्य चरणों की **[जजीना]** अर्चना करते हैं ।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णा एकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवल ज्ञान उपाई
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना ॥

अन्वयार्थ : चैत कृष्ण चतुर्थी को भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । तब भगवान् ने उपदेश दिया जिससे भव्य जीवों को सुख की प्राप्ति हुई ।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

सित सातैं सावन आई, शिवनारि वरी जिनराई
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजैं मोक्ष कल्याना ॥

अन्वयार्थ : श्रावण **[सित]** शुक्ल सप्तमी को मोक्ष रुपी लक्ष्मी/स्त्री का वरण किया अर्थात मोक्ष प्राप्त किया । **[हरि]** इंद्र ने सम्मेद शिखर जी पर आकर आपके मोक्ष स्थल पर वज्र की **[सूची]** कलम से **[माना]** आपके चरण अंकित किये । हम आपके मोक्ष कल्याणक की पूजा करते हैं ।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

पारसनाथ जिनेंद्रतने वच, पौन भखी जरते सुन पाये
कर्यो सरधान लह्यो पद आन भये पद्मावति शेष कहाये
नाम प्रताप टरैं संताप, सुभव्यन को शिवशर्म दिखाये
हे अश्वसेन के नंद भले, गुण गावत हैं तुमरे हर्षाये ॥

अन्वयार्थ : [**जरते**] जलते हुए [**पौनभखी**] (हवा खाने वाले) सर्प/सर्पिणी ने पारसनाथ जिनेंद्र [**तने**] के, वचन सुनकर उन पर श्रद्धां करने से पद्मावती और धरणेन्द्र में जन्म लिया । उनके नाम के प्रताप से दुःख दूर हो जाते हैं, भव्य जीवों को [**शर्म**] मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है । हे अश्वसेन के पुत्र हम आपके गुणों का गान हर्षपूर्वक करते हैं ।

केकी-कंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ
लक्षण उरग निहार पग, वंदौं पारसनाथ

अन्वयार्थ : पार्श्वनाथ भगवान् की छवि अर्थात वर्ण [**केकी**] मोर के [**कंठ**] गले के समान नीला/काला, [**वपु**] शरीर की [**तंग**] ऊंचाई [**नव**] नौ हाथ थी,मैं उनके चरणों में [**उरग**] सर्प का चिन्ह देखकर उनकी पूजा करता हूँ ।

रची नगरी छह मास अगार, बने चहुं गोपुर शोभ अपार
सु कोट तनी रचना छबि देत, कंगूरन पें लहकें बहुकेत

अन्वयार्थ : भगवान् के गर्भ में आने से छह माह [**अगार**] पूर्व नगरी बनाई जो कि चारों दिशाओं में [**गोपुर**] मुख्य द्वारों से अत्यंत सुशोभित थी । उसके चारो ओर बहुत सुंदर [**कोट**] बाउंड्री बनायी थी।ऊपर [**कंगूरन पें लहकें बहुकेत**] बहुत सारी झुमरिया [**लहकें**] लहरा रही थी ।

बनारस की रचना जु अपार, करी बहु भांति धनेश तैयार
तहां अश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार

अन्वयार्थ : विविध प्रकार से कुबेर ने अत्यंत सुन्दर बनारस नगरी बनाई थी । वहाँ अत्यंत उदार राजा अश्वसेन अपनी पटरानी वामा देवी के साथ सुखों से भरपूर जीवन आनंद पूर्वक व्यतीत कर रहे थे ।

तज्यो तुम प्रानत नाम विमान, भये तिनके वर नंदन आन
तबै सुर इंद्र नियोगनि आय, गिरिंद करी विधि न्हौन सुजाय

अन्वयार्थ : हे भगवान् आप प्राणत स्वर्ग को [**तज्यो**] त्याग कर उनके(माता वामा देवी और अश्वसेन राजा) [**वर नंदन**] श्रेष्ठ पुत्र हुए। तभी देव और इंद्र [**नियोगनि**] नियोग पूजा करने के लिए आये और उनको (जिनेन्द्र भगवान् बालक) [**गिरिंद**] समेरू पर्वत पर ले जाकर नहलाया / उनका जन्माभिषेक किया ।

पिता-घर सौंपि गये निजधाम, कुबेर करै वसु जाम सुकाम
बढ़े जिन दोज-मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन

अन्वयार्थ : [**निर्जर**] बालक तीर्थंकर को उनके पिता के घर छोड़कर वे अपने घर चले गए । कुबेर उनकी [**वसु**] आठो [**जाम**] पहर सेवा करते थे । वे दूज के [**मयंक**] चंद्रमा के समान बढ़ने लगे। बहुत से देवों ने बालक बनकर बालक तीर्थंकर के साथ क्रीड़ा कर उनके साथ रमे रहे ।

भए जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो ममआस

अन्वयार्थ : जब पार्श्वनाथ कुमार आठ वर्ष के हुए तब उन्होंने महान सुखदायक अणुव्रतों को धारण किया । पिताजी ने अपनी आशा की पूर्ती करने के लिए उनसे विवाह का [**अरदास**] निवेदन किया ।

करी तब नाहिं रहे जग चंद, किये तुम काम कषाय जुमंद
चढ़े गजराज कुमारन संग, सुदेखत गंगतनी सुतरंग

अन्वयार्थ : पिता के निवेदन पर पार्श्वनाथ ने विवाह के लिए मना कर संसार में चंद्रमा के समान सुशोभित रहते हुए काम और कषायों को अधिक मंद किया । हाथी पर चढ़कर अन्य कुमारों के साथ जाते हुए गंगा नदी की तरंगों को देख कर आनंदित हो रहे थे ।

लख्यो इक रंक कहै तप घोर, चहूंदिशि अगनि बलै अति जोर
कहै जिननाथ अरे सुन भ्रात, करै बहु जीवन की मत घात

अन्वयार्थ : उन्होंने एक **[रंक]** सन्यासी को चारो तरफ लकड़ी **[बलै]** जलाकर घोर तप करते हुए **[लख्यो]** देखा । जिनेन्द्र भगवान् ने कहा कि हे भाई सुनो इन्हे जलाकर तुम जीवों का घात मत करो । (तुम्हारे लकड़ी जलाने से सर्प और सर्पिणी का युगल जिन्दा जल रहा है, यह उन्होंने अवधि ज्ञान से जान लिया था)

भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव ब्रह्मरिषीसुर आय

अन्वयार्थ : तब वह सन्यासी **[कोप]** क्रोधित होकर कहने लगा जीव कहाँ है । तब उन्होंने उसे जलते हुए जीवित सर्प को दिखाया । यह देखकर वे १२ भावनाओं को भाने लगे और उन्हें वैराग्य वृद्धि हुई, **[ब्रह्मरिषीसुर]** लौकांतिक देव ने आकर उन्हें नमस्कार कर के वैराग्य की अनुमोदना करी ।

तबहिं सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज कंध मनोग
कियो वन माहिं निवास जिनंद, धरे व्रत चारित आनन्दकंद

अन्वयार्थ : तभी चारों प्रकार के देवों ने अपने नियोग के अनुसार **[मनोग]** सुंदर **[शिविका]** पालकी को अपने कंधो पर रख कर ले गए। वन में जिनेन्द्र भगवान् ने रह कर आनंद के समूह को प्रदान करने वाले व्रत और चरित्र अर्थात निर्ग्रंथ मुनि दीक्षा धारण करी ।

गहे तहँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तने जु अवास
दियो पयदान महासुखकार, भई पन वृष्टि तहां तिहिं बार

अन्वयार्थ : उपवास के बाद धनदत्त सेठ के घर गये जहाँ उन्होंने भगवान् को महा सुखकारी पयदान / आहार दान दिया जिस के फलस्वरूप उनके आंगन में तीन बार देवों ने रत्नों की वृष्टि करी ।

गये तब कानन माहिं दयाल, धर्यो तुम योग सबहिं अघ टाल
तबै वह धूम सुकेतु अयान, भयो कमठाचर को सुर आन

अन्वयार्थ : आपने **[कानन]** वन में जाकर समस्त **[अघ]** पापों को दूर कर योग धारण किया । तब वह सन्यासी कमठ का जीव अचानक आया ।

करै नभ गौन लखे तुम धीर, जु पूरब बैर विचार गहीर
कियो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवन झकोर

अन्वयार्थ : वह आकाश में गमन कर रहा था उसने आपको देखा और पूर्व बैर को विचार करके भयानक उपसर्ग कर, घोर आंधी चलायी, तीक्ष्ण हवा चलायी ।

रह्यो दशहूं दिश में तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़ै जल मूसलधार अथाय

अन्वयार्थ : जिससे दसों दिशाओं में अन्धकार हो गया, चारों ओर उसने अग्नि लगाई, **[सुरुण्डन]** धड़ के बिना **[मुंड]** सिर दिखाए और मूसलाधार जल की वर्षा करी ।

तबै पद्मावति-कंत धनिंद, नये जुग आय जहां जिनचंद
भग्यो तब रंक सुदेखत हाल, लह्यो तब केवलज्ञान विशाल

अन्वयार्थ : तब पद्मावति और उनके **[कन्ठ]** पति धरणेन्द्र दोनों ने आकर **[नये]** नमस्कार किया, तब वह रंक-कमठ का जीव वहाँ से भाग गया और भगवान् को केवल ज्ञान हुआ ।

दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोध समेद पधार
सुवर्णभद्र जहाँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसुरिद्ध

अन्वयार्थ : भगवान् ने दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को बोध कर सम्मेद शिखर जी पहुंच कर वहां की प्रसिद्द सुवर्ण-भद्र कूट से मोक्ष-लक्ष्मी का वरण किया अर्थात मोक्ष पधारे ।

जजूं तुम चरन दोउ कर जोर, प्रभू लखिये अबही मम ओर
कहै 'बखतावर' रत्न बनाय, जिनेश हमें भव पार लगाय

अन्वयार्थ : मैं आपके दोनों चरणों की हाथ जोड़कर वंदना करता हूँ प्रभु अब मेरी ओर देखिये । बख्तावर कवि कहते है जिनेन्द्र भगवान् हमको पार लगा दीजिये ।

घत्ताः- जय पारस देवं, सुरकृत सेवं, वंदत चर्न सुनागपती
करुणा के धारी पर उपकारी, शिवसुखकारी कर्महती ॥

अन्वयार्थ : पार्श्वनाथ भगवान् की जय हो । देवों के द्वारा जिनकी वंदना करी जाती है, हम उन चरणों की वंदना करते हैं, वे करुणा धारी हैं, अन्य जीवों का उपकार करने वाले हैं, मोक्ष सुख को प्रदान करने वाले और कर्मों को नष्ट करने वाले हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जो पूजै मन लाय भव्य पारस प्रभु नितही
ताके दुख सब जाय भीति व्यापै नहि कित ही ॥
सुख संपति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे
अनुक्रमसों शिव लहै, 'रत्न' इमि कहै पुकारे ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अन्वयार्थ : जो भव्य नित्य मन लगाकर पार्श्वनाथ भगवान् को पूजते है उसके सब दुःख नष्ट हो जाते हैं और उसे किसी भी प्रकार का डर नहीं सताता । उसके सुख, सम्पत्ति, पुत्र, मित्र खूब होते है । और क्रम से वह मोक्ष को प्राप्त करता है ।

श्रीमहावीर-पूजन

श्रीमत वीर हरें भवपीर, भरें सुखसीर अनाकुलताई
केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरि पंकति मौलि सुआई ॥
मैं तुमको इत थापत हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरषाई
हे करुणा-धन-धारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई ॥

अन्वयार्थ : **[श्रीमत]** श्रीमान (अंतरंग बहिरंग विभूतियों से युक्त) भगवान् महावीर **[भव]** संसार के **[पीर]** दुखों को **[हरे]** हरने वाले है, निराकुल सुख के **[सीर]** स्रोत है । उनका **[केहरि-अंक]** चिन्ह (पहिचान) है कि उन्होंने **[अरि]** शत्रुओं (कर्मों) को **[करदंक]** नष्ट कर दिया है । **[हरि पंकति]** इन्द्रों की कतार अपने **[मौलि]** मुकटों को आप के **[सुआई]** चरणों में झुका कर **[नमे]** नमस्कार करते हैं । हे करुणा रुपी धन के धारक भगवन् । मैं आप की भक्ति पूर्वक **[हिये]** चित्त में हर्षित होकर यहाँ स्थापना करता हूँ । आप यहाँ शीघ्र आइये, आइये, **[तिष्ठ]** विराजमान होइये ।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचन भृंग भरौं
प्रभु वेगि हरो भवपीर, यातें धार करौं ॥

श्री वीर महा-अतिवीर, सन्मति नायक हो
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥

अन्वयार्थ : [**क्षीरोदधि**] क्षीरसागर का [**शुचि**] पवित्र [**नीर**] जल के [**सम**] समान जल [**कंचन**] सोने की [**भृंग**] झारी में [**भरौं**] भरकर लाया हूँ । हे प्रभु मेरी [**भवपीर**] सांसारिक दुखों के [**वेग**] शीघ्र निवारण [**यातें**] के लिए, यह जल [**धार**] धारा आपके समक्ष [**करौं**] प्रवाहित कर रहा हूँ । आप श्री वीर, महावीर, [**सन्मति**] सुबुद्धि के नायक हैं, वर्धमान! आप की जय हो! आप अत्यंत गुणवान, धैर्यवान और [**सन्मतिदायक**] अच्छी बुद्धि के दाता हो ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मलयागिर चन्दनसार, केसर संग घसौं
प्रभु भवआताप निवार, पूजत हिय हुलसौं ॥श्रीवीर

अन्वयार्थ : मैं मलयागिरि का [**सार**] श्रेष्ठ चन्दन केसर के साथ घिसकर लाया हूँ । प्रभु [**भव**] संसार के [**आताप**] दुखों को [**निवार**] नष्ट कर दीजिये । आपकी पूजा करते हुए मेरा हृदय [**हुलसौं**] प्रसन्न/आनंदित हो रहा है ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

तंदुल सित-शशिसम शुद्ध, लीनो थार भरी
तसु पुंज धरौं अविरुद्ध, पावौं शिवनगरी ॥श्रीवीर

अन्वयार्थ : [**शशिसम**] चंद्रमा के समान [**सित**] सफ़ेद [**तंदुल**] चावल थाली में भरकर लाया हूँ । मोक्ष नगरी की प्राप्ति के लिए उनके पुँज आपके समक्ष अर्पित करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

सुरतरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे
सो मनमथ भंजन हेत, पूजौं पद थारे ॥श्रीवीर

अन्वयार्थ : [**सुरतरु**] कल्पवृक्षों के [**सुमन**] पुष्पों सहित [**सुमन**] भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्पों से मन से प्रफुल्लित हो कर [**मनमथ**] कामदेव को [**भंजन**] नष्ट करने के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥श्रीवीर

अन्वयार्थ : रस से [**रज्जत**] भरे/डूबे हुए, [**सद्य**] ताज़े [**सज्जत**] बनाये हुए नैवेद्य [**मज्जत**] मंजे हुए [**थार**] थाल में भरकर लाया हूँ । [**अद्य**] आज उन नैवेद्य से [**रज्जत**] आनंदित होकर आपके चरणों में अर्पित करता हूँ जिसके [**भज्जत**] सेवन से भूख रुपी [**अरी**] शत्रु दूर हो जाए ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा

तमखंडित मंडित नेह, दीपक जोवत हौं
तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हौं ॥श्रीवीर

अन्वयार्थ : आप [**सुखगेह**] सुख के भण्डार है । मैं [**तम**] अंधकार को [**खंडित**] नष्ट करने वाले, [**नेह**] घी / चिकनाई से [**मंडित**] भरे / सुशोभित दीपक को [**जोवत**] जलाकर कर [**भ्रमतम**] मोह रुपी अन्धकार को [**खोवत**] नष्ट करने के लिए उसे आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगंध करा
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥श्रीवीर

अन्वयार्थ : मैं हरिचंदन / श्रेष्ठ चंदन, अगर, कपूर का सुगन्धित चूर्ण आठों कर्म नष्ट करने के लिए आपके चरणों के समक्ष भली प्रकार खेता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

रितु फल कल-वर्जित लाय, कंचन थाल भरौं
शिव फलहित हे जिनराय, तुम ढिग भेंट धरौं ॥श्रीवीर

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र भगवान् ! [**रितुफल**] ऋतू के, [**कल**] शरीर/जीव [**वर्जित**] रहित, फल [**कंचन**] स्वर्ण के थाल में भरकर मोक्षफल की प्राप्ति के लिए आपके [**ढिग**] समक्ष अर्पित कर रहा हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरौं
गुण गाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरौं ॥श्रीवीर

अन्वयार्थ : जल से फल तक [**वसु**] अष्ट द्रव्यों को [**हिम**] सोने के थाल में [**सजि**] सजाकर, शरीर और मन में अत्यन्त [**मोद**] प्रसन्नता धारण कर के आपके गुणों को गा रहा हूँ, मुझे संसार सागर से पार लगा दीजिये, आपकी पूजा करने से पापों का नाश हो जाय (ऐसा वरदान दीजिये) ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्यावली
मोहि राखो हो शरणा, श्री वर्द्धमान जिनरायजी ॥टेक॥
गरभ साढ़ सित छट्ट लियो थित, त्रिशला उर अघ हरना
सुर सुरपति तित सेव करी नित, मैं पूजूं भवतरना ॥
मोहि राखो हो शरणा, श्री वर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो हो शरणा

अन्वयार्थ : आप [**साढ**] आषाढ़ [**सित**] शुक्ला छठ तिथि को गर्भ में आये थे, त्रिशला माता के उदर में पधारे थे, आपका गर्भकल्याणक [**अघ**] पापों को हरने वाला था ! [**सुर**] देवता, [**सुरपति**] इंद्र [**तित**] आपकी [**नित**] नित्य [**सेव**] सेवा करते थे ! मैं आपको [**भवतरना**] संसार को पार करने के लिए पूजता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लाषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन वरना
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजौं भवहरना ॥मोहि॥

अन्वयार्थ : आपका जन्म चैत [**सित**] शुक्ल तेरस को कुन्डलपुर में [**कन वरना**] स्वर्ण शरीर के वर्ण सहित हुआ था । [**सुरगिरि**] समेरु पर्वत पर [**सुरगुरु**] वृहस्पति इंद्र आदि ने आपकी पूजा रचाई थी । मैं भी आपके जन्म-कल्याणक की पूजा, संसार के जन्म मरण के संकट को नष्ट करने के लिए करता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मंगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना
नृपति कूल घर पारन कीनों, मैं पूजौं तुम चरना ॥मोहि॥

अन्वयार्थ : मंगसिर [**असित**] कृष्णा की मनोहर दशमी को निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण करी थी । कूल नामक राजा के घर आपने [**पारन**] पारणा करी । (देवों ने तो पञ्चाशचर्य कर वंदना कर ली थी) मैं (आपके आहार को समरण करके) आपके चरणों की पूजा करता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में रख लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णादशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुक्ल दशैं वैशाख दिवस अरि, घात चतुक क्षय करना
केवल लहि भवि भवसर तारे, जजौं चरन सुख भरना ॥मोहि॥

अन्वयार्थ : वैसाख शुक्ल दशमी को आपने चार घातिया कर्मों का क्षय कर के केवल ज्ञान प्राप्त करके [**भवि**] भव्य जीवों को [**भवसर**] संसार सागर से [**तारे**] पार किया । मैं आपके सुख [**भरना**] प्रदान करने वाले चरणों की पूजा करता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में रख लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लादशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक श्याम अमावस शिव तिय, पावापुर तैं वरना
गणफनिवृन्द जजें तित बहुविध, मैं पूजौं भयहरना ॥मोहि॥

अन्वयार्थ : कार्तिक [**श्याम**] वदि / कृष्ण अमावस्या को पावापुर से मोक्ष मोक्ष [**वरना**] प्राप्त किया । [**गन**] गणधर, [**फनि**] धरणेन्द्र आदि देवों के [**वृन्द**] समूह ने [**तित**] वहाँ [**बहुविध**] अनेक प्रकार से [**जजे**] पूजा करी, मैं भी भगवन संसार का भय नष्ट करने के लिए आपकी पूजा करता हूँ । भगवान् आप मुझे अपनी शरण में रख लीजिये । हे भगवन वर्धमान जी मुझे अपनी शरण में रखिये ।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाअमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

गणधर, अशनिधर, चक्रधर, हलधर, गदाधर, वरवदा
अरु चापधर, विद्यासुधर तिरशूलधर सेवहिं सदा ॥
दुखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं
सुकुमाल गुण मनिमाल उन्नत भालकी जयमला हैं ॥

अन्वयार्थ : गणधर, [**असनिधर**] वज्रधारक/इंद्र, [**चक्रधर**] चक्रवर्ती, [**हलधर**] हलधारक/बलदेव/बलभद्र, गदाधारक, [**वदा**] वक्ताओं में [**वर**] श्रेष्ठ, [**चापधर**] धनुष धारक, [**विद्यासुधर**] विद्याधारी, [**तिरशूलधर**] त्रिशूलधारी सैदव आपकी सेवा/करते है । आप दुखों को हरने वाले है,आनंद प्रदान करने वाले है, आप [**तारन**] स्वयं तरने और [**तरन**] अन्यों को तारने वाले है,आपके चरण बहुत [**रसाल**] सुंदर है । ऐसे सुकुमाल भगवान् वर्धमान जिनका [**भाल**] मस्तक गुण रुपी [**मनिमाल**] मणियों की माला से [**उन्नत**] ऊँचा हो रहा है,के गुणानुवाद की जयमाला कही जा रही है ।

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन चंदवरं
भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित सपंदन नयन धरं ॥

अन्वयार्थ : हे माता [**त्रिशलानंदन**] त्रिशला के पुत्र ! [**हरिकृतवंदन**] इन्द्रों द्वारा वंदित [**जगदानंदन**] जगत को आनंद प्रदान करने के लिए [**चंदवरं**] श्रेष्ठ चंद्रमा के समान है (चंद्रमा की चांदनी अत्यंत शीतलता प्रदान करती है), संसार के [**ताप**] दुखों को [**निकंदन**] नष्ट करने वाले है, [**तनमन**] शरीर और मन को [**नन्दन**] आनंद प्रदान करने वाले है, नेत्रों की पलके [**सपंदन**] स्पंदन रहित है अर्थात झपकती नहीं है, स्थिर नेत्रों के [**धरं**] धारक है ।

जय केवलभानु-कला-सदनं, भवि-कोक-विकाशन कंदवनं
जगजीत महारिपु मोहहरं, रजज्ञान-दृगावर चूर करं

अन्वयार्थ : आपकी जय हो ! आप [**केवल**] केवल-ज्ञान रुपी [**भानु**] सूर्य की [**कला**] किरणों के [**सदनं**] स्थान है, [**भवि**] भव्य जीव रुपी [**कोक**] चकवों, (रात्रि होते ही चकवे चकवी का वियोग हो जाता है सूर्य निकलते ही प्रात; उनका संयोग हो जाता है) और [**कंदवनं**] कमलों के वन को [**विकाशन**] प्रफ्फुलित करने के लिए सूर्य के समान हो, [**जगजीत**]संसार को जीतने वाले, [**महारिपु**] महान क्षत्रु [**मोहहरं**] मोहनीय-कर्म को हरने वाले है, [**रज**] धूल के समान ज्ञानावरण, [**दृगांवर**] दर्शनावरण और अंतराय कर्म को [**चूर**] नष्ट करने वाले है ।

गर्भादिक मंगल मंडित हो, दुखदारिद को नित खंडित हो
जग माहिं तुम्हीं सतपंडित हो, तुम ही भवभाव-विहंडित हो

अन्वयार्थ : गर्भादिक पांच [**मंगल**] कल्याणकों से आप [**मंडित**] सुशोभित है, दुखों और दरिद्रता को [**नित**] सदा [**खंडित**] नाशक है,जगत [**माहि**] में आप ही [**सतपंडित**] सच्चे विद्वान् है, आप ही संसारीं भावों (राग,द्वेष,मिथ्यात्व आदि) के [**विहंडित**] नाशक हैं ।

हरिवंश सरोजन को रवि हो, बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो
लहि केवलधर्म प्रकाश कियो, अबलों सोई मारग राजतियो

अन्वयार्थ : [**हरिवंश**] इन्द्रों के समूह रूपी [**सरोजन**] कमलों को प्रकाशित करने के लिए आप [**रवि**] सूर्य के समान है (आपको देखकर इन्द्रों का समूह प्रसन्न हो जाता है) । आप ही [**बलवंत**] बलवान, [**महंत**] महान और [**कवि**] सर्वज्ञ है!केवलज्ञान [**लहि**] प्राप्त कर आपने धर्म का प्रकाश किया था । [**अबलो**] आज तक वही मार्ग [**राजतियो**] सुशोभित हो रहा है ।

पुनि आप तने गुण माहिं सही, सुरमग्न रहैं जितने सबही
तिनकी वनिता गुनगावत हैं, लय-ताननिसों मनभावत हैं

अन्वयार्थ : [**पुनि**] और आपके गुणों में अच्छी प्रकार सभी [**सुर मग्न**] देवता भक्ति भाव से मग्न रहते है । उनकी [**वनिता**] देवियाँ तरह तरह से आपके गुणों का गान करती है। भिन्न भिन्न लयों से अपने [**माननिसों**] मन को [**मनभावत**] प्रसन्न करती है ।

पुनि नाचत रंग उमंग-भरी, तुअ भक्ति विषै पग एम धरी
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहां तननं तननं

अन्वयार्थ : और वे देवांगनाएँ रंग और उमग से भरी हुई आपकी भक्ति में नाचती हैं, वे अपने झुमरुओं से बंधे पैरों को स्थान स्थान पर चुन चुन कर रखती है जिससे झनन-झनन-झनन-झनन आवाज़ आती है और देवता भिन्न-भिन्न वाद्य यंत्रो को बजते है ।

घननं घननं घनघंट बजै, दृमदं दृमदं दृमदं मिरदंग सजै
गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता

अन्वयार्थ : कही घंटे के बजने की घननं घननं शब्द की आवाज़ आ रही है, कोई मृदंग बजा रहा है तो दृमदं दृमदं दृमदं की आवाज़ आ रही है, [**गगनांगन**] आकाश के आंगन के [**गर्भगता**] गर्भ में [**सुगता**] सारंगी बज रही है जिससे उसमे से [**ततता ततता**] तरह तरह के शब्द [**अतता**] उसमे से [**वितता**] निकल रहे है ।

धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसालजु छाजत है
सननं सननं सननं नभ में, इकरुप अनेक जु धारि भ्रमें

अन्वयार्थ : [**गति**] तबले के बजने से धृगतां-धृगतां ध्वनि आ रही है, [**सुरताल**] देवों की तालिया [**रसाल**] सुंदर लग रही है । उनके, आकाश में इधर से उधर दौड़ते हुए, छाने से सननं सननं सननं की आवाज़ आ रही है । वे है तो एक रूप किन्तु भिन्न-भिन्न रूप धारण कर कार्य करते रहते है ।

किन्नर सुर बीन बजावत हैं, तुमरो जस उज्जवल गावत हैं
करताल विषै करताल धरैं, सुरताल विशाल जु नाद करैं

अन्वयार्थ : कई देवांगनाएँ बीन बजा कर आपके उज्ज्वल यश को गा रही है । हाथ की ताली बजने से कोई हाथ की ताली की आवाज़ कर रहा है, देवो के हाथ की तालियां विशाल शब्द कर रही है ।

इन आदि अनेक उछाह भरी, सुरभक्ति करें प्रभुजी तुमरी
तुमही जग जीवन के पितु हो, तुमही बिनकारनतें हितु हो

अन्वयार्थ : इस प्रकार अनेक उत्साह से भरे हुए देवता भगवन आपकी भक्ति कर रहे है । हे भगवन आप ही संसार के प्राणियों के पिता हैं, आप ही **[बिनकारन]** निस्वार्थ संसारी जीवों का कल्याण चाहने वाले है ।

तुमही सब विघ्न विनाशन हो, तुमही निज आनंदभासन हो
तुमही चितचिंतितदायक हो, जगमाहिं तुम्हीं सब लायक हो

अन्वयार्थ : आप ही समस्त विघ्नों का विनाश करने वाले हैं, आप ही **[निज आनंदभासन]** आत्मा के आनंद लेने वाले हैं आप ही **[चितचिंतितदायक]** चित में चिंतन करने योग्य है । संसार में आप ही सब के लायक हो । आप से आगे कोई नहीं है ।

तुमरे पन मंगल माहिं सही, जिय उत्तम पुन्य लियो सबही
हमतो तुमरी शरणागत हैं, तुमरे गुन में मन पागत है

अन्वयार्थ : आपके **[पन]** पांच कल्याणकों से असंख्य जीवों ने उत्तम पुण्य का संचय किया था, हम उनमें शामिल नहीं हो पाये, किन्तु आपकी शरण में आये है तथा हमारा मन आपके गुणों में **[पागत]** उत्साहित/लीन है ।

प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसु कर्म नहीं नसिये
तबलों तुम ध्यान हिये वरतों, तबलों श्रुतचिंतन चित्त रतो

अन्वयार्थ : भक्त भगवान् से प्रार्थना कर रहा कि आप मेरे हृदय में सदा बसिये, जब तक अष्टकर्मों का नाश नहीं हो जाए, तब तक मैं आपका ध्यान अपने हृदय में धारण रखू । तब तक शास्त्रों के चिंतवन में मेरा चित्त लगा रहे ।

तबलों व्रत चारित चाहतु हों, तबलों शुभभाव सुगाहतु हों
तबलों सतसंगति नित्त रहो, तबलों मम संजम चित्त गहो

अन्वयार्थ : मैं जब तक संसार में हूँ, तब तक व्रत और चारित्र की भावना चाहता रहूँ, तब तक मैं शुभ भावों को ही ग्रहण करूँ, (अशुभ भावों से बचा रहूं) तब तक मेरी नित्य सतसंगति रहे, तब तक मेरे चित्त संयम को धारण करने में लगा रहे ।

जबलों नहिं नाश करौं अरिको, शिव नारि वरौं समता धरिको
यह द्यो तबलों हमको जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुनजी

अन्वयार्थ : जब तक मैं कर्म शत्रु का नाश न कर लूं और जब तक समता धारण करके मोक्ष स्त्री का वरण न कर लूं तब तक भगवन हमे ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि हमे यह सब (सत्संगति, संयम, व्रत, चारित्र, जिनवाणी की सेवा) आपकी सेवा करने का अवसर आदि दीजिये, हमारी इतनी सुन लीजिये ।

घत्ताः-

श्रीवीर जिनेशा नमित सुरेशा, नाग नरेशा भगति भरा
'वृन्दावन' ध्यावै विघन नशावै, वाँछित पावै शर्म वरा ॥

अन्वयार्थ : महावीर जिनेन्द्र भगवान्, आपको (सुरेशा) इन्द्र, (नाग) धरणेन्द्र, (नरेशा) मध्य लोक के राजा भक्ति भाव से नमस्कार करते है । वृदावन कवि कहते है कि जो आपका ध्यान करते है उनके विघ्न नष्ट हो जाते है और श्रेष्ठ वांछित (शर्म वरा) मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं ।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्री सन्मति के जुगल पद, जो पूजैं धरि प्रीत
वृन्दावन सो चतुर नर, लहैं मुक्ति नवनीत ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अन्वयार्थ : भगवान् महावीर के दोनों चरणों को प्रीती/भक्ति पूर्वक पूजता है वह चतुर नर मुक्ति रूपी नवनीत को प्राप्त करता है । अर्थात उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।

अक्षय-तृतीया-पवैयाजी

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

अक्षय-तृतीया पर्व दान का, ऋषभदेव ने दान लिया
नृप श्रेयांस दान-दाता थे, जगती ने यशगान किया ॥
अहो दान की महिमा, तीर्थंकर भी लेते हाथ पसार
होते पंचाश्चर्य पुण्य का, भरता है अपूर्व भण्डार ॥
मोक्षमार्ग के महाव्रती को, भावसहित जो देते दान
निजस्वरूप जप वह पाते हैं, निश्चित शाश्वत पदनिर्वाण ॥
दान तीर्थ के कर्ता नृप श्रेयांस हुए प्रभु के गणधर
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक में, पाया शिवपद अविनश्वर ॥
प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु! तुम्हें नमन हो बारम्बार
गिरि कैलाश शिखर से तुमने, लिया सिद्धपद मंगलकार ॥
नाथ आपके चरणाम्बुज में, श्रद्धा सहित प्रणाम करूँ
त्यागधर्म की महिमा पाऊँ, मैं सिद्धों का धाम वरूँ
शुभ वैशाख शुक्ल तृतिया का, दिवस पवित्र महान हुआ
दान धर्म की जय-जय गूँजी, अक्षय पर्व प्रधान हुआ ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

कर्मोदय से प्रेरित होकर, विषयों का व्यापार किया
उपादेय को भूल हेय तत्त्वों, से मैंने प्यार किया ॥
जन्म-मरण दुख नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥टेक ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

मन-वच-काया की चंचलता, कर्म आस्रव करती है
चार कषायों की छलना ही, भवसागर दु:ख भरती है ॥
भवाताप के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ
अक्षय-तृतिया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

इन्द्रिय विषयों के सुख क्षणभंगुर, विद्युत-सम चमक अथिर
पुण्य-क्षीण होते ही आते, महा असाता के दिन फिर ॥
पद अखण्ड की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शील विनय व्रत तप धारण, करके भी यदि परमार्थ नहीं
बाह्य क्रियाओं में उलझे तो, वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं ॥
कामबाण के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

विषय लोलुपी भोगों की, ज्वाला में जल-जल दुख पाता
मृग-तृष्णा के पीछे पागल, नर्क-निगोदादिक जाता ॥
क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानस्वरूप आत्मा का, जिसको श्रद्धान नहीं होता
भव-वन में ही भटका करता, है निर्वाण नहीं होता ॥
मोह-तिमिर के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म फलों का वेदन करके, सुखी दुखी जो होता है
अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन, सदा उसी को होता है ॥
कर्म शत्रु के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

जो बन्धन से विरक्त होकर, बन्धन का अभाव करता
प्रज्ञाछैनी ले बन्धन को, पृथक् शीघ्र निज से करता ॥
महामोक्ष-फल प्राप्ति हेतु, मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ
अक्षय-तृतिया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

पर मेरा क्या कर सकता है, मैं पर का क्या कर सकता
यह निश्चय करनेवाला ही, भव-अटवी के दुख हरता ॥
पद अनर्घ्य की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ ॥टेक॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

चार दान दो जगत में, जो चाहो कल्याण
औषधि भोजन अभय अरु, सद् शास्त्रों का ज्ञान ॥

पुण्य पर्व अक्षय तृतीया का, हमें दे रहा है यह ज्ञान
दान धर्म की महिमा अनुपम, श्रेष्ठ दान दे बनो महान ॥
दान धर्म की गौरव गाथा, का प्रतीक है यह त्यौहार
दान धर्म का शुभ प्रेरक है, सदा दान की जय-जयकार ॥
आदिनाथ ने अर्ध वर्ष तक, किये तपस्या-मय उपवास
मिली न विधि फिर अन्तराय, होते-होते बीते छह मास ॥
मुनि आहारदान देने की, विधि थी नहीं किसी को ज्ञात
मौन साधना में तन्मय हो, प्रभु विहार करते प्रख्यात ॥
नगर हस्तिनापुर के अधिपति, सोम और श्रेयांस सुभ्रात
ऋषभदेव के दर्शन कर, कृतकृत्य हुए पुलकित अभिजात ॥
श्रेयांस को पूर्वजन्म का, स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार
विधिपूर्वक पड़गाहा प्रभु को, दिया इक्षुरस का आहार ॥
पंचाश्चर्य हुए प्रांगण में, हुआ गगन में जय-जयकार
धन्य-धन्य श्रेयांस दान का, तीर्थ चलाया मंगलकार ॥
दान-पुण्य की यह परम्परा, हुई जगत में शुभ प्रारम्भ
हो निष्काम भावना सुन्दर, मन में लेश न हो कुछ दम्भ ॥
चार भेद हैं दान धर्म के, औषधि-शास्त्र-अभय-आहार
हम सुपात्र को योग्य दान दे, बनें जगत में परम उदार ॥
धन वैभव तो नाशवान हैं, अत: करें जी भर कर दान
इस जीवन में दान कार्य कर, करें स्वयं अपना कल्याण ॥
अक्षय तृतिया के महत्त्व को, यदि निज में प्रकटायेंगे
निश्चित ऐसा दिन आयेगा, हम अक्षय-फल पायेंगे ॥
हे प्रभु आदिनाथ! मंगलमय, हम को भी ऐसा वर दो
सम्यग्ज्ञान महान सूर्य का, अन्तर में प्रकाश कर दो ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षय तृतिया पर्व की, महिमा अपरम्पार
त्याग धर्म जो साधते, हो जाते भव पार ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

दीपावली-पवैयाजी

क्षमावाणी का पर्व सुपावन देता जीवों को संदेश
उत्तम क्षमाधर्म को धारो जो अतिभव्य जीव का वेश ॥
मोह नींद से जागो चेतन अब त्यागो मिथ्याभिनिवेश
द्रव्यदृष्टि बन निजस्वभाव से चलो शीघ्र सिद्धों के देश ॥
क्षमा, मार्दव, आर्जव, संयम, शौच, सत्य को अपनाओ
त्याग, तपस्या, आकिंचन, व्रत ब्रह्मचर्यय हो जाओ ॥
एक धर्म का सार यही है समतामय ही बन जाओ
सब जीवों पर क्षमाभाव रख स्वयं क्षमामय हो जाओ ॥
क्षमा धर्म की महिमा अनुपम क्षमा धर्म ही जग में सार
तीन लोक में गूँज रही है क्षमावाणी की जय-जयकार ॥
ज्ञाता-द्रष्टा हो समग्र को देखो उत्तम निर्मल भेष
रागों से विरक्त हो जाओ रहे न दुख का किंचित् लेश ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जीवादिक नव तत्त्वों का श्रद्धान यही सम्यक्त्व प्रथम
इनका ज्ञान ज्ञान है, रागादिक का त्याग चरित्र परम ॥
`संते पुव्वणिबद्धं जाणदि'१ वह अबंध का ज्ञाता है
सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव बंधरहित हो जाता है ॥
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म-मरण क्षय कर मानूँ
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ ॥१॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

सप्त भयों से रहित निशंकित निजस्वभाव में सम्यग्दृष्टि
मिथ्यात्वादिक भावों में जो रहता वह है मिथ्यादृष्टि ॥
तीन मूढ़ता छह अनायतन तीन शल्य का नाम नहीं
आठ दोष समकित के अरु आठों मद का कुछ काम नहीं ॥
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म मरण क्षय कर मानूँ
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वरूप को पहचानूँ ॥उत्तम.॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अशुभ कर्म जाना कुशील शुभ को सुशील मानता रे
जो संसार बंध का कारण वह कुशील जानता न रे ॥

कर्म फलों के प्रति जिनकी आकांक्षा उर में रही नहीं
वह निकांक्षित सम्यग्दृष्टी भव की वांछा रही नहीं ॥उत्तम.॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

राग शुभाशुभ दोनों ही संसार भ्रण का कारण है
शुद्धभाव ही एकमात्र परमार्थ भवोदधि तारण है ॥
वस्तु स्वभाव धर्म के प्रति जो लेश जुगुप्सा करे नहीं
निर्विचिकित्सक जीव वही है निश्चय सम्यग्दृष्टि वही ॥उत्तम.॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध आत्मा जो ध्याता वह पूर्ण शुद्धता पाता है
जो अशुद्ध को ध्याता है वह ही अशुद्धता पाता है ॥
पर भावों में जो न मूढ़ है दृष्टि यथार्थ सदा जिसकी
वह अमूढ़दृष्टि का धारी सम्यग्दृष्टि सदा उसकी ॥उत्तम.॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

राग-द्वेष मोहादिक आस्रव ज्ञानी को होते न कभी
ज्ञाता-द्रष्टा को ही होते उत्तम संवर भाव सभी ॥
शुद्धातम की भक्ति सहित जो पर भावों से नहीं जुड़ा
उपगूहन का अधिकारी है सम्यग्दृष्टि महान बड़ा ॥उत्तम.॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म बन्ध के चारों कारण मिथ्या अविरति योग कषाय
चेतयिता इनका छेदन कर, करता है निर्वाण उपाय ॥
जो उन्मार्ग छोड़कर निज को निज में सुस्थापित करता
स्थितिकरण युक्त होता वह सम्यग्दृष्टी स्वहित करता ॥उत्तम.॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्य-पापमय सभी शुभाशुभ योगों से रहता वह दूर
सर्व संग से रहित हुआ वह दर्शन ज्ञानमयी सुख पूर ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरितधारी के प्रति गौ-वत्सल भाव
वात्सल्य का धारी सम्यग्दृष्टि मिटाता पूर्ण विभाव ॥उत्तम.॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोक्षफलप्राप्तयेफलं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानविहीन कभी भी पलभर ज्ञानस्वरूप नहीं होता
बिना ज्ञान के ग्रहण किए कर्मो से मुक्त नहीं होता ॥

विद्यारूपी रथ पर चढ़ जो ज्ञानरूप रथ चलवाता
वह जिन-शासन की प्रभावना करता शिवपथ दर्शाता ॥उत्तम. ॥
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

उत्तम क्षमा स्वधर्म को, वन्दन करूँ त्रिकाल
नाश दोष पच्चीस कर, काटूँ भव जंजाल ॥

सोलहकारण पुष्पांजलि दशलक्षण रत्नत्रय व्रत पूर्ण
इनके सम्यक् पालन से हो जाते हैं वसुकर्म विचूर्ण ॥
भाद्र मास में सोलहकारण तीस दिवस तक होते हैं
शुक्ल पक्ष में दशलक्षण पंचम से दस दिन होते हैं ॥
पुष्पांजलि दिन पाँच पंचमी से नवमी तक होते हैं
पावन रत्नत्रयव्रत अन्तिम तीन दिवस के होते हैं ॥
आश्विन कृष्णा एकम् उत्सव क्षमावाणी का होता है
उत्तमक्षमा धार उर श्रावक मोक्षमार्ग को जोता है ॥
भाद्र मास अरु माघ मास अरु चैत्र मास में आते हैं
तीन बार आ पर्वराज जिनवर संदेश सुनाते हैं ॥
'जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं' यह तो है व्यवहार कथन
है अबद्ध अस्पृष्ट कर्म से निश्चय नय का यही कथन ॥
जीव-देह को एक बताना यह है नय व्यवहार अरे
जीव देह तो पृथक्-पृथक् हैं निश्चय नय कह रहा अरे ॥
निश्चय नय का विषय छोड़ व्यवहार माहिं करते वर्तन
उनको मोक्ष नहीं हो सकता और न ही सम्यग्दर्शन ॥
'दोण्हवि णयाण भणियं जाणई' जो पक्षातिक्रांत होता
चित्स्वरूप का अनुभव करता सकलकर्म मल को खोता ॥
ज्ञानी ज्ञानस्वरूप छोड़कर जब अज्ञान रूप होता
तब अज्ञानी कहलाता है पुद्गल बन्ध रूप होता ॥
'जह विस भुव भुज्जंतो वेज्जो' मरण नहीं पा सकता है
ज्ञानी पुद्गल कर्म उदय को भोगे बन्ध न करता है ॥
मुनि अथवा गृहस्थ कोई भी मोक्षमार्ग है कभी नहीं
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित ही मोक्षमार्ग है सही-सही ॥
मुनि अथवा गृहस्थ के लिंगों में जो ममता करता है
मोक्षमार्ग तो बहुत दूर भव-अटवी में ही भ्रता है ॥
प्रतिक्रमण प्रतिसरण आदि आठों प्रकार के विषकुम्भ

इनसे जो विपरीत वही हैं मोक्षमार्ग के अमृतकुम्भ ॥
पुण्य भाव की भी तो इच्छा ज्ञानी कभी नहीं करता
परभावों से अरति सदा है निज का ही कर्ता धर्ता ॥
कोई कर्म किसी जीव को है सुख-दुख दाता नहीं समर्थ
जीव स्वयं ही अपने सुख-दुख का निर्माता स्वयं समर्थ ॥
क्रोध, मान, माया, लोभादिक नहीं जीव के किंचित् मात्र
रूप, गंध, रस, स्पर्श शब्द भी नहीं जीव के किंचित् मात्र ॥
देह संहनन संस्थान भी नहीं जीव के किंचित् मात्र
राग-द्वेष-मोहादि भाव भी नहीं जीव के किंचित् मात्र ॥
सर्वभाव से भिन्न त्रिकाली पूर्ण ज्ञानमय ज्ञायक मात्र
नित्य, ध्रौव्य, चिद्रूप, निरंजन, दर्शनज्ञानमयी चिन्मात्र ॥
वाक् जाल में जो उलझे वह कभी सुलझ ना पायेंगे
निज अनुभव रसपान किये बिन नहीं मोक्ष में जायेंगे ॥
अनुभव ही तो शिवसमुद्र है अनुभव शाश्वत सुख का स्रोत
अनुभव परमसत्य शिव सुन्दर अनुभव शिव से ओतप्रोत ॥
निज स्वभाव के सन्मुख हो जा, पर से दृष्टि हटा भगवान
पूर्ण सिद्धपर्याय प्रकट कर आज अभी पा ले निर्वाण ॥
ज्ञान-चेतना सिंधु स्वयं तू स्वयं अनन्तगुणों का भूप
त्रिभुवनपति सर्वज्ञ ज्योतिमय चिंतामणि चेतन चिद्रूप ॥
यह उपदेश श्रवण कर हे प्रभु! मैत्री भाव हृदय धारूँ
जो विपरीत वृत्तिवाले हैं उन पर मैं समता धारूँ ॥
धीरे-धीरे पाप-पुण्य शुभ-अशुभ आस्रव संहारूँ
भव-तन भोगों से विरक्त हो निजस्वभाव को स्वीकारूँ ॥
दशधर्मों को पढ़ सुनकर अन्तर में आये परिवर्तन
व्रत उपवास तपादिक द्वारा करूँ सदा ही निज चिंतन ॥
राग-द्वेष अभिमान पाप हर काम क्रोध को चूर करूँ
जो संकल्प-विकल्प उठे प्रभु उनको क्षण-क्षण दूर करूँ ॥
अणु भर भी यदि राग रहेगा नहीं मोक्ष पद पाऊँगा
तीन लोक में काल अनंता राग लिये भरमाऊँगा ॥
राग शुभाशुभ के विनाश से वीतराग बन जाऊँगा
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा स्वयं सिद्ध पद पाऊँगा ॥
पर्यूषण में दूषण त्यागूँ बाह्य क्रिया में रमे न मन
शिव पथ का अनुसरण करूँ मैं बन के नाथ सिद्ध नन्दन ॥
जीव मात्र पर क्षमा भाव रख मैं व्यवहार धर्म पालूँ
निज शुद्धातम पर करुणा कर निश्चय धर्म सहज पालूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मोक्ष-मार्ग दर्शा रहा, क्षमावाणी का पर्व
क्षमाभाव धारण करो, राग-द्वेष हर सर्व ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

वीरशासन-जयन्ती-पवैयाजी

महावीर निर्वाण दिवस पर, महावीर पूजन कर लूँ
वर्धमान अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ ॥
पावापुर से मोक्ष गये प्रभु, जिनवर पद अर्चन कर लूँ
जगमग जगमग दिव्यज्योति से, धन्य मनुजजीवन कर लूँ ॥
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, शुद्धभाव मन में भर लूँ
दीपमालिका पर्व मनाऊँ, भव-भव के बन्धन हर लूँ ॥
ज्ञान-सूर्य का चिर-प्रकाश ले, रत्नत्रय पथ पर बढ़ लूँ
परभावों का राग तोड़कर, निजस्वभाव में मैं अड़ लूँ ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्धमान जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल, निजस्वभाव मय जल भर लूँ
जन्म-मरण का चक्र मिटाऊँ, भव-भव की पीड़ा हर लूँ ॥
दीपावलि के पुण्य दिवस पर, वर्धमान पूजन कर लूँ
महावीर अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, निज चन्दन उर में धर लूँ
चारों गति का ताप मिटाऊँ, निज पंचमगति आदर लूँ ॥दीपा. ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अजर अमर अक्षय अविकल, अनुपम अक्षतपद उर धर लूँ
भवसागर तर मुक्ति वधू से, मैं पावन परिणय कर लूँ ॥दीपा. ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये

अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श रहित निज शुद्ध पुष्प मन में भर लूँ
काम-बाण की व्यथा नाश कर मैं निष्काम रूप धर लूँ ॥दीपा. ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मशक्ति परिपूर्ण शुद्ध नैवेद्य भाव उर में धर लूँ
चिर-अतृप्ति का रोग नाशकर, सहज तृप्त निज पद वर लूँ ॥दीपा. ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित, ज्ञानदीप ज्योतित कर लूँ
मिथ्या-भ्र-तम-मोह नाशकर, निज सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ ॥दीपा. ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

पुण्यभाव की धूप जलाकर, घाति-अघाति कर्म हर लूँ
क्रोध-मान-माया-लोभादि, मोह-द्रोह सब क्षय कर लूँ ॥दीपा. ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर, श्रेष्ठ मोक्षपद उर धर लूँ
अष्ट स्वगुण से युक्त सिद्धगति, पा सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ ॥दीपा. ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

गुण अनन्त प्रकटाऊँ अपने, निज अनर्घ्य पद को वर लूँ
शुद्धस्वभावी ज्ञान-प्रभावी, निज सौन्दर्य प्रकट कर लूँ ॥दीपा. ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुभ आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को, पुष्पोत्तर तज प्रभु आये
माता त्रिशला धन्य हो गई, सोलह सपने दरशाये ॥
पन्द्रह मास रत्न बरसे, कुण्डलपुर में आनन्द हुआ
वर्धमान के गर्भोत्सव पर, दूर शोक-दुख-द्वंद्व हुआ ॥

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, सारी जगती धन्य हुई
नृप सिद्धार्थराज हर्षाये, कुण्डलपुरी अनन्य हुई ॥
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन में, सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक
नृत्य वाद्य मंगल गीतों के, द्वारा किया हर्ष अतिरेक ॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मगसिर कृष्णा दशमी को, उर में छाया वैराग्य अपार
लौकान्तिक देवों के द्वारा धन्य-धन्य प्रभु जय-जय कार ॥
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी, वीर प्रभु ने किया प्रयाण
वन में जाकर दीक्षा धारी, निज में लीन हुए भगवान ॥
ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

द्वादश वर्ष तपस्या करके, पाया तुमने केवलज्ञान
कर बैसाख शुक्ल दशमी को, त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान ॥
सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को, युगपत् एक समय में जान
वर्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु, वीतराग अरिहन्त महान ॥
ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, वर्धमान प्रभु मुक्त हुए
सादि-अनन्त समाधि प्राप्त कर, मुक्ति-रमा से युक्त हुए ॥
अन्तिम शुक्लध्यान के द्वारा, कर अघातिया का अवसान
शेष प्रकृति पच्यासी को भी, क्षय करके पाया निर्वाण ॥
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला
महावीर ने पावापुर से, मोक्षलक्ष्मी पाई थी
इन्द्र-सुरों ने हर्षित होकर, दीपावली मनाई थी ॥
केवलज्ञान प्राप्त होने पर, तीस वर्ष तक किया विहार
कोटि-कोटि जीवों का प्रभु ने, दे उपदेश किया उपकार ॥
पावापुर उद्यान पधारे, योगनिरोध किया साकार
गुणस्थान चौदह को तजकर, पहुँचे भवसमुद्र के पार ॥
सिद्धशिला पर हुए विराजित, मिली मोक्षलक्ष्मी सुखकार
जल-थल-नभ में देवों द्वारा गूँज उठी प्रभु की जयकार ॥
इन्द्रादिक सुर हर्षित आये, मन में धारे मोद अपार

महामोक्ष कल्याण मनाया, अखिल विश्व को मंगलकार ॥
अष्टादश गणराज्यों के, राजाओं ने जयगान किया
नत-मस्तक होकर जन-जन ने, महावीर गुणगान किया ॥
तन कपूरवत् उड़ा शेष नख, केश रहे इस भूतल पर
मायामयी शरीर रचा, देवों ने क्षण भर के भीतर ॥
अग्निकुमार सुरों ने झुक, मुकुटानल से तन भस्म किया
सर्व उपस्थित जनसमूह, सुरगण ने पुण्य अपार लिया ॥
कार्तिक कृष्ण अमावस्या का, दिवस मनोहर सुखकर था
उषाकाल का उजियारा कुछ, तम-मिश्रित अति मनहर था ॥
रत्न-ज्योतियों का प्रकाश कर, देवों ने मंगल गाये
रत्न-दीप की आवलियों से, पर्व दीपमाला लाये ॥
सब ने शीश चढ़ाई भस्मी, पद्म सरोवर बना वहाँ
वही भूमि है अनुपम सुन्दर, जल मन्दिर है बना वहाँ ॥
प्रभु के ग्यारह गणधर में थे, प्रमुख श्री गौतम स्वामी
क्षपकश्रेणि चढ़ शुक्लध्यान से हुए देव अन्तर्यामी ॥
इसी दिवस गौतम स्वामी को, सन्ध्या केवलज्ञान हुआ
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई, पद सर्वज्ञ महान हुआ ॥
देवों ने अति हर्षित होकर, रत्न-ज्योति का किया प्रकाश
हुई दीपमाला द्विगुणित, आनन्द हुआ छाया उल्लास ॥
प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर, हो जाता मन अति पावन
परम पूज्य निर्वाणभूमि शुभ, पावापुर है मन-भावन ॥
अखिल जगत में दीपावली, त्यौहार मनाया जाता है
महावीर निर्वाण महोत्सव, धू मचाता आता है ॥
हे प्रभु! महावीर जिन स्वामी, गुण अनन्त के हो धामी
भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थंकर, जिनराज विश्वनामी ॥
मेरी केवल एक विनय है, मोक्ष-लक्ष्मी मुझे मिले
भौतिक लक्ष्मी के चक्कर में, मेरी श्रद्धा नहीं हिले ॥
भव-भव जन्म-मरण के चक्कर, मैंने पाये हैं इतने
जितने रजकण इस भूतल पर, पाये हैं प्रभु दुख उतने ॥
अवसर आज अपूर्व मिला है, शरण आपकी पाई है
भेदज्ञान की बात सुनी है, तो निज की सुधि आई है ॥
अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा, जब तक मोक्ष नहीं पाऊँ
दो आशीर्वाद हे स्वामी! नित्य नये मंगल गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्रीवर्धमान जिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

दीपमालिका पर्व पर, महावीर उर धार
भावसहित जो पूजते, पाते सौख्य अपार ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

क्षमावाणी-पवैयाजी

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रत धारी
बलि ने कर नरमेघ यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी ॥
जय जय विष्णुकुमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणाधारी ॥
रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों का जय-जयकार हुआ
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर-घर मंगलाचार हुआ ॥
श्री मुनि चरणकमल में वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यग्दर्शन
भक्ति भाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन ॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

जन्म-मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता हूँ अर्पण
राग-द्वेष परिणति अभाव कर निज परिणति में करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन ॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा

भव सन्ताप मिटाने को मैं चन्दन करता हूँ अर्पण
देह भोग भव से विरक्त हो निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्य: चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अक्षयपद अखंड पाने को अक्षत धवल करूँ अर्पण
हिंसादिक पापों को क्षय कर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्प करता अर्पण
क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परिणति में करूँ रमण ॥

श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन ॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्य: पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण
विषयभोग की आकांक्षा हर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीपज्योति करता अर्पण
सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

अष्ट कर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण
सम्यग्ज्ञान हृदय प्रकटाऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा

मुक्ति प्राप्ति हित उत्तम फल चरणों में करता हूँ अर्पण
मैं सम्यक्चारित्र प्राप्त कर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्य: फलं निर्वपामीति स्वाहा

शाश्वत पद अनर्घ्य पाने को उत्तम अर्घ्य करूँ अर्पण
रत्नत्रय की तरणी खेऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री.॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

वात्सल्य के अंग की, महिमा अपरम्पार
विष्णुकुमार मुनीन्द्र की, गूँजी जय-जयकार ॥

उज्जयनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मंत्री थे चार
बलि, प्रहलाद, नमुचि वृहस्पति चारों अभिमानी सविकार ॥
जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी में आया
सात शतक मुनि के दर्शन कर नृप श्रीवर्मा हर्षाया ॥
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निंदा की
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की ॥

किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये
वाद-विवाद किया श्री मुनि से, हारे, जीत नहीं पाये ॥
अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये
खड्ग उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये ॥
प्रात: होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन
देश-निकाला दिया मंत्रियों को तब राजा ने तत्क्षण ॥
चारों मंत्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर ॥
मुँह-माँगा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर ॥
फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये
बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उदय आये ॥
कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया
भीषण अग्नि जलाई चारों ओर द्वेष से कार्य किया ॥
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान में लीन हुए
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए ॥
यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने किया दान का ढोंग विचित्र
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र ॥
पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महा मुनिवर
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट का सुनकर ॥
किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये ॥
बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला
जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बड़ा भोला ॥
हँसकर मुनि ने एक पाँव में ही सारी पृथ्वी नापी
पग द्वितीय में मानुषोत्तर पर्वत की सीमा नापी ॥
ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रक्खा
क्षमा-क्षमा कह कर बलि ने, मुनिचरणों में मस्तक रक्खा ॥
शीतल ज्वाला हुई अग्नि की श्री मुनियों की रक्षा की
जय-जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी ॥
नवधा भक्तिपूर्वक सबने मुनियों को आहार दिया
बलि आदिक का हुआ हृदय परिवर्तन जय-जयकार किया ॥
रक्षासूत्र बाँधकर तब जन-जन ने मंगलाचार किये
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये ॥
समकित के वात्सल्य अंग की महिमा प्रकटी इस जग में
रक्षा-बन्धन पर्व इसी दिन से प्रारम्भ हुआ जग में ॥

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा दिन था रक्षासूत्र बँधा कर में
वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर-घर में ॥
प्रायश्चित्त ले विष्णुकुमार ने पुन: व्रत ले तप ग्रहण किया
अष्ट कर्म बन्धन को हरकर इस भव से ही मोक्ष लिया ॥
सब मुनियों ने भी अपने-अपने परिणामों के अनुसार
स्वर्ग-मोक्ष पद पाया जग में हुई धर्म की जय-जयकार ॥
धर्म भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ
रहे शुद्ध आचरण सदा ही धर्म-मार्ग अनुकूल चलूँ ॥
आत्मज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज-पर को मैं पहिचानूँ
समकित के आठों अंगों की, पावन महिमा को जानूँ ॥
तभी सार्थक जीवन होगा सार्थक होगी यह नर देह
अन्तर घट में जब बरसेगा पावन परम ज्ञान रस मेह ॥
पर से मोह नहीं होगा, होगा निज आतम से अति नेह
तब पायेंगे अखंड अविनाशी निजसुखमय शिवगेह ॥
रक्षा-बंधन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान
रक्षा-बंधन पर्व ज्ञान का रक्षा का त्यौहार प्रधान ॥
रक्षा-बंधन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान
रक्षा-बंधन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सात शतक को करूँ नमन
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन ॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

रक्षा बन्धन पर्व पर, श्री मुनि पद उर धार
मन-वच-तन जो पूजते, पाते सौख्य अपार ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

रक्षाबन्धन-पवैयाजी

वर्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थंकर नामी ॥
श्री अरिहंतदेव मंगलमय स्व-पर प्रकाशक गुणधामी
सकल लोक के ज्ञाता-दृष्टा महापूज्य अन्तर्यामी ॥
महावीर शासन का पहला दिन श्रावण कृष्णा एकम
शासन वीर जयन्ती आती है प्रतिवर्ष सुपावनतम ॥
विपुलाचल पर्वत पर प्रभु के समवशरण में मंगलकार
खिरी दिव्यध्वनि शासन-वीर जयन्ती-पर्व हुआ साकार ॥

प्रभु चरणाम्बुज पूजन करने का आया उर में शुभ भाव
सम्यग्ज्ञान प्रकाश मुझे दो, राग-द्वेष का करूँ अभाव ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

भाग्यहीन नर रत्न स्वर्ण को जैसे प्राप्त नहीं करता
ध्यानहीन मुनि निज आतम का त्यों अनुभवन नहीं करता ॥
शासन वीर जयन्ती पर जल चढ़ा वीर का ध्यान करूँ
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

विविध कल्पना उठती मन में, वे विकल्प कहलाते हैं
बाह्य पदार्थों में ममत्व मन के संकल्प रुलाते हैं ॥
शासन वीर जयन्ती पर चंदन अर्पित कर ध्यान करूँ ॥खिरी.॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

अंतरंग बहिरंग परिग्रह त्यागूँ मैं निर्ग्रन्थ बनूँ
जीवन मरण, मित्र अरि सुख दुख लाभ हानि में साम्य बनूँ ॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर अक्षत भेंट स्वध्यान करूँ ॥खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध सिद्ध ज्ञानादि गुणों से मैं समृद्ध हूँ देह प्रमाण
नित्य असंख्यप्रदेशी निर्मल हूँ अमूर्तिक महिमावान ॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर भेंट पुष्प निज ध्यान करूँ
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

परम तेज हूँ परम ज्ञान हूँ परम पूर्ण हूँ ब्रह्म स्वरूप
निरालम्ब हूँ निर्विकार हूँ निश्चय से मैं परम अनूप ॥
शासन वीर जयन्ती पर नैवेद्य चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

स्व-पर प्रकाशक केवलज्ञानमयी, निजमूर्ति अमूर्ति महान
चिदानन्द टंकोत्कीर्ण हूँ ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता भगवान ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं दीप चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक देहादिक नोकर्म विहीन
भाव कर्म रागादिक से मैं पृथक् आत्मा ज्ञान प्रवीण ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं धूप चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्मल रहित शुद्ध ज्ञानमय, परममोक्ष है मेरा धाम
भेदज्ञान की महाशक्ति से पाऊँगा अनन्त विश्राम ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं सुफल चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

मात्र वासनाजन्य कल्पना है परद्रव्यों में सुखबुद्धि
इन्द्रियजन्य सुखों के पीछे पाई किंचित् नहीं विशुद्धि ॥
शासन वीर जयन्ती पर मैं अर्घ्य चढ़ा निज ध्यान करूँ ॥खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

विपुलाचल के गगन को, वन्दूँ बारम्बार
सन्मति प्रभु की दिव्यध्वनि, जहाँ हुई साकार ॥१॥

महावीर प्रभु दीक्षा लेकर मौन हुए तप संयम धार
परिषह उपसर्गों को जय कर देश-देश में किया विहार ॥
द्वादश वर्ष तपस्या करके ऋजुकूला सरितट आये
क्षपकश्रेणी चढ़ शुक्ल ध्यान से कर्म घातिया विनसाये ॥
स्व-पर प्रकाशक परम ज्योतिमय प्रभु को केवलज्ञान हुआ
इन्द्रादिक को समवशरण रच मन में हर्ष महान हुआ ॥
बारह सभा जुड़ीं अति सुन्दर, सबके मन का कमल खिला
जनमानस को प्रभु की दिव्यध्वनि का, किन्तु न लाभ मिला ॥
छ्यासठ दिन तक रहे, मौन प्रभु दिव्यध्वनि का मिला न योग
अपने आप स्वयं मिलता है, निमित्त-नैमित्तिक संयोग ॥
राजगृही के विपुलाचल पर प्रभु का समवशरण आया
अवधिज्ञान से जान इन्द्र ने गणधर का अभाव पाया ॥
बड़ी युक्ति से इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण को वह लाया
गौतम ने दीक्षा लेते ही ऋषि गणधर का पद पाया ॥

तत्क्षण खिरी दिव्यध्वनि प्रभु की द्वादशांगमय कल्याणी
रच डाली अन्तरर्मुहूर्त में, गौतम ने श्री जिनवाणी ॥
सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादश विविध प्रकार
सब जीवों ने सुनी दिव्यध्वनि अपने उपादान अनुसार ॥
विपुलाचल पर समवशरण का हुआ आज के दिन विस्तार
प्रभु की पावन वाणी सुनकर गूँजा नभ में जय-जयकार ॥
जन-जन में नव जागृति जागी मिटा जगत का हाहाकार
जियो और जीने दो का जीवन संदेश हुआ साकार ॥
धर्म अहिंसा सत्य और अस्तेय मनुज जीवन का सार
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से ही होगा जीव मात्र से प्यार ॥
घृणा पाप से करो सदा ही किन्तु नहीं पापी से द्वेष
जीव मात्र को निज-सम समझो यही वीर का था उपदेश ॥
इन्द्रभूति गौतम ने गणधर बनकर गूँथी जिनवाणी
इसके द्वारा परमात्मा बन सकता कोई भी प्राणी ॥
मेघ गर्जना करती श्री जिनवाणी का वह चला प्रवाह
पाप ताप संताप नष्ट हो गये मोक्ष की जागी चाह ॥
प्रथमं, करणं, चरणं, द्रव्यं ये अनुयोग बताये चार
निश्चय नय सत्यार्थ बताया, असत्यार्थ सारा व्यवहार ॥
तीन लोक षट् द्रव्यमयी है सात तत्त्व की श्रद्धा सार
नव पदार्थ छह लेश्या जानो, पंच महाव्रत उत्तम धार ॥
समिति गुप्ति चारित्र पालकर तप संयम धारो अविकार
परम शुद्ध निज आत्मतत्त्व, आश्रय से हो जाओ भव पार ॥
उस वाणी को मेरा वंदन उसकी महिमा अपरम्पार
सदा वीर शासन की पावन, परम जयन्ती जय-जयकार ॥
वर्धमान अतिवीर वीर की पूजन का है हर्ष अपार
काललब्धि प्रभु मेरी आई, शेष रहा थोड़ा संसार ॥
ॐ ह्रीं श्रीं सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

दिव्यध्वनि प्रभु वीर की देती सौख्य अपार
आत्मज्ञान की शक्ति से, खुले मोक्ष का द्वार ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्रुतपंचमी-पवैयाजी

स्याद्वादमय द्वादशांगयुत माँ जिनवाणी कल्याणी
जो भी शरण हृदय से लेता हो जाता केवलज्ञानी ॥

जय जय जय हितकारी शिवसुखकारी माता जय जय जय
कृपा तुम्हारी से ही होता भेदज्ञान का सूर्य उदय ॥
श्री धरसेनाचार्य कृपा से मिला परम जिनश्रुत का ज्ञान
भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने षट्खण्डागम रचा महान ॥
अंकलेश्वर में ग्रंथराज यह पूर्ण हुआ था आज के दिन
जिनवाणी लिपिबद्ध हुई थी पावन परम आज के दिन ॥
ज्येष्ठशुक्ल पंचमी दिवस जिनश्रुत का जय-जयकार हुआ
श्रुतपंचमी पर्व पर श्री जिनवाणी का अवतार हुआ ॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधि करणं

शुद्ध स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र कर लूँ
साम्यभाव पीयूष पान कर जन्म-जरामय दुख हर लूँ ॥
श्रुतपंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ
षट्खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित कर लूँ
भव दावानल के ज्वालामय अघसंताप ताप हर लूँ ॥श्रुत.॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षत शुद्ध हृदय धर लूँ
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षय पद वर लूँ ॥श्रुत.॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के पुष्पों से निज अन्तर सुरभित कर लूँ
महाशील गुण के प्रताप से मैं कंदर्प-दर्प हर लूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव के अति उत्तम प्रभु नैवेद्य प्राप्त कर लूँ
अमल अतीन्द्रिय निजस्वभाव से दुखमय क्षुधाव्याधि हर लूँ ॥श्रुत.॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्धस्वानुभव के प्रकाशमय दीप प्रज्वलित मैं कर लूँ
मोहतिमिर अज्ञान नाश कर निज कैवल्य ज्योति वर लूँ ॥श्रुत.॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अज्ञानांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव गन्ध सुरभिमय ध्यान धूप उर में भर लूँ
संवर सहित निर्जरा द्वारा मैं वसु कर्म नष्ट कर लूँ ॥श्रुत.॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव का फल पाऊँ मैं लोकाग्र शिखर वर लूँ
अजर अमर अविकल अविनाशी पदनिर्वाण प्राप्त कर लूँ ॥श्रुत.॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय महा मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा

शुद्ध स्वानुभव दिव्य अर्घ्य ले रत्नत्रय सुपूर्ण कर लूँ
भव-समुद्र को पार करूँ प्रभु निज अनर्घ्य पद मैं वर लूँ
श्रुत पंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ
षट्खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का
गूँजा जय-जयकार जगत में जिनश्रुत के अवतार का ॥टेक ॥
ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का लाभ पूर्ण मिलता रहा
महावीर तक जिनवाणी का विमल वृक्ष खिलता रहा ॥
हुए केवली अरु श्रुतकेवलि ज्ञान अमर फलता रहा
फिर आचार्यों के द्वारा यह ज्ञानदीप जलता रहा ॥
भव्यों में अनुराग जगाता मुक्तिवधू के प्यार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥१॥
गुरु-परम्परा से जिनवाणी निर्झर-सी झरती रही
मुमुक्षुओं को परम मोक्ष का पथ प्रशस्त करती रही ॥
किन्तु काल की घड़ी मनुज की स्मरणशक्ति हरती रही
श्री धरसेनाचार्य हृदय में करुण टीस भरती रही ॥
द्वादशांग का लोप हुआ तो क्या होगा संसार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥२॥
शिष्य भूतबलि पुष्पदन्त की हुई परीक्षा ज्ञान की
जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु श्रुत-विद्या विमल प्रदान की ॥
ताड़ पत्र पर हुई अवतरित वाणी जनकल्याण की
षट्खण्डागम महाग्रन्थ करणानुयोग जय ज्ञान की ॥

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस था सुर-नर मंगलाचार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥३॥
धन्य भूतबली पुष्पदन्त जय श्री धरसेनाचार्य की
लिपि परम्परा स्थापित करके नई क्रांति साकार की ॥
देवों ने पुष्पों की वर्षा नभ से अगणित बार की
धन्य-धन्य जिनवाणी माता निज-पर भेद विचार की ॥
ऋणी रहेगा विश्व तुम्हारे निश्चय का व्यवहार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥४॥
धवला टीका वीरसेन कृत बहत्तर हजार श्लोक
जय धवला जिनसेन वीरकृत उत्तम साठ हजार श्लोक ॥
महाधवल है देवसेन कृत है चालीस हजार श्लोक
विजयधवल अरु अतिशय धवल नहीं उपलब्ध एक श्लोक ॥
षट्खण्डागम टीकाएँ पढ़ मन होता भव पार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥५॥
फिर तो ग्रन्थ हजारों लिक्खे ऋषि-मुनियों ने ज्ञानप्रधान
चारों ही अनुयोग रचे जीवों पर करके करुणा दान ॥
पुण्य कथा प्रथमानुयोग द्रव्यानुयोग है तत्त्व प्रधान
एक्सरे करणानुयोग चरणानुयोग कैमरा महान ॥
यह परिणाम नापता है वह बाह्य चरित्र विचार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥६॥
जिनवाणी की भक्ति करें हम जिनश्रुत की महिमा गायें
सम्यग्दर्शन का वैभव ले भेद-ज्ञान निधि को पायें ॥
रत्नत्रय का अवलम्बन लें निज स्वरूप में रम जायें
मोक्षमार्ग पर चलें निरन्तर फिर न जगत में भरमायें ॥
धन्य-धन्य अवसर आया है अब निज के उद्धार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥७॥
गूँजा जय-जय नाद जगत में जिनश्रुत जय-जयकार का
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का ॥
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

श्रुतपंचमी सुपर्व पर, करो तत्त्व का ज्ञान
आत्मतत्त्व का ध्यान कर, पाओ पद निर्वाण ॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

महाअर्घ्य

मैं देव श्री अरहंत पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों ।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों ॥
अरहन्त भाषित बैन पूजूँ, द्वादशांग रची गनी ।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी ॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा ।
जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा ॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजूँ ।
पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ ॥
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजूँ सदा ।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा ॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के ।
नामावली इक सहस वसु जय, होय पति शिव गेह के ॥

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय ।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनवाणीभ्यो उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्माय, दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रेभ्य: त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो पंचमेरू अशीतिचैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वर द्वीपस्थद्विपंचाशज्जिनालयेभ्यो, श्री सम्मेदशिखर, गिरनारगिरि, कैलाशगिरि, चम्पापुर, पावापुर-आदिसिद्धक्षेत्रेभ्यो, अतिशयक्षेत्रेभ्यो, विदेहक्षेत्र स्थित सीमंधरादि विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो, ऋषभादि चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो, भगवज्जिन सहस्राष्ट नामेभ्येश्च अनर्घ्यपद प्राप्तये महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शांति-पाठ

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी, शीलगुणव्रत संयमधारी
लखन एक सौ आठ विराजे, निरखत नयन कमल दल लाजै ॥

पंचम चक्रवर्ती पदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिननायक, नमो शांतिहित शांति विधायक ॥

दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुंदुभि आसन वाणी सरसा
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥

शांति जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजों सिरनाई

परम शांति दीजे हम सबको, पढ़ें जिन्हें पुनि चार संघ को ॥

पूजें जिन्हें मुकुटहार किरीट लाके, इन्द्रादिदेव अरु पूज्यपदाब्ज जाके
सो शांतिनाथ वर वंश-जगत्प्रदीप, मेरे लिए करहु शांति सदा अनूप ॥

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों को यतिनायकों को
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले, कीजे सुखी हे जिन शांति को दे ॥

होवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा
होवे वरषा समय पे, तिलभर न रहे व्याधियों का अन्देशा ॥

होवे चोरी न जारी, सुसमय वरतै, हो न दुष्काल मारी
सारे ही देश धारैं, जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी ॥

घाति कर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज
शांति करो ते जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥

(तीन बार शांति धारा देवें)

शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ तत्संगति का
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाँकूँ सभी का ॥

बोलूँ प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊँ
तौलौ सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौलौं न पाऊँ ॥

तब पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में
तबलौं लीन रहौ प्रभु, जबलौ पाया न मुक्ति पद मैंने ॥

अक्षर पद मात्रा से दूषित जो कछु कहा गया मुझसे
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणा करिपुनि छुड़ाहु भवदुःख से ॥

हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊँ तब चरण शरण बलिहारी
मरणसमाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण)
(यहाँ नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

अन्वयार्थ : शांतिनाथ का मुख चंद्रमा के समान है,वे शील,गुणों,व्रतों और संयमधारी हैं!आपका शरीर १०८ लक्षणो से सुशोभित हैं,आपके नयनों को देखते ही कमलों का दल भी लज्जित होता है अर्थात आपके नेत्र कमल से भी अधिक सुंदर है ! नोट:-भगवन के शरीर में १००८ लक्षण कहे है,यहाँ १०८ कहने का कारण है कि ९०० छोटे चिन्ह तिल आदि होते हैं औए बड़े १०८ ही होते है अत:यहाँ १०८ चिन्हों का वर्णन किया गया है! पंचम चक्रवर्ती पद के धारक एवं सोलहवे तीर्थंकर के सुख करने वाले थे,जिन के नायक इंद्र और राजा आपकी पूजा शान्तिके लिए करते थे,शांतिनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ! दिव्य(अशोक) वृक्ष के (भगवान् समबशरण में उपस्थित समस्त जीवों को शोक रहित होने का प्रतीक, अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान होते है) पुष्पों की वर्षा देवों द्वारा होती है) दुंदुभि/बाजे (देवों द्वारा बाजे बजाये जाते है) , आसान - सिंहासन का होना (भगवान समवशरण में सिंहासन के ऊपर रखे कमल से चार अंगुल ऊपर अंतरिक्ष में विराजमान होते है), वाणी - (आत्मा को दिव्य ज्ञान द्वारा आनंदित करने वाली दिव्य ध्वनि का खिरना), तीन छत्रों का होना (भगवान् के त्रिलोक के स्वामी के उद्घोषक, उनके सिर के ऊपर तीन छत्र होते है,सबसे ऊपर छोटा ,सबसे नीचे सबसे बड़ा और बीच में मंझला), चमर - (देवताओं /इन्द्रों द्वारा ६४ चमर भगवन के ऊपर डोरे जाते हैं !) भामंडल - (यह आभा मंडल विशेष होता है,(भगवानजी का औरा होता है),जिसमे समवशरण में उपस्थित प्रत्येक भव्यजीव को अपने अपने सात भव;-३ भूत,१ वर्त्तमान और ३ भविष्यत स्पष्ट दीखते है)ये आपके प्रातिहार्य मनोहर/मन को हरने वाले है !, विशेष :-इन पंक्तियों में बताया है कि समवशरण में जब आप विराजमन होते है तो वहाँ उपस्थित प्रत्येक जीव को अष्टप्रातिहार्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है! प्रातिहार्य-सामान्य लोगो में नहीं पाये जाने वाली विशेषताओं को प्रातिहार्य कहते है !ये देवों द्वारा बनाये जाते है!चक्रवर्ती मात्र मध्यलोक के स्वामी होने के कारण उनके सिर के ऊपर एक छत्र लगाया जाता है ! जगत्पूज्य-तीनों लोकों में,पूज्य,पूजौ-मैं पूजा करता हूँ,नाई-नवाकर/झुका कर अर्थ-हे शांतिनाथ जिनेश!आप शांति और सुख प्रदान करने वाले है,तीनोलोकों में पूज्य है,मैं मस्तक झुका कर आपकी पूजा करता हूँ!भगवन हम सब को जो ये शांति पाठ पढ़ रहे है और चतुरसंघ; मुनि,आर्यिका श्रावक, श्राविका को परम शान्ति प्रदान कीजिये ! मुकुट, हार, रत्नों आदि के धारक इन्द्रादि देव, जिनके कमल चरणों की पूजा करते है,ऐसे शांतिनाथ भगवान् जो श्रेष्ठ वंश मे उत्पन्न हुए, संसार को दीपक के समान प्रकाशित करने वाले दीपक के समान, मेरे को अनुपम शांति सदा प्रदान करे ! हे शांतिनाथ जिनेन्द्र भगवन आप सभी पूजा करने वाले, हमारे रक्षकों, मुनियों और आचार्यों को, राजा, प्रजा और राष्ट्र, देश को शांति प्रदान कर सुखी कीजिये ! हे भगवन समस्त प्रजा सुखी, राजा धर्मधारी और बलवान समुचित वर्षा समय पर हीनाधिक नहीं, रंचमात्र भी रोगो का अंदेशा नहीं, चोरी नहीं हो और आग नहीं लगे, सारे में अच्छा समय वरते (रहे), अकाल कभी नहीं पड़े, हैज़ा आदि भी नहीं फैले, सारे देश अर्थात विश्व सदा सुखकारी जैन धर्म को धारण करे ! ऋषभादि भगवान्,जिन्होंने घातिया कर्मो का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया है वे समस्त जगत को शांति प्रदान करे ! भक्त भगवान् से प्रार्थना कर रहा है कि,शास्त्रों को पढ़ कर लोग सुखी हो!सत्संगती का सब को लाभ हो,अच्छे आचरणों वालों की प्रशंसा करे,सभी के दोषो को ढकूं,जब भी बोलू हितकारी प्यारे वचन बोलूँ, अपकी वीतराग मुद्रा का निरंतर चिंतवन करूँ।मैं तब तक आपके चरणों की सेवा करता रहूँ जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाए !! प्रभु ,आपके चरण मेरे हृदय में और मेरा हृदय आपके पवित्र चरणों में तब तक लीन रहे जब तक मुझे मुक्ति प्राप्त न हो जाए! प्रभु, मैंने अभिषेक पूजन और शांति पाठ किया है, इनमे मेरे से जो अक्षर ,पद और मात्रा में दूषित कहा गया हो उन सब दोषों के लिए मुझे क्षमा कीजिये तथा करुणा कर संसार के दुखो से छुड़वा दीजिये! हे संसार के बंधु जिनेश्वर मैं आपके चरणों की शरण में अपना सब कुछ न्यौछावर,समर्पित करता हूँ,आपके चरणों की शरण के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए! भगवन मेरी अत्यंत कठिन समाधि मरण हो मेरे कर्मों का क्षय हो,सुखकारी रत्न त्रय की प्राप्ति हो!

शांति-पाठ-भाषा

(जुगल किशोर)

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपति चक्री करें
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा करें ॥
धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जाने, रीत पूजन नाथजी
हम भक्तिवश तुम चरण आगै, जोड़ लीने हाथजी ॥१॥

दु:ख-हरन मंगलकरन, आशा-भरन जिन पूजा सही
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, शक्ति है स्वयमेव ही ॥
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचूँ कहा
मुझ आप-सम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा ॥२॥

संसार भीषण विपिन में, वसु कर्म मिल आतापियो
तिस दाहतैं आकुलित चिरतैं, शान्तिथल कहुँ ना लियो ॥
तुम मिले शान्तिस्वरूप, शान्ति सुकरन समरथ जगपती
वसु कर्म मेरे शान्त कर दो, शान्तिमय पंचमगती ॥३॥

जबलौं नहीं शिव लहूँ, तबलौं देह यह नर पावना
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत अभ्यास आतम भावना ॥
तुम बिन अनंतानंत काल गयो रुलत जगजाल में
अब शरण आयो नाथ युग कर, जोर नावत भाल मैं ॥४॥

कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपै किहि भंत
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावे नहिं अंत ॥५ ॥

विसर्जन-पाठ

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय
तुम प्रसाद तें परम गुरु, सो सब पूरन होय ॥

पूजन विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करो भगवान ॥

मंत्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव ॥

तुम चरणण ढिग आयके, मैं पूजूं अतिचाव
आवागमन रहित करो, रमूं सदा निज भाव ॥

भगवान-महावीर-आरती

ऊँ जय महावीर प्रभो, स्वामी जय महावीर प्रभो
कुण्डलपुर अवतारी, त्रिशलानन्द विभो ॥

सिद्धारथ घर जन्मे, वैभव था भारी
बाल ब्रह्मचारी व्रतपाल्यौ तपधारी ॥१॥

आतम ज्ञान विरागी, सम दृष्टि धारी

माया मोह विनाशक, ज्ञान ज्योति जारी ॥२॥

जग में पाठअहिंसा, आपहि विस्तार्यो
हिंसा पाप मिटाकर, सुधर्म परिचार्यो ॥३॥

इह विधि चाँदनपुर में, अतिशय दरशायो
ग्वाल मनोरथ पुर्यो दूधगाय पायो ॥४॥

अमर चन्द को सपना, तुमने प्रभु दीना
मन्दिर तीन शिखर का निर्मित है कीना ॥५॥

जयपुर नृप भीतेरे, अतिशय के सेवी
एक ग्राम तिन दीनों, सेवा हित यह भी ॥६॥

जो कोई तेरे दर पर, इच्छा कर आवे
होय मनोरथ पूरण, संकट मिट जावे ॥७॥

निशि दिन प्रभु मन्दिर में, जगमग ज्योति जरै
हम सब चरणों में, आनन्द मोद भरै ॥८॥

भगवान-आदिनाथ-चालीसा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करू प्रणाम
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम ॥१॥

सर्व साधु और सरस्वती जिन मन्दिर सुखकार
आदिनाथ भगवान को मन मन्दिर में धार ॥२॥

जै जै आदिनाथ जिन स्वामी, तीनकाल तिहूं जग में नामी
वेष दिगम्बर धार रहे हो, कर्मों को तुम मार रहे हो ॥३॥

हो सर्वज्ञ बात सब जानो सारी दुनियां को पहचानो
नगर अयोध्या जो कहलाये, राजा नाभिराज बतलाये ॥४॥

मरुदेवी माता के उदर से, चैत वदी नवमी को जन्मे
तुमने जग को ज्ञान सिखाया, कर्मभूमी का बीज उपाया ॥५॥

कल्पवृक्ष जब लगे बिछरने, जनता आई दुखड़ा कहने
सब का संशय तभी भगाया, सूर्य चन्द्र का ज्ञान कराया ॥६॥

खेती करना भी सिखलाया, न्याय दण्ड आदिक समझाया
तुमने राज किया नीति का, सबक आपसे जग ने सीखा ॥७॥

पुत्र आपका भरत बताया, चक्रवर्ती जग में कहलाया
बाहुबली जो पुत्र तुम्हारे, सब से पहले मोक्ष सिधारे ॥८॥

सुता आपकी दो बतलाई, ब्राह्मी और सुन्दरी कहलाई
उनको भी विद्या सिखलाई, अक्षर और गिनती बतलाई ॥९॥

एक दिन राजसभा के अन्दर, एक अप्सरा नाच रही थी
आयु उसकी बहुत अल्प थी, इसीलिए आगे नहीं नाच रही थी ॥१०॥

विलय हो गया उसका सत्वर, झट आया वैराग्य उमड़कर
बेटों को झट पास बुलाया, राज पाट सब में बंटवाया ॥११॥

छोड सभी झंझट संसारी, वन जाने की करी तैयारी
राव (राजा) हजारों साथ सिधाए, राजपाट तज वन को धाये ॥१२॥

लेकिन जब तुमने तप किना, सबने अपना रस्ता लीना
वेष दिगम्बर तजकर सबने, छाल आदि के कपड़े पहने ॥१३॥

भूख प्यास से जब घबराये, फल आदिक खा भूख मिटाये
तीन सौ त्रेसठ धर्म फैलाये, जो अब दुनियां में दिखलाये ॥१४॥

छैः महीने तक ध्यान लगाये, फिर भोजन करने को धाये
भोजन विधि जाने नहिं कोय, कैसे प्रभु का भोजन होय ॥१५॥

इसी तरह बस चलते चलते, छः महीने भोजन बिन बीते
नगर हस्तिनापुर में आये, राजा सोम श्रेयांस बताए ॥१६॥

याद तभी पिछला भव आया, तुमको फौरन ही पड़धाया
रस गन्ने का तुमने पाया, दुनिया को उपदेश सुनाया ॥१७॥

तप कर केवल ज्ञान पाया, मोक्ष गए सब जग हर्षाया
अतिशय युक्त तुम्हारा मन्दिर, चांदखेड़ी भंवरे के अन्दर ॥१८॥

उसका यह अतिशय बतलाया, कष्ट क्लेश का होय सफाया
मानतुंग पर दया दिखाई, जंजीरें सब काट गिराई ॥१९॥

राजसभा में मान बढ़ाया, जैन धर्म जग में फैलाया
मुझ पर भी महिमा दिखलाओ, कष्ट भक्त का दूर भगाओ ॥२०॥

(सोरठा)
नित चालीस ही बार, पाठ करे चालीस दिन
खेवे धूप अपार, चांदखेड़ी में आय के ॥

होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो
जिनके नहीं सन्तान, नाम वंश जग में चले ॥

भगवान-महावीर-चालीसा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करू प्रणाम
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम ॥१॥

सर्व साधू और सरस्वती, जिनमन्दिर सुखकार
महावीर भगवान् को मन मंदिर में धार ॥२॥

जय महावीर दयालु स्वामी, वीर प्रभु तुम जग में नामी
वर्धमान हैं नाम तुम्हारा, लगे ह्रदय को प्यारा प्यारा ॥३॥

शांत छवि मन मोहिनी मूरत, शांत हंसिली सोहिनी सूरत
तुमने वेश दिगंबर धारा, करम शत्रु भी तुमसे हारा ॥४॥

क्रोध मान वा लोभ भगाया माया ने तुमसे डर खाया
तू सर्वज्ञ सर्व का ज्ञाता, तुझको दुनिया से क्या नाता ॥५॥

तुझमे नहीं राग वा द्वेष, वीतराग तू हित उपदेश
तेरा नाम जगत में सच्चा, जिसको जाने बच्चा बच्चा ॥६॥

भुत प्रेत तुमसे भय खावे, व्यंतर राक्षस सब भाग जावे
महा व्याधि मारी न सतावे, अतिविकराल काल डर खावे ॥७॥

काला नाग होय फन धारी, या हो शेर भयंकर भारी
ना ही कोई बचाने वाला, स्वामी तुम ही करो प्रतिपाला ॥८॥

अग्नि दावानल सुलग रही हो, तेज हवा से भड़क रही हो
नाम तुम्हारा सब दुख खोवे, आग एकदम ठंडी होवे ॥९॥

हिंसामय था भारत सारा, तब तुमने लीना अवतारा
जन्म लिया कुंडलपुर नगरी, हुई सुखी तब जनता सगरी ॥१०॥

सिद्धार्थ जी पिता तुम्हारे, त्रिशाला की आँखों के तारे
छोड़ के सब झंझट संसारी, स्वामी हुए बाल ब्रम्हाचारी ॥११॥

पंचम काल महा दुखदायी, चांदनपुर महिमा दिखलाई
टीले में अतिशय दिखलाया, एक गाय का दुध झराया ॥१२॥

सोच हुआ मन में ग्वाले के, पंहुचा एक फावड़ा लेके
सारा टीला खोद गिराया, तब तुमने दर्शन दिखलाया ॥१३॥

जोधराज को दुख ने घेरा, उसने नाम जपा जब तेरा
ठंडा हुआ तोप का गोला, तब सब ने जयकारा बोला ॥१४॥

मंत्री ने मंदिर बनवाया, राजा ने भी दरब लगाया
बड़ी धर्मशाला बनवाई, तुमको लाने की ठहराई ॥१५॥

तुमने तोड़ी बीसों गाडी, पहिया खिसका नहीं अगाडी
ग्वाले ने जब हाथ लगाया, फिर तो रथ चलता ही पाया ॥१६॥

पहले दिन बैसाख वदी के, रथ जाता है तीर नदी के
मीना गुजर सब ही आते, नाच कूद सब चित उमगाते ॥१७॥

स्वामी तुमने प्रेम निभाया, ग्वाले का तुम मान बढाया
हाथ लगे ग्वाले का तब ही, स्वामी रथ चलता हैं तब ही ॥१८॥

मेरी हैं टूटी सी नैया, तुम बिन स्वामी कोई ना खिवैया
मुझ पर स्वामी ज़रा कृपा कर, मैं हु प्रभु तुम्हारा चाकर ॥१९॥

तुमसे मैं प्रभु कुछ नहीं चाहू, जनम जनम तव दर्शन चाहू
चालिसे को चन्द्र बनावे, वीर प्रभु को शीश नमावे ॥२०॥

नित ही चालीस बार, पाठ करे चालीस
खेय धुप अपार, वर्धमान जिन सामने ॥

होय कुबेर समान, जन्म दरिद्र होय जो
जिसके नहीं संतान, नाम वंश जग में चले ॥

देव-स्तुति

पं. भूधरदासजी कृत

अहो जगत गुरु देव, सुनिये अरज हमारी
तुम प्रभु दीन दयाल, मैं दुखिया संसारी ॥१॥

इस भव-वन के माहिं, काल अनादि गमायो
भ्रम्यो चहूँ गति माहिं, सुख नहिं दुख बहु पायो ॥२॥

कर्म महारिपु जोर, एक न कान करै जी
मन माने दुख देहिं, काहूसों नाहिं डरै जी ॥३॥

कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावै
सुर-नर-पशु-गति माहिं, बहुविध नाच नचावै ॥४॥

प्रभु! इनको परसंग, भव-भव माहिं बुरोजी
जो दुख देखे देव, तुमसों नाहिं दुरोजी ॥५॥

एक जनम की बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी
तुम अनंत परजाय, जानत अंतरजामी ॥६॥

मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे

कियो बहुत बेहाल, सुनिये साहिब मेरे ॥७॥

ज्ञान महानिधि लूट, रंक निबल करि डारो
इनही तुम मुझ माहिं, हे जिन! अंतर डारो ॥८॥

पाप-पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी
तन कारागृह माहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥९॥

इनको नेक बिगाड़, मैं कछु नाहिं कियो जी
बिन कारन जगवंद्य! बहुविध बैर लियो जी ॥१०॥

अब आयो तुम पास, सुनि जिन! सुजस तिहारौ
नीति निपुन महाराज, कीजै न्याय हमारौ ॥११॥

दुष्टन देहु निकार, साधुन कौं रखि लीजै
विनवै, 'भूधरदास', हे प्रभु! ढील न कीजै ॥१२॥

मेरी-भावना

जुगलकिशोर जी 'मुख्तार'

जिसने राग-द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया,
बुद्ध, वीर जिन, हरि, हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥1॥

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं
निज-पर के हित साधन में जो निशदिन तत्पर रहते हैं,
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुख-समूह को हरते हैं ॥2॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे,
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं
पर-धन-वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ॥3॥

अहंकार का भाव न रखूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या-भाव धरूं,
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूं
बने जहां तक इस जीवन में औरों का उपकार करूं ॥4॥

मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उरसे करुणा स्रोत बहे,
दुर्जन-क्रूर-कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे
साम्यभाव रखूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे ॥5॥

गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे,
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे ॥6॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे
तो भी न्याय मार्ग से मेरे कभी न पद डिगने पावे ॥7॥

होकर सुख में मग्न न फूलें दुख में कभी न घबरावें
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक-अटवी से नहिं भय खावें,
रहे अडोल-अकंप निरंतर, यह मन, दृढ़तर बन जावे
इष्टवियोग अनिष्टयोग में सहनशीलता दिखलावे ॥8॥

सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग नित्य नए मंगल गावें,
घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्म फल सब पावें ॥9॥

ईति-भीति व्यापे नहीं जगमें वृष्टि समय पर हुआ करे
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे,
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शांति से जिया करे
परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे ॥10॥

फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे

अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करे,
बनकर सब युगवीर हृदय से देशोन्नति-रत रहा करें
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से सब दुख संकट सहा करें ॥11॥

बारह-भावना

पं. जयचन्दजी छाबड़ा कृत

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नय करि गौन ॥१॥

शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय
मोह-उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय ॥२॥

पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध
ताको फल गति चार मैं, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥३॥

परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासे शिव होय ॥४॥

अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय
ऐसें चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय ॥५॥

निर्मल अपनी आत्मा, देह अपावन गेह
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह ॥६॥

आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार
सब विभाव परिणाममय, आस्रवभाव विडार ॥७॥

निजस्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि
समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पाप की हानि ॥८॥

संवरमय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाँय
निजस्वरूप को पाय कर, लोक शिखर जब थाय ॥९॥

लोक स्वरूप विचारिकें, आतम रूप निहारि

परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि ॥१०॥

बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥११॥

दर्श-ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि
दया-क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि ॥१२॥

बारह-भावना

राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार ॥१॥

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखनहार ॥२॥

दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान
कहूं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥३॥

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय
युँ कबहुँ इस जीव को साथी सगा ना कोय ॥४॥

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय
घर सम्पत्ति पर प्रकटये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥

दीपै चाम चादर मढी, हाड पिंजरा देह
भीतर या सम जगत् में, और नहीं घिन गेह ॥६॥

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमे सदा
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लुटे सुध नही ॥७॥

सद्गुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमे
तब कुछ बने उपाय, कर्म चोर आवत रुके ॥८॥

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर

पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥९॥

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान
तामे जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान ॥१०॥

धन कन कंचन राज सुख सबहि सुलभकर जान
दुर्लभ है संसार मे एक जथारथ ज्ञान ॥११॥

जाँचे सुर तरु देय सुख चिंतत चिंता रैन
बिन जाँचे बिन चिंतये धर्म सकल सुख देन ॥१२॥

बारह-भावना

वंदूं श्री अरहंत पद, वीतराग विज्ञान
वरनूं बारह भावना, जग जीवन-हित जान ॥१॥

कहां गये चक्री जिन जीता, भरत खंड सारा
कहां गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा
कहां कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु संपति सगरी
कहां गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी ॥२॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रण में
गये राज तज पांडव वन को, अग्नि लगी तन में
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को
हो दयाल उपदेश करैं गुरु बारह भावन को ॥३॥

१. अथिर भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै ऋतु फिर फिर कर आवै
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावै
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल, बहकर नहीं हटता
स्वास चलत यों घटे काठ ज्यों, आरे सों कटता ॥४॥
ओस-बूंद ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि पानी
छिन छिन यौवन छीन होत है क्या समझै प्रानी
इंद्रजाल आकाश नगर सम जग-संपति सारी
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी ॥५॥

२. अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को, घेरा भव वन में
नहीं बचावन-हारा कोई यों समझो मन में
मंत्र यंत्र सेना धन सम्पति, राज पाट छूटे
वश नहीं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लुटे ॥६॥
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँहीं उमर खोई ॥७॥

३ संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा -रोग से, सदा दुखी रहता
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता
छेदन भेदन नरक पशू गति, बध बंधन सहना
राग-उदय से दुख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना ॥८॥
भोगि पुण्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली
कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली
मानुष-जन्म अनेक विपत्तिमय, कहीं न सुख देखा
पंचमगति सुख मिलै शुभाशुभ को मेटो लेखा ॥९॥

४ एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी
और किसी का क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी
कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक परिवारा
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा ॥१०॥
ज्यों मेले में पंथीजन मिल नेह फिरैं धरते
ज्यों तरवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक थक हारै
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै ॥११॥

५ भिन्न भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में मिथ्या जल चमकै
मृग-चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौड़े थक थक कै
जल नहीं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता ॥१२॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी
मिले-अनादि यतनतैं बिछुडे, ज्यों पय अरु पानी
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना
जौलों पौरुष थकै न तौलों उद्यम सों चरना ॥१३॥

६ अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली
निश दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली
मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी ॥१४॥
काना पौंडा पडा हाथ यह चूसै तो रोवै
फ़लै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषे बोवै
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी ॥१५॥

७ आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को ॥१६॥
पन मिथ्यात योग पन्द्रह, द्वादश अविरत जानो
पंचरु बीस कषाय मिले सब सत्तावन मानो
मोह्भाव की ममता टारै, पर परनत खोते
करै मोक्ष का यतन निरास्रव ज्ञानी जन होते ॥१७॥

८ संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता
त्यों आस्रव को रोकै संवर, क्यों नहीं मन लाता
पञ्च महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को

दश विध धर्म परीषह बाइस, बारह भावन को ॥१८॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते
सुपन दशा से जागो चेतन, कहां पड़े सोते
भाव शुभाशुभ रहित, शुद्ध भावन संवर पावै
डांट लगत यह नाव पड़ी, मझधार पार जावै ॥१९॥

९ निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पडे भारी
संवर रोकै कर्म निर्जरा, व्है सोखनहारी
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली
दूजी है अविपाक पकावै, पाल विषे माली ॥२०॥
पहली सबके होय नहीं, कुछ सरै काम तेरा
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥२१॥

१० लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो
पुरुषरूप कर कटी भये षट द्रव्यनसों मानों
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है
जीवरू पुद्गल नाचै यामें, कर्म उपाधी है ॥२२॥
पाप पुन्यसों जीव जगत में, नित सुख दुःख भरता
अपनी करनी आप भरै शिर, औरन के धरता
मोहकर्म को नाश मेटकर, सब जग की आशा
निज पद में थिर होय, लोक के, शीश करो वासा ॥२३॥

११ बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रसगति पानी
नरकाया को सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्रानी
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना ॥२४॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना

दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै ॥२५॥

१२ धर्म भावना

धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः', ही सच्चा जानो
जो पर को दु:ख दे सुख माने, उसे पतित मानो
राग-द्वेष-मद-मोह घटा, आतम-रुचि प्रकटावे
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे ॥२६॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी
सप्त तत्व का वर्णन जामें, सबको सुखदानी
इनका चितवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना
'मंगत' इसी जतनतै इकदिन, भावसागर तरना ॥२७॥

महावीर-वंदना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं ॥

जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं ॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में
जिनके विराट विशाल निर्मल, अचल केवल ज्ञान में ॥

युगपद विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में ॥

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावैं पार है ॥

बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है
उन सर्वदर्शी सन्मति को, वंदना शत बार है ॥

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है ॥

जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है
कर्ता न धर्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है ॥

आतम बने परमात्मा, हो शांति सारे देश में
है देशना-सर्वोदयी, महावीर के संदेश में ॥

समाधिमरण

द्यानतरायजी कृत

गौतम स्वामी बन्दों नामी मरण समाधि भला है
मैं कब पाऊँ निश दिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है ॥
देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने
त्याग बाइस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने ॥१॥

चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधै
बनिज करै पर द्रव्य हरै नहिं छहों कर्म इमि साधै ॥
पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा संयम तप चहुं दानी
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी ॥२॥

जाप जपै तिहुँ योग धरै दृढ़ तनकी ममता टारै
अन्त समय वैराग्य सम्हारै ध्यान समाधि विचारै ॥
आग लगै अरु नाव डुबै जब धर्म विघन तब आवै
चार प्रकार आहार त्यागिके मंत्र सु-मन में ध्यावे ॥३॥

रोग असाध्य जरा बहु देखे कारण और निहारै
बात बड़ी है जो बनि आवे भार भवन को टारै ॥
जो न बने तो घर में रहकरि सबसों होय निराला
मात पिता सुत तियको सौंपे निज परिग्रह इति काला ॥४॥

कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देई
क्षमा क्षमा सब ही सों कहिके मनकी शल्य हनेई ॥
शत्रुनसों मिल निज कर जोरैं मैं बहु कीनी बुराई
तुमसे प्रीतम को दुख दीने क्षमा करो सो भाई ॥५॥

धन धरती जो मुखसों मांगै सो सब दे संतोषै
छहों कायके प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषै ॥
ऊँच नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पै लै
दूधाधारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार पहेलै ॥६॥

छाछ त्यागिके पानी राखै पानी तजि संथारा
भूमि मांहि थिर आसन मांडै साधर्मी ढिग प्यारा ॥
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िये
यों कहि मौन लियो संन्यासी पंच परम पद गहिये ॥७॥

चार अराधन मनमें ध्यावै बारह भावन भावै
दशलक्षण मुनि-धर्म विचारै रत्नत्रय मन ल्यावै ॥
पैतीस सोलह षट पन चारों दुइ इक वरन विचारै
काया तेरी दुख की ढेरी ज्ञानमयी तू सारै ॥८॥

अजर अमर निज गुणसों पूरै परमानंद सुभावै
आनंदकंद चिदानंद साहब तीन जगतपति ध्यावै ॥
क्षुधा तृषादिक होय परीषह सहै भाव सम राखै
अतीचार पाँचों सब त्यागै ज्ञान सुधारस चाखै ॥९॥

हाड़ माँस सब सूख जाय जब धर्मलीन तन त्यागै
अद्भुत पुण्य उपाय स्वर्ग-में सेज उठै ज्यों जागै ॥
तहाँ तैं आवै शिवपद पावै विलसै सुक्ख अनन्तो
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धर्म जयवन्तो ॥१०॥

समाधि-भावना

शिवरामजी कृत

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ,
देहांत के समय में, तुमको न भूल जाऊँ ॥टेक॥

शत्रु अगर कोई हो, संतुष्ट उनको कर दूँ,
समता का भाव धर कर, सबसे क्षमा कराऊँ ॥१॥

त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर,

टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ ॥२॥

जागें नहीं कषाएँ, नहीं वेदना सतावे,
तुमसे ही लौ लगी हो,दुर्ध्यान को भगाऊँ ॥३॥

आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ,
अरहंत सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ ॥४॥

धरमात्मा निकट हों, चर्चा धरम सुनावें,
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ ॥५॥

जीने की हो न वाँछा, मरने की हो न इच्छा,
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को हटाऊँ ॥६॥

भोगे जो भोग पहिले, उनका न होवे सुमिरन,
मैं राज्य संपदा या, पद इंद्र का न चाहूँ ॥७॥

रत्नत्रय का पालन, हो अंत में समाधि,
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ ॥८॥

समाधिमरण-भाषा

पं सूरचंदजी कृत

बन्दौं श्री अरिहंत परम गुरु, जो सबको सुखदाई
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राईं ॥
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माँहीं
अन्त समय में यह वर मागूँ, सो दीजै जगराई ॥१॥

भव-भव में तनधार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो
भव-भव में नृपरिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो ॥
भव-भव में तन पुरुष तनों धर, नारी हूँ तन लीनों
भव-भव में मैं भयो नपुंसक,आतम गुण नहिं चीनों ॥२॥

भव-भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पायो विधि योगे ॥

भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी
भव-भव में साधर्मीजन को, संग मिल्यो हितकारी ॥३॥

भव-भव में जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो ॥
एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक् गुण नहिं पायो
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥४॥

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो
एक बार हू सम्यक् युत मैं, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काई
देह विनाशी मैं निजभासी, ज्योति स्वरूप सदाई ॥५॥

विषय कषायनि के वश होकर, देह आपनो जान्यो
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो ॥
यो कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो
सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो ॥६॥

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों
रोग जनित पीड़ा मत हूवो, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै
जो समाधियुत मरण होय मुझ,अरु मिथ्यामद छीजै ॥७॥

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ॥
अतिदुर्गन्ध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै
देह विनाशी, यह अविनाशी नित्य स्वरूप कहावै ॥८॥

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम! यातैं प्रीति न कीजै
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजै ॥
मृत्यु भये से हानि कौन है, याको भय मत लावो
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ॥९॥

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माँहीं
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै

क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै ॥१०॥

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥
राग द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई
अन्त समय में समता धारो, परभव पंथ सहाई ॥११॥

कर्म महादुठ बैरी मेरो, ता सेती दुख पावै
तन पिंजरे में बंद कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै ॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजर सों काढ़े ॥१२॥

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहिराये
गन्ध-सुगन्धित अतर लगाये, षट्-रस अशन कराये ॥
रात दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥१३॥

मृत्युराज को शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ
जामें सम्यक्-रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाँहीं
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥१४॥

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पत्ति तेती ॥१५॥

चौ-आराधन सहित प्राण तज, तो ये पदवी पावो
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकति में जावो ॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥१६॥

इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है
तेज कान्ति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै
तापर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावे ॥१७॥

मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्यो पर्यो बिललावै ॥
पुद्गल के परमाणु मिलकैं, पिण्डरूप तन भासी
या है मूरत मैं अमूरती, ज्ञान जोति गुण खासी ॥१८॥

रोग शोक आदि जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे ॥
या तन सों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है
खानपान दे याको पोष्यो, अब समभाव ठन्यो है ॥१९॥

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो ॥
तन विनाश तें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई
कुटुम आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई ॥२०॥

अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी ॥
इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल लागे
मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागे ॥२१॥

बिन समता तन अनंत धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो
शस्त्र घाततैं अनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥
बार अनन्त ही अग्नि माँहिं जर, मूवो सुमति न लायो
सिंह व्याघ्र अहि अनन्तबार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥२२॥

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई
मृत्युराज को भय नहिं मानों, देवै तन सुखदाई ॥
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै
जप-तप बिन इस जग के माँहीं, कोई भी ना सीजै ॥२३॥

स्वर्ग सम्पदा तप सों पावै, तप सों कर्म नसावै
तप ही सों शिवकामिनि पति ह्वै, यासों तप चित लावै ॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई
मात-पिता सुत बाँधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥२४॥

मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है
आरत तैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है ॥
और परिग्रह जेते जग में तिनसों प्रीत न कीजै
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजै ॥२५॥

जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो ॥
परभव में जो संग चलै तुझ, तिन सों प्रीत सु कीजै
पञ्च पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै ॥२६॥

दशलक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो
षोडशकारण को नित चिन्तो, द्वादश भावन भावो ॥
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो ॥२७॥

अन्त समय में यह शुभ भावहिं, होवैं आनि सहाई
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई ॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाके
जा सेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके ॥२८॥

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ-आराधन भाई
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं ॥
आगैं बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥२९॥

तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै
भाव सहित वन्दौं मैं तासों, दुर्गति होय न ताकै ॥
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यानहिये विच लावै ॥३०॥

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत पाँव भख्यो दुखकारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३१॥

धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो

तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३२॥

देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगनि बहु बारी
शीश जले जिम लकड़ी तिनको,तो भी नाहिं चिगारी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३३॥

सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ठ वेदना व्यापी
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंतो गुण आपी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३४॥

श्रेणिक सुत गंगा में डूबो, तब जिननाम चितारो
धर सल्लेखना परिग्रह छाँड़ो, शुद्ध भाव उर धारो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३५॥

समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
ता दुख में मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यो निजगुण भाई
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३६॥

ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशाम्बी तट जानो
नद्दी में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३७॥

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दु:ख सह गाढो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३८॥

श्रीदत्त मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्यो साधु मन लाके

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३९॥

वृषभसेन मुनि उष्णशिला पर, ध्यान धरो मन लाई
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४०॥

अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई
शत्रु चण्ड ने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४१॥

विद्युच्चर ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी
शुभ भावन सों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४२॥

पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घातो
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४३॥

दण्डक नामा मुनि की देही बाणन कर अरि भेदी
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४४॥

अभिनन्दन मुनि आदि पाँचसौ, घानी पेलि जु मारे
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरब कर्म विचारे
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४५॥

चाणक मुनि गोगृह के माँहीं, मूँद अगिनि परजालो
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हालो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी

तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४६॥

सात शतक मुनिवर दुख पायो, हस्तिनापुर में जानो
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४७॥

लोहमयी आभूषण गढ़ के, ताते कर पहराये
पाँचों पाण्डव मुनि के तन में, तौ भी नाहिं चिगाये
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४८॥

और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी
वे ही हमको हों सुखदाता, हर हैं टेक प्रमादी ॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये आराधन चारों
ये ही मोंको सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥४९॥

यों समाधि उर माँहीं लावो, अपनो हित जो चाहो
तज ममता अरु आठों मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो ॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजै
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै ॥५०॥

मात-पितादिक सर्व कुटुम मिल, नीके शकुन बनावै
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै ॥
एक ग्राम जाने के कारण, करैं शुभाशुभ सारे
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे ॥५१॥

सर्वकुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावैं सारे
ये अपशकुन करैं सुन तोकौं, तू यों क्यों न विचारे ॥
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्म ध्यान उर आनो
चारों आराधन आराधो मोह तनो दुख हानो ॥५२॥

ह्वै नि:शल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो
जब परगति को करहु पयानो, परमतत्त्व उर लावो ॥
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥५३॥

दोहा
मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिमान

सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द्र शिवथान ॥५४॥

पञ्च उभय नव एक नभ, संवत् सो सुखदाय
आश्विन श्यामा सप्तमी,कह्यो पाठ मन लाय॥ ५५॥

दर्शन-स्तुति

पं. दौलतरामजी कृत

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन ॥

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमण्डित अपार ॥१॥

जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत
भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ॥२॥

तुम गुण चिंतत निज-पर विवेक, -प्रकटै विघटैं आपद अनेक
तुम जगभूषण दूषण-विमुक्त, सब महिमा-युक्त विकल्प-मुक्त ॥३॥

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप
शुभ-अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अक्षीण ॥४॥

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवल-लब्धिरमा धरंत ॥५॥

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि ॥६॥

यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज ।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥७॥

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप
निज को पर का करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥८॥

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि
तन परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार ॥९॥

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश
पशु नारक नर सुरगति मँझार, भव धर-धर मर्यो अनंत बार ॥१०॥

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व, चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद ॥११॥

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव ॥१२॥

आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन ॥१३॥

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप ॥१४॥

शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय ॥१५॥

त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज ॥१६॥

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सँभार ॥

जिनवाणी-स्तुति

मिथ्यातम नासवे को, ज्ञान के प्रकासवे को,
आपा-पर भासवे को, भानु-सी बखानी है ।
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध-विधि भानवे को,

स्व-पर पिछानवे को, परम प्रमानी है ॥

अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को,
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है ।
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को,
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है ॥

हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिन रैन,
जो तेरी शरणा गहै, सो पावे सुख चैन ।
जा वाणी के ज्ञान तें, सूझे लोकालोक,
सो वाणी मस्तक नवों, सदा देत हों ढोक ॥

आराधना-पाठ

पं. द्यानतरायजी कृत

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं ।
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं ॥
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना ।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना ॥१॥

चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं ।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदितैं पातक नसैं ॥
गिरनार शिखर समेद चाहूँ, चम्पापुर पावापुरी ।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी ॥२॥

नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं ।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासों भय हरों ॥
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा ।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा ॥३॥

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूँ भाव सों ।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हरख उछाव सों ॥
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों ।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों ॥४॥

मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों ।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों ।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ ॥५॥

भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं ।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं ॥
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना ।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना ॥६॥

मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सों करौं ।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, और आरँभ परिहरौं ॥
इस दुखद पंचमकाल माहीं, सुल श्रावक मैं लह्यौ ।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ ॥७॥

आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी ।
तु कृपानाथ अनाथ `द्यानत' दया करना न्याय जी ॥
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये ।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये ॥८॥

इह-विधि-मंगल-आरति

यह विधि मंगल आरती कीजै,
पंच परम पद भज सुख लीजै ।

प्रथम आरती श्री जिनराजा,
भवदधि पार उतार जिहाजा ॥ यह ॥

दूजी आरती सिद्धन केरी,
सुमरत करत मिटे भव फेरी ॥ यह ॥

तीजी आरती सूर मुनिंदा,
जनम-मरण दुःख दूर करिंदा ॥ यह ॥

चौथी आरती श्री उवझाया,
दर्शन करत पाप पलाया ॥ यह ॥

पाँचवीं आरती साधु तुम्हारी,
कुमति विनाशन शिव अधिकारी ॥ यह ॥

छठी ग्यारह प्रतिमा धारी,
श्रावक बंदू आनंद कारी ॥ यह ॥

सातवीं आरती श्री जिनवाणी,
धानत स्वर्ग मुक्ति सुखदानी ॥ यह ॥

संझा करके आरती कीजे,
अपनो जनम सफल कर लीजे ॥ यह ॥

सोने का दीपक, रत्नों की बाती,
आरती करूँ मैं, सारी-सारी राती ॥ यह ॥

जो कोई आरती करे करावे
सो नर-नारी अमर पद पावे ॥ यह ॥

आलोचना-पाठ

श्री जौहरीलालजी कृत

दोहा

वंदो पांचो परम - गुरु, चौबिसों जिनराज
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज ॥१॥

सखी छन्द

सुनिए जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी
तिनकी अब निवृति काजा, तुम शरण लही जिनराजा ॥२॥

इक बे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा
तिनकी नहि करुणा धारी, निरदई हो घात विचारी ॥३॥

समरम्भ समारंभ आरम्भ, मन वच तन कीने प्रारम्भ
कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिके ॥४॥

शत आठ जु इमि भेदनतै, अघ कीने परिछेदन तै
तिनकी कहुं कोलो कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥

विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के
वश होय घोर अघ कीने, वचतै नहि जाय कहीने ॥६॥

कुगुरून की सेवा किनी, केवल अदया करि भीनी
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँ गति मधि दोष उपायों ॥७॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सो द्रग जोरी
आरम्भ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८॥

सपरस रसना घ्रानन को, द्रग कान विषय सेवन को
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥९॥

फल पञ्च उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये
नहि अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुव्यसन दुखकारे ॥१०॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यो त्यों करि उदर भरायो ॥११॥

अनन्तानुबन्धी सो जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यनो
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश गुनिये ॥१२॥

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग
पनबीस जू भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई
फिर जागी विषय वन धायो, नाना विध विष फल खायो ॥१४॥

आहार विहार निहारा, इनमे नहि जतन विचारा
बिन देखि धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो
कछु सुधि बुधि नाहि रही है, मिथ्यामति छाय गई हैं ॥१६॥

मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी
भिन भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषै सब पइये ॥१७॥

हा हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहि लीनी ॥१८॥

प्रथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो ॥१९॥

हा हा ! मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी
तामधि जीवन के खंदा, हम खाए धरी आनंदा ॥२०॥

हा हा ! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई
तामध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥

बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो
झाड़ू ले जागाँ बुहारी, चींटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी
नहिं जल थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥

जल मल मोरिन गिरवायो, क्रमि कुल बहु घात करायो
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥

अन्नादिक शोध कराई, तातें जु जीव निसराई
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥२५॥

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरम्भ हिंसा साजै
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी ॥२६॥

इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवंता
संतति चिरकाल उपाई, वाणी तै कहिय न जाई ॥२७॥

ताको जु उदय अब आयो, नाना विध मोहि सतायो
फल भुंजत जिय दुःख पावै, वचतै कैसे करि गावै ॥२८॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी
हम तो तुम शरण लहि है, जिन तारन विरद सही हैं ॥२९॥

इक गाँवपति जो होवे, सो भी दुखिया दुःख खोवै
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी ॥३०॥

द्रोपदी को चीर बढायो, सीता प्रति कमल रचायो
अंजन से किये अकामी, दुःख मेटो अंतरजामी ॥३१॥

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनों विरद सम्हारो
सब दोष रहित करि स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥

इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ
रागादिक दोष हरिजे, परमातम निज पद दीजे ॥३३॥

:दोहा:
दोष रहित जिनदेव जी, निज पद दीज्यो मोय
सब जीवन के सुख बढ़े, आनन्द मंगल होय ॥
अनुभव माणिक पारखी, जौहरी आप जिनन्द
येही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द ॥

दुखहरन-विनती

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुम्हारा बाना है
मत मेरी बार अबार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है ॥टेक॥

त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुम सों कछु बात न छाना है
मेरे उर आरत जो वरतैं, निहचैं सब सो तुम जाना है ॥१॥

अवलोक विथा मत मौन गहो, नहिं मेरा कहीं ठिकाना है
हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मैं तुमसों हित ठाना है ॥२॥

सब ग्रंथनि में निरग्रंथनि ने, निरधार यही गणधार कही
जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक ज्ञानमही ॥३॥

यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही
क्यों मेरी बारी बिलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही ॥४॥

काहू को भोग मनोग करो, काहू को स्वर्ग विमाना है
काहू को नाग नरेशपती, काहू को ऋद्धि निधाना है ॥५॥

अब मो पर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है
इंसाफ करो मत देर करो, सुखवृन्द भरो भगवाना है ॥६॥

खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है
तुम ही समरत्थ न न्याय करो, तब बंदे का क्या चारा है ॥७॥

खल घालक पालक बालक का नृपनीति यही जगसारा है
तुम नीतिनिपुण त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है ॥८॥

जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमही को माना है
तुमरे ही शासन का स्वामी, हमको शरना सरधाना है ॥९॥

जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसौं जमराज डराना है
यह सुजस तुम्हारे सांचे का, सब गावत वेद पुराना है ॥१०॥

जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है
अघ छोटा मोटा नाशि तुरत, सुख दिया तिन्हें मनमाना है ॥११॥

पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढ़ा असमाना है
भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है ॥१२॥

चिंतामणि पारस कल्पतरु, सुखदायक ये सरधाना है
तव दासन के सब दास यही, हमरे मन में ठहराना है ॥१३॥

तुम भक्तन को सुर इंदपदी, फिर चक्रपती पद पाना है
क्या बात कहों विस्तार बड़ी, वे पावैं मुक्ति ठिकाना है ॥१४॥

गति चार चुरासी लाख विषैं, चिन्मूरत मेरा भटका है
हो दीनबंधु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है ॥१५॥

जब जोग मिला शिवसाधन का, तब विघन कर्म ने हटका है
तुम विघन हमारे दूर करो सुख देहु निराकुल घट का है ॥१६॥

गज-ग्राह-ग्रसित उद्धार किया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है
ज्यों सागर गोपदरूप किया, मैना का संकट टारा है ॥१७॥

ज्यों सूलीतें सिंहासन औ, बेड़ी को काट बिडारा है
त्यौं मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है ॥१८॥

ज्यों फाटक टेकत पायं खुला, औ सांप सुमन कर डारा है
ज्यों खड्ग कुसुम का माल किया, बालक का जहर उतारा है ॥१९॥

ज्यों सेठ विपत चकचूरि पूर, घर लक्ष्मी सुख विस्तारा है
त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु, मोकूं आस तुम्हारा है ॥२०॥

यद्यपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है
चिन्मूरति आप अनंतगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है ॥२१॥

तद्यपि भक्तन की भीरि हरो, सुख देत तिन्हें जु सुहाना है
यह शक्ति अचिंत तुम्हारी का, क्या पावै पार सयाना है ॥२२॥

दुखखंडन श्रीसुखमंडन का, तुमरा प्रण परम प्रमाना है
वरदान दया जस कीरत का, तिहुंलोक धुजा फहराना है ॥२३॥

कमलाधरजी! कमलाकरजी! करिये कमला अमलाना है
अब मेरि विथा अवलोकि रमापति, रंच न बार लगाना है ॥२४॥

हो दीनानाथ अनाथ हितू, जन दीन अनाथ पुकारी है
उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है ॥२५॥

ज्यों आप और भवि जीवन की, तत्काल विथा निरवारी है
त्यों 'वृंदावन' यह अर्ज करै, प्रभु आज हमारी बारी है ॥२६॥

युगलजी कृत

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला
तो भी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला ॥१॥

सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है ॥२॥

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिए
परिवार और कुटुंब है क्या? वृद्धि नय पर तोलिए ॥३॥

संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है ॥४॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, लो जहाँ भी प्राप्त हो
यह दिव्य अंतस्तत्त्व जिससे, बंधनों से मुक्त हो ॥५॥

पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात जिसके दुःख भरा ॥६॥

मैं कौन हूँ आया कहाँ से! और मेरा रूप क्या?
संबंध दु:खमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ॥७॥

इसका विचार विवेक पूर्वक, शांत होकर कीजिए
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धांत का रस पीजिए ॥८॥

किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है ॥९॥

तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिए
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिए ॥१०॥

बाईस-परीषह

आ. ज्ञानमती कृत

देवशास्त्र गुरु को नमू, नमू जोड़ के हाथ
द्वाविंशति परिषह लिखूं, लखूँ स्वात्म सुखनाथ ॥
आप आप में नित बसूं, मिटे सकल परिताप
निज आतम वैभव भजूं, संजू आपको आप ॥

अग्नि शिखा सम क्षुदा वेदना, मुनिजन वन में सहते हैं
बेला तेला पक्ष मास का, अनशन कर तप तपते हैं
नरक पशुगति क्षुदा वेदना, का नित चिन्तन करते हैं
इस विधि आतम चिंतनकर नित, क्षुदा परिषह सहते हैं ॥१॥

ग्रीष्मकाल में तन तपने से, प्यास सताती यतियों को
तपा तपा तन कर्म खिपाते, चहुंगति पीर मिटाने को ॥
प्यास पीर को चीर चीरकर, शांति नीर को पीते हैं
इस विधि मुनिजन प्यास परिषह, ग्रीष्म ऋतु में सहते हैं ॥२॥

कप कप कप कपती रहती, शीत पवन से देह सदा
तथापि आतम चिंतवन में वे, कहते मम यह काय जुदा ॥
शीतकाल में सरिता तट पर, ऋषिगण ध्यान लगाते हैं
कर्मिंधन को जला जलाकर, शीत परिषह सहते हैं ॥३॥

तप्त धरातन अन्तरतल में, धग धग धग धग करती है
उपर नीचे आगे पीछे, दिशि में तप तप तपता है ॥
तप्तशिला पर बैठे साधुजन, तथापि तपरत रहते हैं
निर्जन वन में अहो निरंतर, उष्ण परिषह सहते हैं ॥४॥

दंश मक्षिका की परिषह को, मुनिजन वन में सहते हैं
रात समय में खड़े-खड़े वे, आतम चिंत्तवन करते हैं ॥
डांस मक्खियां मुनि तन पर जब, कारखून को पीते हैं
नहीं उड़ाकर उन जीवों पर, समता रख नित सहते हैं ॥५॥

नग्न तन पर कीड़े निश दिन, चढ़कर डसते रहते हैं
दुष्ट लोग भी नग्न मुनिश्वर, समता धर नित सहते हैं ॥
इन सबको वे नग्न देखकर, खिलखिलकर हंसते रहते हैं
निर्विकार बन निरालम्ब मुनि, नग्न परिषह सहते हैं ॥६॥

तन रति तजकर तपरत होकर, मुनि जब वन में रहते हैं

क्रूर प्राणिजन सदा मुनि के, निकट उपस्थित रहते हैं ॥
तथापि आगमरूपी अमृत, पी मुनि ध्यान लगाते हैं
अमृत पीकर निर्भय होकर, अरति परिषह सहते हैं ॥७॥

काम वाण से उद्रेकित, यौवन वती वनिता आती है
निर्जन वन में देख मुनि को, मधुर स्वरों में गाती है ॥
तथापि अविचल निर्विकार मुनि, वनिता परिषह सहते हैं
आत्म ब्रह्म में दृढतर रह मुनि, कर्म निर्जरा करते हैं ॥८॥

कंकर पत्थर चुभकर पथ में, घाव बना कर पगतल में
कमलपत्र सम कोमल पग से, खून बह रहा जंगल में ॥
तथापि मुनिजन मुक्तिरमा से, रति रख चलते रहते हैं
मुमुक्षु बनकर मोक्षमार्ग में, चर्या परिषह सहते हैं ॥९॥

गिरि गुफा या कानन में जब, कठिनासन पर ऋषि रहते
कई उपद्रव होने पर भी, आसन विचलित नहि करते ॥
अचलासन पर अपने मन को, स्थापित अपने में करते
मुक्तिरमा पाने को मुनि, निषध्या परिषह को सहते ॥१०॥

ध्यान परिश्रम शम करने यति, दो घड़ी निशि में सोते हैं
तथापि मन को वश रख निद्रा, एक करवट से लेते हैं ॥
तदा मुनि पर महा उपद्रव, वन पशु करते रहते हैं
तथापि करवट अविचल रखकर, शय्या परिषह सहते हैं ॥११॥

अज्ञानी जन गाली देकर, पागल कह कर हँसते हैं
वचन तिरस्कार कह फिर नंगा, लुच्चा कहते रहते हैं ॥
दुष्टों से मुनि गाली सुनकर, जरा भी क्लेश नहीं करते
समता सागर बन मुनि इस, आक्रोश परिषह को सहते ॥१२॥

सघन वनों में व शहरों में, जब मुनि विहार करते हैं
दुष्ट जनों के वध बन्धन, ताड़न भी पथ सहते हैं ॥
प्राण हरण करने वाले उस, वध परिषह को सहते हैं
क्षमता रख मुनि मौन धार कर, कर्म निर्जरा करते हैं ॥१३॥

अहो कलेवर सूख गया है, रोग भयानक होने से
तथापि मुनिवर अनशन करते, भय नहीं रखते कर्मों से ॥

ऐसे मुनिवर पुर में आ जब, अहो पारणा करते हैं
औषधि जल तक नहीं याचना, करते परिषह सहते हैं ॥१४॥

पक्ष मास का अनशन कर मुनि, गमन नगर में जब करते
अन्नादिक का लाभ नहीं होने, पर तब वापिस आते ॥
उस दिन उदराग्नि की पीड़ा, क्षण-क्षण पल-पल में सहते
अहोसाधना पथ पर इस विध, अलाभ परिषह मुनि सहते ॥१५॥

भस्म भगंदर कुष्ट रोग के, होने पर भी नहीं डरते
सतत वेदना रहने पर भी, उसका इलाज नहीं करते ॥
जन्म जरा जो महारोग का, निशिदिन इलाज करते हैं
तन रोगों पर समता रख कर, रोग परिषह सहते हैं ॥१६॥

शुष्क पत्र जल कण तन पर, गिरने से खुजली चलती रहती
तथापि मुनिवर नहीं खुजाते, वह तो चलती ही रहती ॥
कण-कण कंकर कंटक चुभते, गमन समय में जंगल में
इस तृण स्पर्श परिषह सह मुनि, कर्म खिपाते पल-पल में ॥१७॥

पाप कर्म मल विनाश करने, मन परिषह मुनि नित सहते
जल जीवों पर दया धारकर, स्नान को हमेशा तजते ॥
श्रुत गंगा में वीतराग जल से, स्नान किया करते
तथापि मुनिवर अर्धजले, शव के सम निशदिन हैं दिखते ॥१८॥

मुनि की स्तुति नमन प्रशंसा, करना यह सुन है सत्कार
आगे रखकर पीछे चलना, पुरस्कार हैं गुण भंडार ॥
परन्तु यदि कोई जग मे, स्तुति या विनयादिक नहीं करते
पुरस्कार सत्कार परिषह को, नित तब मुनि है सहते ॥१९॥

मैं पंडित हूं ज्ञानी हूं मैं, द्वादशांग का पाठी हूँ
इस जग में महाकवि हूँ, सब तत्वों का ज्ञाता हूँ ॥
इस विध बुध मुनि कदापि मन में, वृथा गर्व नहीं करते हैं
निरभिमान हो मोक्षमार्ग में, प्रज्ञा परिषह सहते हैं ॥२०॥

अहो सुनो यह ज्ञानहीन मुनि, वृथा जगत में तप तपता
कठिन तपस्या करने पर भी, श्रुत में विकास नहीं दिखता ॥
इस विध मुनि को मूढमति जन, वचन तिरस्कृत कर कहते

तदा कर्म का पाक समझ, अज्ञान परिषह मुनि सहते ॥२१॥

मैं तप तपता दीर्घकाल से, पर कुछ अतिशय नहीं दिखता
सुरजन अतिशय करते कहना, मात्र कथन ही है दिखता ॥
इस विध दृगधारी मुनि मन में, कलूष भावना ही रखते हैं
पर वांछा को छोड़ अदर्शन, परिषह नित मुनि सहते हैं ॥२२॥

॥इति बाईस परीषह समाप्त:॥

सामायिक-पाठ

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥

शरीरत: कर्तुमनंतशत्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्
जिनेंद्र कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति: ॥२॥

दु:खे सुखे वैरिणि बंधुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा
निराकृताशेषममत्वबुद्धे:, समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निखाताविव विंबिताविव
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो धुनाना हृदि दीपिकाविव ॥४॥

एकेन्द्रियाद्य यदि देव! देहिन:, प्रमादत: संचरता इतस्तत:
क्षता: विभिन्ना मिलिता निपीडितास्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना:, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया
चारित्र शुद्धेर्यदकारि लोपनं,तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं मनोवच: कायकषायनिर्मितम्
निहन्मि पापं भवदु:खकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्मण:
व्यधामनाचारमपि प्रमादत: प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

क्षतिं मन:शुद्धविधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम्

प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद् यदि किञ्चनोक्तम्
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

बोधि: समाधि: परिणामशुद्धि:, स्वात्मोपलब्धि: शिवसौख्यसिद्धि:
चिंतामणिं चिंतितवस्तुदाने, त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि! ॥११॥

य: स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृंदै:, य: स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रै:
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रै:, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभाव:, समस्तसंसारविकारबाह्य:
समाधिगम्य: परमात्मसंज्ञ:, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

निषूदते यो भवदु:खजालं, निरीक्षते यो जगदंतरालं
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीय:, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्व्यतीत:
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंक: स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गा, रागादयो यस्य न संति दोषा:
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपाय:, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्ते:, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबंध:
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

न स्पृश्यते कर्मकलंकदोषै:, यो ध्वांतसंघैरिव तिग्मरश्मि:
निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१७॥

विभासते तत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

विभासते तत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्

शुद्धं शिवं शांतमनाद्यनंतं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मित:
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विष:, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मत: ॥२२॥

न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम्
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३॥

न संति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहं
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थ: सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै ॥२४॥

आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्ध:
एकाग्रचित्त: खलु यत्र तत्र स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

एक: सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मल: साधिगमस्वभाव:
बहिर्भवा: सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वता: कर्मभवा: स्वकीया: ॥२६॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्धं, तस्यास्ति विं पुत्रकलत्रमित्रै:
पृथक्कृते चर्मणि रोमवूâपा:, कतो हि तिष्ठंति शरीरमध्ये ॥२७॥

संयोगतो दु:खमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकांतारनिपातहेतुम्
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

नजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति कचन
विचारयन्नेवमनन्यमानस: परो ददातीति विमुंच शेमुषीम् ॥३१॥

यै: परमात्माऽमितगतिवंद्य:, सर्वविविक्तो भृशमनवंद्य:
शश्वदधीतो मनसि लभंते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥

इति द्वात्रिंशता वृत्तैः, परमात्मानमीक्षते
योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम् ॥३३॥

सामायिक-पाठ

आचार्य अमितगति कृत, हिंदी अनुवाद-युगलजी

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो
करुणा-स्रोत बहें दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥१॥

यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥२॥

सुख-दुख, वैरी-बन्धु वर्ग में, काँच-कनक में समता हो
वन-उपवन, प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो ॥३॥

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ
वह सुंदर-पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥४॥

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ॥५॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जायें सद्भावों से ॥६॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत
अपनी निंदा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त ॥७॥

सत्य-अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया ।
व्रत-विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया ॥८॥

कभी वासना की सरिता का, गहन-सलिल मुझ पर छाया ।
पी-पी कर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया ॥९॥

मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया ॥१०॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे
निर्मल जल की सरिता-सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥११॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥१२॥

दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे ॥१३॥

जो भवदु:ख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥१४॥

मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत ।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥१५॥

निखिल-विश्व के वशीकरण जो, राग रहे ना द्वेष रहे
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे ॥१६॥

देख रहा जो निखिल-विश्व को, कर्मकलंक विहीन विचित्र
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥१७॥

कर्मकलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्यप्रकाश
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१८॥

जिसकी दिव्यज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्यप्रकाश
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१९॥

जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ
आदि-अन्त से रहित शान्त शिव, परमशरण मुझको वह आप्त ॥२०॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव
भय-विषाद-चिन्ता सब जिसके, परम शरण मुझको वह देव ॥२१॥

तृण, चौकी, शिल-शैल, शिखर नहीं, आत्मसमाधि के आसन ।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ॥२२॥

इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम
हेय सभी है विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम ॥२३॥

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥२४॥

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास
जग का सुख तो मृग-तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥२५॥

अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ॥२६॥

तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत-तिय-मित्रों से कैसे
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ॥२७॥

महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग
मोक्ष-महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥२८॥

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प-जालों को छोड़
निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व आतमा, फिर-फिर लीन उसी में हो ॥२९॥

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते
करें आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ॥३०॥

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि ॥३१॥

निर्मल, सत्य, शिवं, सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥३२॥

(दोहा)
इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं ॥

सामायिक-पाठ

कविवर महाचंद्र कृत

१. प्रतिक्रमण कर्म

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुःख भारी,
जन्म मरण नित किये पापको है अधिकारी,
कोटि भवांतर मांहि मिलन दुर्लभ सामायिक,
धन्य आज मैं भयो जोग मिलियो सुखदायक ॥
हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब,
ते सब मन वच काय योगकी गुप्ति बिना लभ,
आप समीप हजूरमांहि मैं खडो खडो सब,
दोष कहुं सो सुनो करो नठ दुःख देहि जब ॥
क्रोध मान मद लोभ मोह मायावश प्रानी,
दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहि आनी,
बिना प्रयोजन एक इन्द्रि बि ति चउ पंचेंद्रिय,
आप प्रसादहि मिटे जो लग्यो मोहि जिय ॥
आपसमे इक ठौर थापि करी जे दुःख दीने,
पेलि दिये पगतलें दाबि करी प्राण हरीने,
आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक,
अरज करुं मैं सुनो, दोष मेटो दुःखदायक ॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय,
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय,
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि,
यह पडिकोणो कियो आदि षटकर्ममांहि विधि ॥

२. प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमाद वश होय विराधे जीव घनेरे,
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे,
सो सब झूठो होहु जगतपतिके परसादै,
जा प्रसादतैं मिले सर्व सुख, दुःख न लाधैं ॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ,
किये पाप अति घोर पापमति होय चित्त दुठ,
निंदू हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं,
सब विधि धर्म उपाय पाय फिरि पापहि करहूं ॥
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी,

सत्संगि संयोग धर्म जिन श्रद्धा धारी,
जिन वचनामृत धार समावर्तै जिनवानी,
तो हू जीव संहारे धिक् धिक् हम जानी ॥
इन्द्रियलंपट होय खोय निज ज्ञानजमा सब,
अज्ञानी जिम करै तिसी विधि हिंसक व्है ब,
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले,
ते सब दोष किये निंदूं अब मनवचतोले ॥
आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे,
ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे,
बारबार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता,
ईर्षादिकतैं भये निंदिये जे भयभीता ॥

३. सामायिक कर्म

सब जीवन में मेरे समता भाव जग्यो है,
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है,
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक,
संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायिक ॥
पृथिवी जल अर अग्नि वायु चउकाय वनस्पति,
पंचहि थावरमांहिं तथा त्रसजीव बसैं जित,
बे इन्द्रिय तिय चउ पंचेन्द्रिय मांहिं जीव सब,
तिनसैं क्षमा कराऊं मुझ पर क्षमा करो अब ॥
इस अवसर में मेरे सब सम कंचन अरु तृण,
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहु सम गण,
जन्म मरन समान जान हम समता कीनी,
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी ॥
मेरो है इक आतम तामैं ममत जु कीनो,
और सबै मम भिन्न जानि समता रस भीनो,
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह,
मोतैं न्यारे जानि यथारथ रुप कर्यो गह ॥
मैं अनादि जगजाल मांहि फँसि रुप न जाण्यो,
एकेंन्द्रिय दे आदि जंतु को प्राण हराण्यो,
ते अब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी,
भवभव को अपराध क्षमा कीज्यो करी मरजी ॥

४. स्तवन कर्म

नमौं रिषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको,

संभव भवदु:खहरन करन अभिनंद शर्मको,
सुमति सुमतिदातार तार भवसिंधु पार कर,
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीतिप्रीति धर ॥
श्री सुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर,
श्री चंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांति धर,
पुष्पदंत दमि दोषकोष भवि पोष रोष हर,
शीतल शीतल-करन हरन भवताप दोष हर ॥
श्रेयरुप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन,
वासुपूज्य शत पूज्य वासवादिक भवभय हन,
विमल विमलमति देन अंतगत है अंनत जिन,
धर्म शर्म शिवकरन शांति जिन शांति विधायिन ॥
कुंथु कुंथुमुख जीवपाल अरनाथ जालहर,
मल्लि मल्लसम मोहमल्ल मारन प्रचारधर,
मुनिसुव्रत व्रतकरन नमत सुरसंघहि नमि जिन,
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथ मांहि ज्ञानधन ॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपल सम मोक्ष रमापति,
वर्द्धमान जिन नमौं वमौं भवदु:ख कर्मकृत,
या विधि मैं जिनसंघ रुप चउवीस संख्य धर,
स्तवूं नमूं हूं बारबार वंदूं शिवसुखकर ॥

५. वंदना कर्म

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति,
वर्द्धमान अतिवीर वंदिहौं मनवचतनकृत,
त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं,
वंदूं नित प्रति कनकरुपतनु पाप निकंदूं ॥
सिद्धारथ नृपनंद द्वंद दु:ख दोष मिटावन,
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उद्धारन,
कुंडलपुर करि जन्म जगत जिय आनंदकारन,
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सबही दु:ख-टारन ॥
सप्त हस्त तनु तुंग भंग कृत जन्ममरनभय,
बाल ब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय,
दे उपदेश उद्धारि तारि भवसिंधु जीवघन,
आप बसे शिवमांहिं ताहि वंदौ मनवचतन ॥
जाके वंदन थकी दोष दु:ख दूरहि जावे,
जाके वंदन थकी मुक्तितिय सन्मुख आवे,
जाके वंदन थकी वंद्य होवैं सुरगनके,

ऐसे वीर जिनेश वंदि हौं क्रमयुग तिनके ॥
सामायिक षट्कर्ममांहिं वंदन यह पंचम,
वंदे वीर जिनेंद्र इन्द्रशतवंद्य वंद्य मम,
जन्ममरण भय हरो करो अघशांति शांतिमय,
मैं अघकोश सुपोष दोष को दोष विनाशय ॥

६. कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करुं अंतिम सुखदाई,
काय त्यजनमय होय काय सबको दुखदाई,
पुरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं,
जिनगृह वंदन करुं हरुं भव पापतिमिर मैं ॥
शिरोनती मैं नमूं मस्तक कर धरिकैं,
आवतार्दिक क्रिया करुं मनवच मद हरिकैं,
तीनलोक जिनभवन मांहिं जिन हैं जु अकृत्रिम,
कृत्रिम हैं द्वयअर्द्धद्वीप मांहिं वंदौं जिम ॥
आठकोडिपरि छप्पन लाख जु सहस सत्याणुं,
च्यारि शतक परि असी एक जिनमंदिर जाणुं,
व्यंतर ज्योतिष मांहि संख्यरहिते जिनमंदिर,
जिनगृह वंदन करुं हरहु मम पाप संघकर ॥
सामायिक सम नाहि और कोउ वैर मिटायक,
सामायिक सम नाहि और कोउ मैत्रीदायक,
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक,
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुःखहानक ॥
जे भवि आतम काजकरण उद्यम के धारी,
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी,
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब,
बुध 'महाचंद्र' बिलाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥

सामायिक-पाठ

अमितगति आचार्य कृत सामायिक का पं रविन्द्रजी द्वारा हिंदी पद्यानुवाद

मेरा आतम सब जीवों पर, मैत्री भाव करे
गुण-गण मंडित भव्य जनों पर, प्रमुदित भाव रहे ॥
दीन दुखी जीवों पर स्वामी, करुणा भाव करे
और विरोधी के ऊपर नित, समता भाव धरे ॥१॥

तुम प्रसाद से हो मुझमें वह, शक्ति नाथ जिससे
अपने शुद्ध अतुल बलशाली, चेतन को तन से ॥
पृथक कर सकूं पूर्णतया मैं, ज्यों योद्धा रण में
खींचे निज तलवार म्यान से, रिपु सन्मुख क्षण में ॥२॥

छोडा है सब में अपनापन, मैनें मन मेरा
बना रहे नित सुख में दुख में, समता का डेरा ॥
शत्रु मित्र में मिलन विरह में, भवन और वन में
चेतन को जाना न पडे फिर, नित नूतन तन में ॥३॥

अंधकार नाशक दीपक सम, अडिग चरण तेरे
अहो विराजे रहें हमेशा, उर में ही मेरे ॥
हो मुनीश वे घुले हुए से या कीलित जैसे
अथवा खुदे हुए से हों या प्रतिबिंबित जैसे ॥४॥

हो प्रमादवश जहां तहां यदि, मैनें गमन किया
एकेंद्रिय आदिक जीवों को, घायल बना दिया ॥
प्रथक किया या भिडा दिया हो, अथवा दबा दिया
मिथ्या हो दुष्कृत वह मेरा, प्रभुपद शीश किया ॥५॥

चल विरुद्ध शिवपथ के मैने, जो दुर्मति होके
होके वश में दुष्ट इन्द्रियों, और कषायों के ॥
खंडित की जो चरित शुद्धि वह, दुष्कृत निष्फल हो
मेरा मन भी दुर्भावों को तजकर निर्मल हो ॥६॥

मंत्र शक्ति से वैद्य उतारें, ज्यों अहिविष सारा
त्यों अपनी निंदा गर्हा व, आलोचन द्वारा ॥
मन वच तन से या कषाय से, संचित अघ भारी
भव दुख कारण नष्ट करूं मैं, होकर अविकारी ॥७॥

धर्म क्रिया में मुझे लगा जो, कोइ अघकारी
अतिक्रम व्यतिक्रम अतीचार या अनाचार भारी ॥
कुमति प्रमाद निमित्तक उसका, प्रतिक्रमण करता
प्रायश्चित्त बिना पापों को कौन कहाँ धरता ॥८॥

चित्त शुद्धि की विधि की क्षति को, अतिक्रमण कहते
शील बाढ के उल्लंघन को, व्यतिक्रमण कहते ॥
त्यक्त विषय के सेवन को प्रभु, अतिचार कहते
विषयासक्तपने को जगमें अनाचार कहते ॥९॥

शास्त्र पठन में मेरे द्वारा, यदि जो कहीं कहीं
प्रमाद से कुछ अर्थ वाक्य पद मात्रा छूट गई ॥
सरस्वती मेरी उस त्रुटि को कृप्या क्षमा करे
और मुझे कैवल्यधाम में माँ अविलम्ब धरे ॥१०॥

वांछित फल गाती चिंतामणि, सदृश मात्र तेरा
वंदन करने वाले मुझको, मिले पता मेरा ॥
बोधि समधि विशुद्ध भावना, आत्म सिद्धि मुझको
मिले और मैं पा जाऊँ माँ मोक्ष महा सुख को ॥११॥

सब मुनिराजों के समूह भी, जिनका ध्यान करें
सुरों नरों के सारे स्वामी, जिन गुणगान करें ॥
वेद पुराण शास्त्र भी जिनके, गीतों के डेरे
वे देवों के देव विराजें, उर में ही मेरे ॥१२॥

जो अनंत द्रग ज्ञान स्वरूपी सुख स्वभाव वाले
भव के सभी विकारों से भी जो रहे निराले ॥
जो समाधि के विषयभूत हैं परमातम नामी
वे देवों के देव विराजें मम अर में स्वामी ॥१३।

जो भव दुख का जाल काटकर, उत्तम सुख वरतें
अखिल विश्व के अंत:स्थल का अवलोकन करते ॥
जो निज में लवलीन हुए प्रभू ध्येय योगियों के
वे देवों के देव विराजें मम उर के होके ॥१३॥

मोक्ष मार्ग के जो प्रतिपादक, सब जग उपकारी
जन्म मरण के संकटादि से, रहित निर्विकारी ॥
त्रिलोकदर्शि दिव्यशरीरी, सब कलंक नाशी
वे देवों के देव विराजें मम उर में अविनाशि ॥१४॥

आलिंगित हैं जिनके द्वारा, जग के सब प्राणी

वे रागादिक न जिनके, सर्वोत्तम ध्यानी ॥
इन्द्रिय रहित परम ज्ञानी जो, अविचल अविनाशी
वे देवों के देव विराजें मम उर के ही वासी ॥१५॥

जग कल्याणी परिणति से जो, व्यापक गुण राशी
भावी सिद्ध विबुद्ध जिनेश्वर, करूण पाश नाशी ॥
जिसने ध्येय बनाया उसके सकल दोष हारी
वे देवों के देव विराजें मम उर में अविकारी ॥१६॥

कर्म कलंक दोष भी जिनको, कभी न छू पाते
ज्यों रवि के सन्मुख न कभी भी, तम समूह आते ॥
नित्य निरंजन जो अनेक हैं, और एक भी हैं
उन अरहंत देव की मैनें सुखद शरण ली है ॥१७॥

जगत प्रकाशक जिनके रहते सूर्य प्रभाधारी,
किंचित भी ना शोभा पाता जिनवर अविकारी ॥
निज आतम में हैं जो सुस्थित, ज्ञान प्रभाशाली
उन अरहंत देव की मैनें सुखद शरण पा ली ॥१८॥

जिनका दर्शन पा लेने पर, प्रकट झलक आता
अखिल विश्व से भिन्न आत्मा, जो शाश्वत ज्ञाता
शुद्ध शांत शिवरूप आदि या अंत विहीन बली
उन अरहंत देव की मुझको अनुपम शरण मिली ॥१९॥

जो मद मदन ममत्व शोक भय, चिंता दुख निद्रा
जीत चुके हैं निज पौरुष से, कहती जिनमुद्रा ॥
ज्यों दावानल तरु समूह को शिघ्र जला देता
उन अरहंत देव की मैं भी सुखद शरण लेता ॥२०॥

ना पलाल पाषाण न धरती, हैं संस्तर कोई
ना विधि पूर्वक रचित काठ का पाटा भी कोई ॥
कारण इन्द्रिय वा कषाय रिपु, जीते जो ध्यानी
उसका आतम ही शुचि संस्तर माने सब ज्ञानी ॥२२॥

ना समाधि का साधन संस्तर, नहीं लोकपूजा
ना मुनिसंघों का सम्मेलन, या कोइ दूजा ॥

इसीलिये हे भद्र सदा तुम, आतम लीन बनों
तज बाहर की सभी वासना, कुछ ना कहो सुनो ॥२३॥

पर पदार्थ कोई ना मेरे, थे होंगे ना हैं
और कभी उनका त्रिकाल में हो पाऊँगा मैं ॥
ऐसा निर्णय करके पर के, चक्कर को छोडो
स्वस्थ रहो नित भद्र मुक्ति से तुम नाता जोडो ॥२४॥

तुम अपने में अपना दर्शन, करने वाले हो
दर्शन ज्ञानमयी शुद्धातम, पर से न्यारे हो ॥
जहाँ कहीं भी बैठे मुनिवर, अविचल मनधारी
वहीं समाधी लगे उनकी जो, उनको अति प्यारी ॥२५॥

नित एकाकी मेरा आतम, नित अविनाशी है
निर्मल दर्शन ज्ञान स्वरूपी, स्वपर प्रकाशी है ॥
देहादिक या रागादिक जो, कर्म जनित दिखते
क्षण भंगुर हैं वे सब मेरे, कैसे हो सकते ॥२६॥

जहाँ देह से नहीं एकता, तो जीवन साथी
वहाँ मित्र सुत वनिता कैसे हो मेरे साथी ॥
इस काया से ऊपर से यदि, चर्म निकल जाए
रोम छिद्र तब कैसे इसके बीच ठहर पाए ॥२७॥

भव वन में संयोगों से यह, संसारी प्राणी
भोग रहा है कष्ट अनेकों कह न सके वाणी ॥
अत: त्याज्य है मन वच तन से वह संयोग सदा
उसको जिसको इष्ट हितैषी मुक्ति विगत विपदा ॥२८॥

भव वन में पडने के कारण, हैं विकल्प सारे
उनका जाल हटाकर पहुँचो शिवपुर के द्वारे ॥
अपने शुद्धातम का दर्शन तुम करते करते
लीन रहो परमात्म तत्त्व में दु:खो को हरते ॥२९॥

किया गया जो कर्म पूर्व में, स्वयं जीव द्वारा
उसका ही फल मिले शुभाशुभ, अन्य नहीं चारा
औरों के कारण यदि प्राणी, सुख दुख को पाता

तो निज कर्म अवश्य ही, निष्फल हो जाता ॥३०॥

अपने अर्जित कर्म बिना इस प्राणी को जग में
कोइ अन्य न सुख दुख देता, कहीं किसी डग पे ॥
ऐसा अडिग विचार बनाकर, तुम निज को मोडो
अन्य मुझे सुख दुख देता है ऐसी हठ छोडो ॥३१॥

परमातम सबसे न्यारे हैं, अतिशय अविकारी
संत अमितगति से वंदित हैं, शम दम समधारी ॥
जो भी भव्य मनुज प्रभुवर को, नित उर में लाते
वे निश्चित ही उत्तम वैभव मोक्ष महल पाते ॥३२॥

जो ध्याता जगदीश को, लेय पद बत्तीस
अचल चित्त होकर वही, बने अचल पद ईश ॥३३॥

निर्वाण-कांड

भैया भगवतीदास कृत

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय
कहुं कांड निर्वाण की भाषा सुगम बनाय ॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामी, बासु पूज्य चंपापुरनामी
नेमिनाथस्वामी गिरनार वंदो, भाव भगति उरधार ॥1॥

चरम तीर्थंकर चरम शरीर, पावापुरी स्वामी महावीर
शिखर सम्मेद जिनेसुर बीस, भाव सहित वंदौं निशदीस ॥2॥

वरदतराय रूइंद मुनिंद, सायरदत्त आदिगुणवृंद
नगरतारवर मुनि उठकोडि, वंदौ भाव सहित करजोड़ि ॥3॥

श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोडि बहत्तर अरू सौ सात
संबु प्रदुम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय ॥4॥

रामचंद्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिंद आदि गुण धीर
पांचकोड़ि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि वंदौ निरधार ॥5॥

पांडव तीन द्रविड़ राजान आठकोड़ि मुनि मुक्तिपयान
श्री शत्रुंजय गिरि के सीस, भाव सहित वंदौ निशदीस ॥6॥

जे बलभद्र मुक्ति में गए, आठकोड़ि मुनि औरहु भये
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहूं काल ॥7॥

राम हणू सुग्रीव सुडील, गवगवाख्य नीलमहानील
कोड़ि निण्यान्वे मुक्ति पयान, तुंगीगिरी वंदौ धरिध्यान ॥8॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पांच कोड़ि अरू अर्ध प्रमान
मुक्ति गए सोनागिरि शीश, ते वंदौ त्रिभुवनपति इस ॥9॥

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गए रेवातट सार
कोड़ि पंच अरू लाख पचास ते वंदौ धरि परम हुलास ॥10॥

रेवा नदी सिद्धवरकूट, पश्चिम दिशा देह जहां छूट
द्वै चक्री दश कामकुमार, उठकोड़ि वंदौं भवपार ॥11॥

बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरिचूल उतंग
इंद्रजीत अरू कुंभ जु कर्ण, ते वंदौ भवसागर तर्ण ॥12॥

सुवरण भद्र आदि मुनि चार, पावागिरिवर शिखर मंझार
चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गयैं वंदौं नित तास ॥13॥

फलहोड़ी बड़ग्राम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप
गुरु दत्तादि मुनिसर जहां, मुक्ति गए बंदौं नित तहां ॥14॥

बाली महाबाली मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय
श्री अष्टापद मुक्ति मंझार, ते वंदौं नितसुरत संभार ॥15॥

अचलापुर की दिशा ईसान, जहां मेंढ़गिरि नाम प्रधान
साड़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चितलाय ॥16॥

वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥17॥

जशरथराजा के सुत कहे, देश कलिंग पांच सो लहे
कोटिशिला मुनिकोटि प्रमान, वंदन करूं जौर जुगपान ॥18॥

समवसरण श्री पार्श्वजिनेंद्र, रेसिंदीगिरि नयनानंद
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वंदौ नित धरम जिहाज ॥19॥

सेठ सुदर्शन पटना जान, मथुरा से जम्बू निर्वाण
चरम केवलि पंचमकाल, ते वंदौं नित दीनदयाल ॥20॥

तीन लोक के तीरथ जहां, नित प्रति वंदन कीजे तहां
मनवचकाय सहित सिरनाय, वंदन करहिं भविक गुणगाय ॥21॥

संवत् सतरहसो इकताल, आश्विन सुदी दशमी सुविशाल
'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाण कांड गुणमाल ॥22॥

वैराग्य-भावना

पं. भूधरदासजी कृत

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं
त्यों चक्री सुख में मगन, धर्म विसारै नाहिं ॥

इहविध राज करै नर नायक, भोगे पुण्य विशालो
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो ॥
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे
देखि श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥१॥

तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे
राज-रमा-वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे ॥२॥

मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी
भव-तन-भोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी ॥
इह संसार महा-वन भीतर, भ्रमते ओर न आवै

जामन मरण जरा दव दाझै, जीव महादु:ख पावै ॥३॥

कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन-भेदन भारी
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, वध-बन्धन भयकारी ॥
सुरगति में पर-सम्पत्ति देखे, राग उदय दु:ख होई
मानुषयोनि अनेक विपत्तिमय, सर्व सुखी नहिं कोई ॥४॥

कोई इष्ट-वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट-संयोगी
कोई दीन दरिद्री विगुचे, कोई तन के रोगी ॥
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी-सम भाई
किसही के दु:ख बाहिर दीखै, किस ही उर दुचिताई ॥५॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै
खोटी संतति सों दु:ख उपजै, क्यों प्राणी सुख सोवै ॥
पुण्य-उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दु:ख दाता ॥६॥

जो संसार-विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे
काहे को शिव-साधन करते, संजम सों अनुरागे ॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई ।
सागर के जल सों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई ॥७॥

सप्त कुधातु भरी मल मूरत, चाम लपेटी सोहै
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है ॥
नव मल द्वार स्रवैं निशि-वासर, नाम लिये घिन आवै
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै ॥८॥

पोषत तो दु:ख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है
यह तन पाय महातप कीजै, यामैं सार यही है ॥९॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावें, बैरी हैं जग जीके
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागे नीके ॥
वज्र अग्नि विष से विषधर से, ये अधिके दु:खदाई
धर्म रतन के चोर चपल अति, दुर्गति पन्थ सहाई ॥१०॥

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानें
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, तो सब कंचन मानें ॥
ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावे
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे ॥११॥

मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥
राज समाज महा अघ कारण, वैर बढ़ावन हारा
वेश्या-सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतियारा ॥१२॥

मोह महारिपु वैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे
तन कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान-चरन-तप, ये जिय के हितकारी
ये ही सार, असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥१३॥

छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि, अरु छोड़े संग साथी
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरण तृण-सम त्यागी
नीति विचार नियोगी सुत को, राज्य दियो बड़भागी ॥१४॥

होय निःशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे
श्रीगुरु चरन धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी
ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥१५॥

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पन्थ
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ ॥

स्वयंभू-स्तोत्र

आचार्य विद्यासागर कृत

आदिम तीर्थंकर प्रभो ! आदिनाथ मुनिनाथ,
आधि-व्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ
वृषका होता अर्थ है, दयामयी शुभ धर्म

वृष से तुम भरपूर हो, वृष से मिटते कर्म
दीनों के दुर्दिन मिटे, तुम दिनकर को देख
सोया जीवन जागता, मिटता अघ अविवेक
शरण चरण हैं आपके, तारण तरन जिहाज
भव दधि तट तक ले चलो, करुनाकर जिनराज ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री आदिनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

हार-जीत के हो परे, हो अपने में आप
विहार करते अजित हो, यथा नाम गुण छाप
पुण्य पुंज हो पर नहीं, पुण्य फलों में लीन
पर पर पामर भ्रमित हो, पल-पल पर आधीन
जित इन्द्रिय जित मद बने, जित भव विजित कषाय
अजितनाथ को नित नमूं, अर्जित दुरित पलाय
कोंपल पल-पल को पाले, वन में ऋतु पति आय
पुलकित मम जीवन लता, मन में जिन पद पाय ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री अजितनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

भव-भव भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता आज
संभव जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज
क्षण-क्षण मिटे द्रव्य हैं, पर्यय वश अविराम
चिर से हैं चिर ये रहें, स्वभाव वश अभिराम
परमार्थ का कथन यूँ, मंथन किया स्वयमेव
यतिपन पालें यतन से, नियमित यदि हो देव
तुम पद पंकज से प्रभु, झर-झर झरी पराग
जब तक शिव सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री संभवनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

गुण का अभिनन्दन करो, करो कर्म की हानि
गुरु कहते गुण गौण हो, किस विधि सुख हो प्राणि
चेतनवश तन शिव बने, शिव बिन तन शव होय
शिव की पूजा बुध करें, जड़ जन शव पर रोय
विषयों को विष बन तजूं, बनकर विषयातीत
विषय बना ऋषि ईश को, गाऊं उनका गीत
गुण धारे पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत
अभिनन्दन जिन ! नित नमूं, मुनि बन में भवभीत ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री अभिनंदननाथ जिनेंद्राय नमो नम:

बचूँ अहित से हित करूँ, पर न लगा हित हाथ
अहित साथ न छोड़ता, कष्ट सहूँ दिन-रात
बिगड़ी धरती सुधरती, मति से मिलता स्वर्ग
चारों-गतियाँ बिगड़ती, पा अघ मति संसर्ग
सुमतिनाथ प्रभु ! सुमति हो, मम मति है अति मंद
बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरंद
तुम जिन मेघ मयूर मैं, गरजो-बरसो नाथ
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री सुमतिनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

निरी छटा ले तुम छठे, तीर्थंकरों में आप
निवास लक्ष्मी के बने, रहित पाप संताप
हीरा-मोती पद्म ना, चाहूँ तुमसे नाथ
तुम सा तम-तामस मिटा, सुखमय बनूँ प्रभात
शुभ्र सरल तुम बाल तब, कुटिल कृष्ण तब नाग
तब चिति चित्रित ज्ञेय से, किन्तु न उसमें दाग
विराग पद्मप्रभ आपके , दोनों पाद सरग
रागी मम मन जा वहीँ, पीता तभी पराग ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री पद्मप्रभ जिनेंद्राय नमो नम:

यथा सुधाकर खुद सुधा, बरसाता बिन स्वार्थ
धर्मामृत बरसा दिया, मिटा जगत का आर्त
दाता देते दान हैं, बदले की ना चाह
चाह-दाह से दूर हो, बड़े-बड़ों की राह
अबंध भाते काटके, वसु विध विधि का बंध
सुपार्श्व प्रभु निज प्रभुपना, पा पाए आनंद
बांध-बांध विधि बंध मैं, अंध बना मति मंद
ऐसा बल दो अंध, को बंधन तोड़ूं द्वंद्व ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

सहन कहाँ तक अब करूँ, मोह मारता डंक
दे दो इसको शरण ज्यों, माता सुत को अंक
कौन पूजता मूल्य क्या, शून्य रहा बिन अंक
आप अंक हैं शून्य मैं, प्राण फूँक दो शंख
चन्द्र कलंकित किन्तु हो, चन्द्रप्रभ अकलंक

वह तो शंकित केतु से शंकर तुम निशंक
रंक बना हूँ मम अत:, मेटो मन का पंक
जाप जपूँ जिननाम का, बैठ सदा पर्यंक ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री चन्द्रप्रभ जिनेंद्राय नमो नम:

सुविधि ! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर,
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर
किस वन की मूली रहा, मैं तुम गगन विशाल
दरिया में खसखस रहा, दरिया मौन निहार
फिर किस विध निरखून तुम्हे, नयन करूँ विस्फार
नाचूँ गाऊँ ताल दूँ, किस भाषा में ढाल
बाल मात्र भी ज्ञान ना, मुझमें मैं मुनि बाल
बवाल भव का मम मिटे, तुम पद में मम भाल ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री सुविधिनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

चिंता छूती कब तुम्हें, चिंतन से भी दूर
अधिगम में गहरे गए, अव्यय सुख के पूर
युगों-युगों से युग बना, विघ्न अघों का गेह
युग द्रष्टा युग में रहें, पर ना अघ से नेह
शीतल चन्दन है नहीं, शीतल हिम ना नीर
शीतल जिन तब मत रहा, शीतल हरता पीर
सुचिर काल से मैं रहा, मोह नींद से सुप्त
मुझे जगाकर कृपा, प्रभो करो परितृप्त ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री शीतलनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

राग द्वेष अरु मोह ये, होते कारण तीन
तीन लोक में भ्रमित वह, दीं-हीन अघ लीन
निज क्या पर क्या स्व-पर क्या, भला बुरा बिन बोध
जिजीविषा ले खोजता, सुख ढोता तन बोझ
अनेकांत की कांति से, हटा तिमिर एकांत,
नितांत हर्षित कर दिया, क्लांत विश्व को शांत
नि:श्रेयस् सुख धाम हो, हे जिनवर ! श्रेयांस
तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लों घाट में श्वाँस ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री श्रेयांसनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

औ न दया बिन धर्म ना, कर्म कटे बिन धर्म

धर्म मम तुम समझकर, करलो अपना कर्म
वासुपूज्य जिनदेव ने, देकर यूँ उपदेश
सबको उपकृत कर दिया, शिव में किया प्रवेश
वसु-विध मंगल-द्रव्य ले, जिन पूजों सागार
पाप घटे फलत: फले,पावन पुण्य अपार
बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजों मुनि लोग
बिन निज शुभ उपयोग कल, शुद्ध ना उपयोग ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री वासुपूज्य जिनेंद्राय नमो नम:

काया-कारा में पला, प्रभु तो कारातीत
चिर से धारा में पड़ा, जिनवर धारातीत
कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल
मार दिया तुमने उसे, फाड़ा उसका गाल
मोह अमल वश समल बन, निर्बल मैं भगवान
विमलनाथ ! तुम अमल हो, संबल दो भगवान
ज्ञान छोर तुम मैं रहा, ना समझ की छोर
छोर पकड़कर झट इसे, खींचो अपनी ओर ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री विमलनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

आदि रहित सब द्रव्य हैं, ना हो इनका अंत
गिनती इनकी अंत से, रहित अनंत-अनंत
कर्त्ता इनका पर नहीं, ये न किसी के कर्म
संत बने अरिहंत हो, जाना पदार्थ धर्म
अनंत गुण पा कर दिया, अनंत भव का अंत
'अनंत' सार्थक नाम तब, अनंत जिन जयवंत
अनंत सुख पाने सदा, भव से हो भयवंत
अंतिम क्षण तक मैं तुम्हें, स्मरुं स्मरें सब संत ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री अनंतनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

जिससे बिछुड़े जुड़ सकें, रुदन रुके मुस्कान
तन गत चेतन दिख सके, वही धर्म सुखखान
विरागता में राग हो, राग नाग विष त्याग
अमृतपान चिर कर सकें, धर्म यही झट जाग
दयाधर्म वर धर्म है, अदया भाव अधर्म
अधर्म तज प्रभु 'धर्म ने', समझाया पुनि धर्म
धर्मनाथ को नित नमूं, सधे शीघ्र शिव शर्म

धर्म-मर्म को लख सकूँ, मिटे मलिन मम कर्म ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री धर्मनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

सकलज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूं नत-शीश
कामदेव हो काम से, रखते कुछ ना काम
काम रहे ना कामना, तभी बने सब काम
बिना कहे कुछ आपने, प्रथम किया कर्त्तव्य
त्रिभुवन पूजित आप्त हो, प्राप्त किया प्राप्तव्य
शांतिनाथ हो शांत कर, सातासाता सांत
केवल केवलज्योतिमय, क्लान्ति मिटी सब ध्वान्त ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री शांतिनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

ध्यान अग्नि से नष्ट कर, पप्रथम ताप परिताप
कुंथुनाथ पुरुषार्थ से, बने न अपने आप
उपादान की योग्यता, घट में ढलती सार
कुम्भकार का हाथ हो, निमित्त का उपकार
दीन-दयाल प्रभु रहे, करुणा के अवतार
नाथ-अनाथों के रहे, तार सको तो तार
ऐसी मुझपे हो कृपा, मम मन मुझमे आय
जिस विध पल में लवण है, जल में घुल मिल जाय ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री कुंथुनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

चक्री हो पर चक्र के, चक्कर में ना आय
मुमुक्षुपन जब जागता, बुभुक्षुपन भग जाय
भोगों का कब अंत है, रोग भोग से होय
शोक रोग में हो अत:, काल योग का रोय
नाम मात्र भी नहीं रखो, नाम काम से काम
ललाम आतम में करो, विराम आठों याम
नाम धरी 'अर' नाम तव, अत: स्मरूं अविराम
अनाम बन शिव धाम में, काम बनूँ कृत काम ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री अरनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

क्षार-क्षार भार है भरा, रहित सार संसार
मोह उदय से लग रहा, सरस सार संसार
बने दिगम्बर प्रभु तभी, अन्तरंग बहिरंग

गहरी-गहरी हो नदी, उठती नहीं तरंग
मोह मल्ल को मारकर, मल्लिनाथ जिनदेव
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षयपद स्वयमेव
बाल ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग
किसी वस्तु से राग ना, तुम पद से मम राग ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री मल्लिनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

निज में यति ही नियति है, ध्येय 'पुरुष' पुरुषार्थ
नियति और पुरुषार्थ का, सुन लो अर्थ यथार्थ
लौकिक सुख पाने कभी, श्रमण बनो मत भ्रात !
मिले धान्य जब कृषि करे, घास आप मिल जात
मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ
मात्र भावना मम रही, मुनिव्रत पालूँ यथार्थ
मैं भी 'मुनिसुव्रत' बनूँ, पावन पाय पदार्थ ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

मात्र नग्नता को नहीं, माना प्रभु शिव पंथ
बिना नग्नता भी नहीं, पावो पद अरहंत
प्रथम हते छिलका तभी, लाली हटती भ्रात
पाक कार्य फिर सफल हो, लो तब मुख में भात
अनेकांत का दास हो, अनेकांत की सेव
करूँ गहूँ मैं शीघ्र ही, अनेक गुण स्वयमेव
अनाथ मैं जगनाथ हो, नमिनाथ दो साथ
तव पद में दिन-रात हो, हाथ जोड़ नत माथ ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री नमिनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

राज तजा राजुल तजी, श्याम तजा बलराम
नाम धाम धन मन तजा, ग्राम तजा संग्राम
मुनि बन वन में तप सजा, मन पर लगा लगाम
ललाम परमातम भजा, निज में किया विराम
नील-गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन
नील कमल आसीन हो, नीलम से अति नील
शील-झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील
शील डोर मुझ बांध दो, डोर करो मत ढील ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री नेमीनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

रिपुता की सीमा रही, गहन किया उपसर्ग
समता की सीमा यही, ग्रहण किया अपवर्ग
क्या-क्यों किस विध कब कहें, आत्मध्यान की बात
पल में मिटती चिर बसी, मोह-अमा की रात
खास-दास की आस बस, श्वास-श्वास पर वास
पार्श्व ! करो मत दास को, उदासता का दास
ना तो सुर सुख चाहता, शिव सुख की ना चाह
तव थुति सरवर में सदा, होवे मम अवगाह ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथ जिनेंद्राय नमो नम:

क्षीर रहो प्रभु नीर मैं, विनती करूँ अखीर
नीर मिला लो क्षीर में, और बना दो क्षीर
अबीर हो, तुम वीर भी, धरते ज्ञान शरीर
सौरभ मुझमें भी भरो, सुरभित करो समीर
नीर-निधि से धीर हो, वीर बने गंभीर
पूर्ण तैरकर पा लिया, भवसागर का तीर
अधीर हो मुझ धीर दो, सहन करूँ सब पीर
चीर-चीर कर चिर लखूँ, अंतर की तस्वीर ॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री महावीर जिनेंद्राय नमो नम:

स्वयंभू-स्तोत्र-भाषा

पं. द्यानतरायजी कृत

राजविषैं जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भुवि शिवपद लियो ।
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान, बन्दौं आदिनाथ गुणखान ॥

इन्द्र क्षीरसागर-जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय ।
मदन-विनाशक सुख करतार, बन्दौं अजित अजित-पदकार ॥

शुकल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति-अघाति सकल दुखराशि ।
लह्यो मुकतिपद सुख अविकार, बन्दौं सम्भव भव-दु:ख टार ॥

माता पच्छिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार ।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, बन्दौं अभिनन्दन मन लाय ॥

सब कुवादवादी सरदार, जीते स्याद्वाद-धुनि धार ।
जैन-धरम-परकाशक स्वाम, सुतिदेव-पद करहुँ प्रनाम ॥

गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय ।
बरसे रतन पंचदश मास, नमौं पदमप्रभु सुख की रास ॥

इन्द फेनन्द नरिन्द त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल ।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौं सुपारसनाथ निहार ॥

सुगुन छियालिस हैं तु माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं ।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौं चन्द्रप्रभ राख समीप ॥

द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश ।
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, बन्दौं पुहुपदन्त मन आन ॥

भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय ।
आप समान सबनि सुख देह, बन्दौं शीतल धर्म-सनेह ॥

समता-सुधा कोप-विष नाश, द्वादशांग वानी परकाश ।
चार संघ आनंद-दातार, नमों श्रियांस जिनेश्वर सार ॥

रत्नत्रय चिर मुकुट विशाल, सोभै कण्ठ सुगुन मनि-माल ।
मुक्ति-नार भरता भगवान, वासुपूज्य बन्दौं धर ध्यान ॥

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी-ध्यानी हित-उपदेश ।
कर्म नाशि शिव-सुख-विलसन्त, बन्दौं विमलनाथ भगवन्त ॥

अन्तर-बाहिर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर-व्रत को धारि ।
सर्व जीव-हित-राह दिखाय, नमौं अनन्त वचन-मन लाय ॥

सात तत्त्व पंचास्तिकाय, अरथ नवों छ दरब बहु भाय ।
लोक अलोक सकल परकास, बन्दौं धर्मनाथ अविनाश ॥

पंचम चक्रवर्ती निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग ।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ बन्दौं हरषाय ॥

बहु थुति करे हरष नहिं होय, निन्दे दोष गहैं नहिं कोय ।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, बन्दौं कुन्थुनाथ शिव-भूप ॥

द्वादश गण पूजैं सुखदाय, थुति वन्दना करैं अधिकाय ।
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, बन्दौं अर-जिनवर-पद दोय ॥

पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह-समय वैराग ।
बाल-ब्रह्म पूरन-व्रत धार, बन्दौं मल्लिनाथ जिनसार ॥

बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करै पग लाग ।
नम: सिद्ध कहि सब व्रत लेहि, बन्दौं मुनिसुव्रत व्रत देहि ॥

श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति-भाव सों दियो अहार ।
बरसी रतन-राशि तत्काल, बन्दौं नमिप्रभु दीन-दयाल ॥

सब जीवन की बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वय बन्धन तोर ।
रजमति तजि शिव-तिय सों मिले, नेमिनाथ बन्दौं सुखनिले ॥

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फेनधार ।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमों मेरु-सम पारसस्वाम ॥

भव-सागर तैं जीव अपार, धरम-पोत में धरे निहार ।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान बन्दौं बहु बार ॥

चौबीसों पद-कमल-जुग, बन्दौं मन-वच-काय ।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥

आत्मबोध-शतक

आतम गुण के घातक चारों कर्म आपने घात दिए
अनन्तचतुष्टय गुण के धारक दोष अठारह नाश किए
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर अरिहंतों को नमन करूँ
आत्म बोध पाकर विभाव का नाश करूँ सब दोष हरु ॥1॥

कभी आपका दर्श किया ना ऐ सिद्धालय के वासी

आगम से परिचय पाकर मैं हुआ शुद्ध पद अभिलाषी
ज्ञान शरीरी विदेह जिनको वंदन करने मैं आया
सिद्ध देश का पथिक बना मैं सिद्धों सा बनने आया ॥2॥

छत्तीस मूलगुणों के गहने निज आतम को पहनाए
पाले पंचाचार स्वयं ही शिष्य गणों से पलवाए
शिवरमणी को वरने वाले जिनवर के लघुनंदन हैं
श्री आचार्य महा मुनिवर को तीन योग से वंदन है ॥3॥

अंग पूर्व धर उपाध्याय श्रीश्रुत ज्ञानमृत दाता हैं
ज्ञान मूर्ति पाठक दर्शन से पाते भविजन साता हैं
ज्ञान गुफा में रहने वाले कर्म शत्रु से रक्षित हैं
णमो उवज्झायाणं पद से भव्य जनों से वंदित हैं ॥4॥

आत्म साधना लीन साधुगण आठ बीस गुण धारी हैं
अनुपम तीन रत्न के धारक शिवपद के अधिकारी हैं
साधु पद से अर्हत होकर सिद्ध दशा को पाना है
अतः प्रथम इन श्री गुरुओं के पद में शीश नवाना है ॥5॥

धन्य धन्य जिनवर की वाणी आत्म बोध का हेतु है
निज आतम से परमातम में मिलने का एक सेतु है
जहाँ जहाँ पर द्रव्यागम है उनको भाव सहित वंदन
नमन भावश्रुत धर को मेरा मेटो भव भव का क्रंदन ॥6॥

निज भावों की परिणतिया ही कर्मरूप फल देती है
भावों की शुभ-अशुभ दशा ही दुख-सुख मय कर देती है
कर्म स्वरूप न जान सका मैं नोकर्मों को दोष दिया
नूतन कर्म बाँध कर निज को अनंत दुख का कोष किया ॥7॥

तन से एक क्षेत्र अवगाही होकर यद्यपि रहता हूँ
फिर भी स्वात्मचतुष्टय में ही निवास मैं नित करता हूँ
पर भावों मे व्यर्थ उलझ कर स्वातम को न लख पाया
भान हो रहा मुझे आज क्यों आतम रस न चख पाया ॥8॥

उपादान से पर न किंचित मेरा कुछ कर सकता है
नहीं स्वयं भी पर द्रव्यों को बना मिटा न सकता है

किंतु भ्रमित हो पर को निज का निज को पर कर्ता माने
अशुभ भाव से भव-कानन मे भटके निज न पहचाने ॥9॥

मिथ्यावश चैतन्य देश का राज कर्म को सौंप दिया
दुष्कर्मों ने मनमानी कर गुणोंद्यान को जला दिया
विकृत गुण को देख देख कर नाथ आज पछताता हूँ
कैसे प्राप्त करूँ स्वराज को सोच नही कुछ पाता हूँ ॥10॥

इक पल की अज्ञान दशा में भव-भव दुख का बँध किया
अनर्थकारी रागादिक कर पल भर भी न चैन लिया
विकल्प जितना सस्ता उसका फल उतना ही महँगा है
सुख में रस्ता छोटा लगता दुख में लगता लंबा है ॥11॥

मंद कषाय दशा में प्रभु के दिव्य वचन का श्रवण किया
किंतु मोह वश सम्यक श्रद्धा और नहीं अनुसरण किया
आत्मस्वरूप शब्द से जाना अनुभव से मैं दूर रहा
स्वानुभूति के बिना स्वयं के कष्ट दुःख हों चूर कहाँ ॥12॥

मेरे चेतन चिदाकाश में अन्य द्रव्य अवगाह नहीं
फिर भी देहादिक निज माने यह मेरा अपराध सही
नीरक्षीर सम चेतन तन से नित्य भिन्न रहने वाला
रहा अचेतन तन्मय चेतन अनंत गुण गहने वाला ॥13॥

जग में यश पाकर अज्ञानी मान शिखर पर बैठ गया
सबसे बड़ा मान कर निज को काल कीच में पैठ गया
पर को हीन मान निज-पर के स्वरूप से अनजान रहा
इक पल यश सौ पल अपयश में दिवस बिता कर दुःख सहा ॥14॥

विशेष बनने की आशा में नहीं रहा सामान्य प्रभो
साधारण में एकेन्द्रिय बन काल बिताया अनंत प्रभो
भाव यही सामान्य रहूं नित विशेष शिव पद पाना है
सिद्ध शिला पर नंत सिद्ध में समान होकर रहना है ॥15॥

मैं हूँ चिन्मय देश निवासी जहाँ असंख्य प्रदेश रहें
अनंत गुणमणि कोष भरे जग दुःख कष्ट न लेश रहें
जानन देखन काम निरंतर लक्ष्य मेरा निष्काम रहा

मेरा शाश्वत परिचय सुनलो आतम मेरा नाम रहा ॥16॥

स्पर्श रूप रस गंध रहित मैं शब्द अगोचर रहता हूँ
परम योगी के गम्य अनुपम निज में खेली करता हूँ
निराकार निर्बन्ध स्वरूपी निश्चय से निर्दोषी हूँ
स्वानुभूति रस पीने वाला निज गुण में संतोषी हूँ ॥17॥

निज भावों से कर्म बाँध क्यों पर को दोषी ठहराता
कर्म सज़ा ना देता इनको यह विकल्प तू क्यों लाता
कर्म न्याय करने मे सक्षम सुख-दुख आदिक कार्यों में
हस्तक्षेप न करना पर में विशेष गुण यह आर्यों में ॥18॥

गुरुदर्श गुरुस्नेह कृपा सच शिव सुख के ही साधन हैं
गुरु स्नेह पा मान करे तो होता धर्म विराधन है
अतः सुनो हे मेरे चेतन आतम नेह नहीं तजना
कृपा करो निज शुद्धातम पर मान यान पर न चढ़ना ॥19॥

नश्वर तन-धन की हो प्रशंसा सुनकर क्यों इतराते हो
कर्म निमित्ताधीन सभी यह समझ नहीं क्यों पाते हो
शत्रु पक्ष को प्रोत्साहित कर शर्म तुम्हें क्यों न आती
सिद्ध प्रभु के वंशज हो तुम क्रिया न यह शोभा पाती ॥20॥

अपने को न अपना माने तब तक ही अज्ञानी है
तन में आतम भ्रांति करके करे स्वयं मनमानी है
इष्टानिष्ट कल्पना करके क्यों निज को तड़पाता है
ज्ञानवान होकर भी चेतन सत्य समझ न पाता है ॥21॥

जगत प्रशंसा धन अर्चन हित जैनागम अभ्यास किया
स्वात्म लक्ष्य से जिनवाणी का श्रवण किया न ध्यान किया
बिना अनुभव मात्र शब्द से औरों को भी समझाया
किया अभी तक क्या-क्या अपनी करनी पर मैं पछ्ताया ॥22॥

स्वयं जागृति से हो प्रगति बात समझ में आई है
मात्र निमित्त से नहीं उन्नति कभी किसी ने पाई है
निज सम्यक पुरुषार्थ जगाकर नही एक पल खोना है
निज से निज में निज के द्वारा निज को निजमय होना है ॥23॥

पर भावों के नहीं स्वयं के भावों के ही कर्ता हैं
कर्मोदय के समय जीव निज भाव फलों का भोक्ता है
भाव शुभाशुभ कर्म जनित सब शुद्ध स्वभाव हितंकर है
अर्हत और सिद्ध पद दाता अनंत गुण रत्नाकर है ॥24॥

निज उपयोग रहे निज गृह तो कर्म चोर न घुस पाता
पर द्रव्यों में रहे भटकता चेतन गुण गृह लुट जाता
जागो जागो मेरे चेतन सदा जागते तुम रहना
सम्यक दृष्टि खोलो अपनी निज गृह की रक्षा करना ॥25॥

राग द्वेष से दुष्कर्मों को क्यों करता आमंत्रित है
स्वयं दुखी होने को आतुर क्यों शिव सुख से वंचित है
गुण विकृत हो दोष बने पर गुण की सत्ता नाश नही
ज्ञानादिक की अनुपम महिमा क्या यह तुझको ज्ञात नहीं ॥26॥

सहानुभूति की चाह रखे न स्वानुभूति ऐसी पाऊँ
स्वात्मचतुष्टय का वासी मैं पराधीनता न पाऊँ
मैं हूँ नित स्वाधीन स्वयं में निमित्त के आधीन नहीं
शुद्ध तत्त्व का लक्ष्य बनाकर पाऊँ पावन ज्ञान मही ॥27॥

जीव द्रव्य के भेद ज्ञात कर परिभाषा भी ज्ञात हुई
किंतु यह मैं जीव तत्त्व हूँ भाव भासना नही हुई
बिना नीव जो भवन बनाना सर्व परिश्रम व्यर्थ रहा
आत्म तत्त्व के ज्ञान बिना त्यों चारित का क्या अर्थ रहा ॥28॥

त्रैकालिक पर्याय पिंडमय अनंत गुणमय द्रव्य महान
निज स्वरूप से हीन मानना भगवंतों ने पाप कहा
वर्तमान पर्याय मात्र ही क्यों तू निज को मान रहा
पर्यायों में मूढ़ आत्मा पूर्ण द्रव्य न जान रहा ॥29॥

कर्म पुण्य का वेश पहन कर चेतन के गृह में आया
निज गृह में भोले चेतन ने पर से ही धोखा खाया
सहज सरल होना अच्छा पर सावधान होकर रहना
आतम गुण की अनुपम निधियां अब इसकी रक्षा करना ॥30॥

पढ़ा कर्म सिद्धांत बहुत पर समझ नही कुछ भी आया
नोकर्मों पर बरस पड़ा यह जब दुष्कर्म उदय आया
कर्म स्वरूप भिन्न है मुझसे भेद ज्ञान यह हुआ नही
बोझ रूप वह शब्द ज्ञान है कहते हैं जिनराज सही ॥31॥

पर द्रव्यों के जड़ वैभव पर आतम क्यों ललचाता है
निज प्रदेश में अणु मात्र भी नही कभी कुछ पाता है
हो संतुष्ट अनंत गुणों से अनंत सुख को पाएगा
निज वैभव से भव विनाश कर सिद्ध परम पद पाएगा ॥32॥

वीतराग की पूजा कर क्यों राग भाव से राग करे
निर्ग्रंथों का पूजक होकर परिग्रह की क्यों आश करे
कथनी औ करनी में अंतर धरती अंबर जैसा है
कहो वही जो करते हो तुम वरना निज को धोखा है ॥33॥

अंतर्मुख उपयोग रहे तो निजानन्द का द्वार खुले
अन्य द्रव्य की नहीं अपेक्षा कर्म-मैल भी सहज धुले
गृह स्वामी ज्ञानोपयोग यदि निज गृह रहता सुख पाता
पर ज्ञेयों में व्यर्थ भटकता झूठा है पर का नाता ॥34॥

अपने को जो अपना माने वह पर को भी पर माने
स्वपर भेद विज्ञानी होकर लक्ष्य परम पद का ठाने
ज्ञानी करता ज्ञान मान का अज्ञ ज्ञान का मान करे
संयोगों में राग द्वेष बिन विज्ञ स्वात्म पहचान करे ॥35॥

वस्तु अच्छी बुरी नहीं होती दृष्टि इष्टानिष्ट करे
वस्तु का आलंबन लेकर विकल्प मोही नित्य करे
बंधन का कारण नहीं वस्तु भाव बँध का कारण है
अतः भव्य जन भाव सम्हालो कहते गुरु भवतारण हैं ॥36॥

इच्छा की उत्पत्ति होना भव दुख का ही वर्धन है
इच्छा की पूर्ति हो जाना राग भाव का बंधन है
इच्छा की पूर्ति न हो तो द्वेष भाव हो जाता है
इच्छाओं का दास आत्मा भव वन में खो जाता है ॥37॥

सर्व द्रव्य हैं न्यारे-न्यारे यही समझ अब आता है

जीव अकेला इस भव वन में सुख-दुख भोगा करता है
फिर क्यों पर की आशा करना सदा अकेले रहना है
स्व सन्मुख दृष्टि करके अब अपने में ही रमना है ॥38॥

अरी चेतना सोच ज़रा क्यों पर परिणति में लिपट रही
स्वानुभूति से वंचित होकर क्यों निज-सुख से विमुख रही
पर द्रव्यों में उलझ-उलझ कर बोल अभी तक क्या पाया
अपना अनुपम गुण-धन खोकर विभाव में ही भरमाया ॥39॥

पिता पुत्र धन दौलत नारी मोह बढ़ावन हारे हैं
परम देव गुरु शास्त्र समागम मोह घटावन हारे हैं
सम्यक दर्शन ज्ञान चरित सब मोह नशावन हारा हैं
रत्नत्रय की नैया ने ही नंत भव्य को तारा है ॥40॥

अज्ञानी जन राग भाव को उपादेय ही मान रहे
ज्ञानी भी तो राग करे पर हेय मानना चाह रहे
दृष्टि में नित हेय वर्तता किंतु आचरण में रागी
ऐसे ज्ञानी धन्य-धन्य हैं शीघ्र बनें वे वैरागी ॥41॥

कर्म बँध के समय आत्मा रागादिक से मलिन हुई
कर्म उदय के समय कर्म फल संवेदन मे लीन हुई
भाव कर्म से द्रव्य कर्म औ द्रव्य उदय में भाव हुआ
निमित्त नैमित्तिक भावों से इसी तरह परिभ्रमण हुआ ॥42॥

कर्म उदय को जीत आत्मा निज स्वरूप में लीन रहे
उपादान को जागृत करके नहीं निमित्ताधीन रहे
राग द्वेष भावों को तज कर नूतन कर्म विहीन करे
जिनवर कहते विजितमना वह मुक्तिरमा को शीघ्र वरे ॥43॥

कर्म यान पर संसारी जन बैठ चतुर्गति सैर करे
ज्ञान नाव पर ज्ञानी बैठे भव समुद्र से तैर रहे
एक कर्म फल का रस चखता इक शिव फल रस पीता है
जनम मरण करता अज्ञानी ज्ञानी शाश्वत जीता है ॥44॥

योगी भोजन करते-करते कर्म निर्जरा करता है
भजन करे अज्ञानी फिर भी कर्म बंध ही करता है

अभिप्राय अनुसार कर्म के बंध निर्जरा होती है
श्रीजिनवर की सहज देशना कर्म कलुशता धोती है ॥45॥

चेतन द्रव्य नहीं दिखता है जो दिखता वह सब जड़ है
फिर क्यों जड़ का राग करूँ मैं चेतन मेरा शुचितम है
देह विनाशी मैं अविनाशी निज का ही संवेदक हूँ
स्वयं स्वयं का पालनहारा निज का ही निर्देशक हूँ ॥46॥

क्या ले कर आए क्या ले कर जाएँगे ये मत सोचो
तीव्र पुण्य ले कर आए हो जैन धर्म पाया सोचो
देव शास्त्र गुरु मिला समागम तत्त्व रूचि भी प्रकट हुई
शक्ति के अनुसार व्रती बन नर काया यह सफल हुई ॥47॥

हे उपयोगी नाथ ज्ञानमय दृष्टि स्वसन्मुख कर दो
नंत कल से व्यथित चेतना दुःख शमन कर सुख भर दो
तजो अशुभ उपयोग नाथ तुम शुभ से शुद्ध वरण कर लो
अपनी प्रिया चेतना के गृह मिथ्यातमस सभी हर लो ॥48॥

पर वस्तु पर द्रव्य समागम दुःख क्लेश का कारण है
आत्मज्ञान से निजानुभव ही सुख कारण भय वारण है
स्वपर तत्त्व का भेद जानकर निज को ही नित लखना है
शिव पद पाकर नंत काल तक स्वात्म ज्ञान रस चखना है ॥49॥

मेरे पावन चेतन गृह में अनंत निधियां भरी पड़ी
माँ जिनवाणी बता रही पर ज्ञान नयन पर धूल पड़ी
बना विकारी मन इन्द्रिय से भीख माँगता रहता है
दर दर का यह बना भिखारी पर घर दृष्टि रखता है ॥50॥

हे आतम तू नंत काल से निज में परिणम करता है
पर से कुछ न लेना देना फिर विकल्प क्यों करता है
निर्विकल्प होने का चेतन दृढ़ संकल्प तुम्हें करना
तज कर अन्तर्जल्प शीघ्र ही शांत भवन में है रहना ॥51॥

वर्तमान में भूल कर रहा पूर्व कर्म का उदय रहा
नहीं भूल को भूल मानना वर्तमान का दोष रहा
निज से ही अंजान आत्मा पर को कैसे जानेगा

इच्छा के अनुसार वर्तता प्रभु की कैसे मानेगा ॥52॥

मेरी अनुपम सुनो चेतना ज्ञान-बाग में तुम विचरो
निज उपयोगी देव संग में शील स्वरूप सुगंध भरो
अन्य द्रव्य से दृष्टि हटाकर व्यभिचार का त्याग करो
अनविकार चेष्टाएँ तजकर निजात्म पर उपकार करो॥53॥

सुख स्वरूप आतम अनुभव से राग दुःखमय भास रहा
निज निर्दोष स्वरूप लखा तो दृष्टि में न दोष रहा
राग भाव संयोगज जाने ज्ञानी इनसे दूर रहे
मैं एकत्व विभक्त आत्मा यही जान सुख पूर रहे ॥54॥

पर से नित्य विभक्त चेतना निज गुण से एकत्व रही
स्वभाव से सामर्थ्यवान यह पर द्रव्यों से पृथक रही
अन्य अपेक्षा नहीं किसी की निजानन्द को पाने में
निज स्वभाव का सार यही है विभाव के खो जाने में॥55॥

न्यायवान एक कर्म रहा है समदृष्टि से न्याय करे
भावों के अनुसार उदय की पूर्ण व्यवस्था कर्म करे
कर्म समान व्यवस्थापक इस जग में और न दिखता है
निज निज करनी के अनुसारी लेख सभी के लिखता है ॥56॥

तन चेतन इक साथ रहे तो दुख का कारण न मानो
एक मानना देहातम को अनंत दुख कारण जानो
देह चेतना भिन्न-भिन्न ज्यों त्यों दुख चेतन भिन्न रहा
परम शुद्ध निश्चय से आतम नित चिन्मय सुख कंद कहा ॥57॥

राग भाव है आत्म विपत्ति इसे नहीं अपना मानो
राग भाव का राग सदा ही महा विपत्ति ही जानो
सब विभाव से भिन्न रहा मैं ज्ञान भाव से भिन्न नहीं
राग आग का फल है जलना पाऊँ केवलज्ञान मही ॥58॥

पूजा और प्रतिष्ठा के हित भगवत भक्ति न करना
शब्द ज्ञान पांडित्य हेतु मन श्रुताभ्यास भी न करना
मात्र बाह्य उपलब्धि हेतु अनुष्ठान सब व्यर्थ रहा
दृष्टि सम्यक नहीं हुई तो पुरुषार्थ क्या अर्थ रहा ॥59॥

मैं को प्राप्त नहीं करना है मात्र प्रतीति करना है
जो मैं हूँ वह निज में ही हूँ स्वानुभूति ही करना है
दृष्टि अपेक्षा विभाव तजकर ज्ञान मात्र अनुभवना है
नंत गुणों का पिंड स्वयं मैं निज में ही नित रमना है ॥60॥

आत्म भावना भा ले चेतन भाव स्वयं ही बदलेगा
भाव बदलते भव बदलेगा पर का तू क्या कर लेगा
स्वयं जगत परिणाम हो रहा तू निज भावों का कर्ता
ज्ञान मात्र अनुभवो स्वयं को हे चेतन चिन्मय भोक्ता ॥61॥

तत्त्व ज्ञान जितना गहरा हो निज समीपता आती है
निकट सरोवर के हो जितना शीतलता ही आती है
आत्म तत्त्व का आश्रय करके ज्ञान करे तो सम्यक हो
ज्ञान सिंधु में खूब नहाकर भविष्य शाश्वत उज्जवल हो ॥62॥

पूर्ति असंभव सब विकल्प की अभाव इसका संभव है
पर आश्रय से होने वाले स्वाश्रय से होता क्षय है
विकल्प करने योग्य नहीं है निषेधने के योग्य रहे
निर्विकल्प होकर हे चेतन ज्ञान मात्र ही भोग्य रहे ॥63॥

भविष्य के संकल्प भूत के विकल्प तू क्यों करता है
अजर अमर अविनाशी होकर कौन जनमता मरता है
पुद्गल की इन पर्यायों में निर्भ्रम होकर रहना है
वर्तमान में निज विवेक से निजात्म में ही रमना है॥64॥

पर का कर्ता मान भले तू पर कर्ता न बन सकता
पर को सुखी-दुखी करने में भाव मात्र ही कर सकता
तेरा कार्य तुझे ही करना अन्य नहीं कर सकता है
दृढ़ निश्चय यह करके आतम अनंत सौख्य पा सकता है ॥65॥

किंचित ज्ञान प्राप्त कर चेतन समझाने क्यों दौड़ गया
लक्ष्य स्वयं को समझाने का तू क्यों आख़िर भूल गया
सभी समझते स्वयं ज्ञान से पर की चिंता मत करना
स्वयं शुद्ध आत्मज्ञ होय कर ज्ञान शरीरी ही रहना ॥66॥

निमित्त दूर करो मत चेतन उपादान को सम्हालो
बारंबार निमित्त मिलेंगे चाहे कितना कुछ कर लो
कर्मोदय ही नोकर्मों के निमित्त स्वयं जुटाता है
उपादान यदि जागृत हो तो कोई न कुछ कर पाता है ॥67॥

भव वर्धक भावों से आतम कभी रूचि तुम मत करना
परमानंद तुम्हारा तुममें इससे वंचित न रहना
बहुत कर चुके कार्य अभी तक किंतु नहीं कृतकृत्य हुए
रूचि अनुसारी वीर्य वर्तता आत्म रूचि अतः प्राप्त करे ॥68॥

निज की सुध-बुध भूल गया तो कर्म लूट ले जाएँगे
स्वसन्मुख यदि दृष्टि रही तो कर्म ठहर न पाएँगे
निज पर नज़र गड़ाए रखना हे अनंत धन के स्वामी
आत्म प्रभु का कहना मानो बनना तुमको शिवधामी ॥69॥

इच्छा से जब कुछ न होता फिर क्यों कष्ट उठाते हो
सब अनर्थ की जड़ है इच्छा समझ नहीं क्यों पाते हो
ज्ञानानंद घातने वाली इच्छाएँ ही विपदा हैं
निस्तरंग आनंद सरोवर निज में शाश्वत सुखदा है ॥70॥

परिजन मित्र समाज देशहित बहुत व्यवस्थाएँ करते
अस्त-व्यस्त निज रही चेतना आत्म व्यवस्था कब करते
चेतन प्यारे निज की सुध लो बाहर में कुछ इष्ट नहीं
नंत काल से जानबूझ कर विष को पीना ठीक नहीं ॥71॥

पुद्गल आदिक बाह्य कार्य में चेतन जड़वत हो जाना
विषय भोग व्यवहार कार्य में मेरे आतम सो जाना
निश्चय में नित जागृत रहना लक्ष्य न ओझल हो पावे
कर्मोदय हो तीव्र भले पर दृष्टि आतम पर जावे ॥72॥

हेय तत्त्व का ज्ञान किया जो मात्र हेय के लिए नहीं
उपादेय की प्राप्ति हेतु ही ज्ञेय ज्ञान हो जाए सही
ज्ञायक मेरा रूप सुहाना ज्ञाता मेरा भाव रहे
ज्ञान संग मैं अनंत गुणयुत चिन्मय मेरा धाम रहे ॥73॥

प्रति वस्तु की अपनी-अपनी मर्यादाएँ होती हैं

भिन्न चतुष्टय सबके अपने निज में परिणति होती है
इक क्षेत्रावगाह चेतन तन होकर भिन्न-भिन्न रहते
निज-निज गुणमय पर्यायों में द्रव्य नित्य परिणम करते ॥74॥

निज की महिमा नहीं समझता यही पाप का उदय कहा
पर पदार्थ की महिमा गाता नश्वर की तू शरण रहा
वीतराग प्रभुवर कहते तू तीन लोक का ज्ञाता है
इससे बढ़कर क्या महिमा है निश्चय से निज दृष्टा है ॥75॥

मेरे में मैं ही रहता हूँ अन्य द्रव्य का दखल नहीं
अनंत गुण हैं सदा सुरक्षित सत्ता मेरी नित्य रही
निज में ही संतुष्ट रहूं मैं पर से मेरा काम नहीं
यह दृढ़ निश्चय करके ही मैं पा जाऊँ ध्रुव धाम मही ॥76॥

निज पर दुष्कर्मों के द्वारा क्यों उपसर्ग कराते हो
मिथ्यातम अविरत कषाय औ योग द्वार खुलवाते हो
अपने हाथों निज गृह में क्यों आग लगाते रहते हो
अपने को ही अपना मानो अपनों में क्यों रमते हो ॥77॥

स्वपर भेद अभ्यास बिना ही संकट नाश नहीं होता
स्वात्म प्रभु की दृढ़ आस्था बिन निज में भास नहीं होता
भेद ज्ञान अमृत के जैसा अजर अमर पद दाई है
हे आतम इसको न तजना यह अनुपम अतिशायी है ॥78॥

विभाव विष को तज कर आतम स्वभाव अमृत पान करो
सबसे भिन्न निराला निरखो निज का निज में ध्यान धरो
बहुत सरल है आत्म ध्यान जो पंचेंद्रिय अनपेक्ष रहा
सरल कार्य को कठिन बनाया चेतन अब तो चेत ज़रा ॥79॥

स्वभाव का सामर्थ्य जानकर पर द्रव्यों से पृथक रहो
विभाव को विपरीत समझकर स्वात्म गुणों में लीन रहो
बाहर में करने जैसा कुछ नहीं जगत में दिखता है
भीतर में जो होने वाला वही हो रहा होता है ॥80॥

निज आतम से अन्य रहे जो वे मुझको क्या दे सकते
मेरे गुण मुझ में शाश्वत हैं वे मुझसे क्या ले सकते

मैं अपने में परिणमता हूँ पर का कुछ संयोग नहीं
मेरा सब कुछ मुझ को करना मेरा दृढ़ विश्वास यही ॥81॥

मैं धर्मात्मा बहुत शांत हूँ जग वालों से मत कहना
शांति प्रदर्शन बिन अशांति के कैसे हो जिन का कहना
ज्ञानी तुम्हे अशांत कहेंगे अतः सत्य शांति पाओ
शब्द अगोचर आत्मशांति है शब्द वेश ना पहनाओ ॥82॥

जो दिखता है वह अजीव है इसमे सुख गुण सत्त्व नहीं
फिर कैसे वह सुख दे सकता आश न रखना अन्य कहीं
सुख गुण वाले जीव नंत पर वह निज सुख न दे सकते
अपने सुख को प्रगटा कर अनंत सुखमय हो सकते ॥83॥

आत्म शांति यदि पाना चाहो जग के मुखिया मत होना
नश्वर ख्याति पद के खातिर आतम निधियां मत खोना
पल भर इंद्रिय सुख को पाने चिदानंद को न भूलो
सर्व जगत से मोह हटा कर निज प्रदेश को तुम छू लो ॥84॥

समझाने का भ्रम न पालो किसकी सुनता कौन यहाँ
सब अपने मन की सुनते हैं कौन किसी का हुआ यहाँ
अपना ही अपना होता है केवल आतम अपना है
ज्ञानमयी आतम को समझो शेष जगत सब सपना है ॥85॥

मान बढ़ाने जग का परिचय विकल्पाग्नि का ईंधन है
स्वात्म अनंत गुणों का परिचय जीवन का शाश्वत धन है
पर से परिचित निज से वंचित रह कर आख़िर क्या पाया
जिन परिचय से निज का परिचय मुझको आज समझ आया ॥86॥

पर पदार्थ को शरण मानकर निज को अशरण करना है
निज का संबल छूट गया तो भव-भव में दुख वरना है
परमेष्ठी व्यवहार शरण औ निज शुद्धातम निश्चय है
अनंत बलयुत चिद घन निर्मल शरणभूत निज चिन्मय है ॥87॥

कर्मोपाधी रहित सदा मैं अनंत गुण का पिंड रहा
जिनवाणी ने आत्म तत्त्व को पूर्ण ज्ञान मार्तंड कहा
सुख-दुख कर्म जनित पीड़ाएँ आती जाती रहती हैं

मेरे ज्ञान समंदर में नित ज्ञान धार ही बहती है ॥88॥

राग भाव की पूर्ति करके अज्ञानी हर्षित होता
ज्ञानी राग नहीं करता पर हो जाने पर दुख होता
ज्ञानी और अज्ञानीजन में अंतर अवनि अंबर का
इक बाहर नश्वर सुख पाता इक पाता है अंदर का ॥89॥

बिना कमाए सारे वैभव पुण्योदय से मिल जाते
किंतु तत्त्व-ज्ञान बिन आतम शांति कभी नहीं पाते
श्रम करते पर पापोदय में धन सुख वैभव नहीं मिले
********** ॥90॥

जो दिखता है वह मैं न हूँ देखनहारा ही मैं हूँ
निज आतम को ज्ञानद्वार से जाननहारा ही मैं हूँ
ज्ञान ज्ञान में ही रहता है पर ज्ञेयों में न जाता
ज्ञेय ज्ञेय में ही रहते पर सहज जानने में आता ॥91॥

वर्तमान में निर्दोषी पर भूतकाल का दोषी हूँ
नोकर्मों का दोष नहीं कुछ यही समझ संतोषी हूँ
अन्य मुझे दुख देना चाहे किंतु दुखी मैं क्यों होऊ
आत्मधरा पर कषाय करके नये कर्म को क्यों बोऊ ॥92॥

निश्चय से उपयोग कभी भी बाहर कहीं न जा सकता
एक द्रव्य का गुण दूजे में प्रवेश ही न पा सकता
मोही पर को विषय बनाता तब कहने में आता है
यदि पर में उपयोग गया तो ज्ञान शून्य हो जाता है ॥93॥

अगर हृदय में श्रद्धा है तो पत्थर में भी जिनवर हैं
मूर्तिमान दिखते मूर्ति में कागज पर जिनवर वच हैं
कर्म परत के पार दिखेगा तुझको तेरा प्रभु महान
कौन रोक पाएगा तुझको बनने से अर्हत भगवान ॥94॥

मान नाम हित किया दान तो अनर्थ औ निस्सार रहा
पुण्य लक्ष्य से दान दिया तो दान नहीं व्यापार रहा
पुण्य खरीदा निज को भूला अपना क्यों नुकसान करे
अहम भाव से रहित दान कर भगवत पद आसान करे ॥95॥

पाप भाव का दंड बाह्य में मिले न या मिल सकता है
पर अंतस मे आकुलता का दंड निरंतर मिलता है
पाप विभाव भाव दुखदाई कर्म जनित है नित्य नहीं
जो स्वभाव है वह अपना है शाश्वत रहता सत्य वही ॥96॥

पूजादिक शुभ सर्व क्रियाएँ रूढिक कही न जा सकती
मोक्ष निमित्तिक क्रिया सभी यह शिव मंज़िल ले जा सकती
समकित के यदि साथ क्रिया हो सम्यक संयम चरित वही
अतः भावयुत क्रिया करो नित पा जाओ ध्रुव धाम मही ॥97॥

तन परिजन परिवार संबंधी नंत बार कर्तव्य किए
निज शुद्धात्म प्रकट करने को कभी न कोई कार्य किए
निज मंतव्य शुद्ध करके अब शीघ्र प्राप्त गंतव्य करें
कुछ ऐसा कर्तव्य करें अब जिनवर पद कृतकृत्य वरे ॥98॥

हो निमित्त आधीन आत्मा कर्म बांधता रहता है
कभी-कभी ऐसा भी होता उसे पता न चलता है
बँध शुभाशुभ भावों से हो श्वान वृत्ति को तजना है
सिंह वृत्ति से उपादान की स्वयं विशुद्धी करना है ॥99॥

पर की अपकीर्ति फैलाकर कभी कीर्ति न पा सकते
अपयश का भय रख कर यश की चाह नही कम कर सकते
ख्याति-त्याग के प्रवचन में भी ख्याति का न लक्ष्य रहे
यश चाहो तो ऐसा चाहो तीन लोक यश बना रहे ॥100॥

भव भटकन को तज कर साधक आत्मिक यात्रा शुरू करो
स्वानुभूति का मंत्र जापकर अपनी मंज़िल प्राप्त करो
पर ज्ञेयों की छटा ना देखो आत्म ज्ञान ही ज्ञेय रहे
कर्मशूल से बच कर चलना मात्र लक्ष्य आदेय रहे ॥

पार्श्वनाथ-स्तोत्र

पं. द्यानतरायजी कृत

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं, शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं

मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥१॥

गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै, महा आगतैं नागतैं तू बचावै
महावीरतैं युद्ध में तू जितावै, महारोगतैं बंधतैं तू छुड़ावै ॥२॥

दुखीदु:खहर्त्ता सुखीसुक्खकर्त्ता, सदा सेवकों को महानंदभर्त्ता
हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं, विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं ॥३॥

दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीनकौं तू भले पुत्र कीने
महासंकटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्व को देहि दाता ॥४॥

महाचोर को वज्र को भय निवारै, महापौन के पुंजतैं तू उबारै
महाक्रोध की अग्नि को मेघ-धारा, महालोभ शैलेश को वज्र भारा ॥५॥

महामोह अन्धेर को ज्ञान भानं, महाकर्मकांतार को दौ प्रधानं
किये नाग नागिन अधोलोकस्वामी, हर्यो मान तू दैत्य को हो अकामी ॥६॥

तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं, तुही दिव्य चिंतामणी नाग एनं
पशू नर्क के दु:खतैं तू छुड़ावै, महास्वर्ग में मुक्ति में तू बसावै ॥७॥

करे लोह को हेम पाषाण नामी, रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी
करै सेव ताकी करैं देव सेवा, सुनै वैन सोही लहै ज्ञान मेवा ॥८॥

जपै जाप ताको नहीं पाप लागै, धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे ॥९॥

गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान
'द्यानत' प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान ॥१०॥

महावीराष्टक-स्तोत्र

भागचंदजी कृत

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचिता:,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि लसन्तोऽन्तरहिता:
जगत्साक्षीमार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो,

महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न:) ॥१॥

अताम्रं यच्चक्षु: कमल-युगलं स्पन्द-रहितम्,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न:) ॥२॥

नमन्नाकेन्द्राली मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्-पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनु भृताम् ।
भव ज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न:) ॥३॥

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दुर्दुर इह,
क्षणादासीत्-स्वर्गी गुण-गण-समृद्ध: सुखनिधि:
लभंते सद्भक्ता: शिव-सुख-समाजं किमु तदा,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न:) ॥४॥

कनत्स्वर्णाभासोप्यपगत तनुर्ज्ञान निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति वर् सिध्दार्थ तनय:
अजन्मापि श्रीमान विगतभवरागोदभुत गति:
महावीर स्वामी नयन पथ गामी भवतु में (न:) ॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
वृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालै: परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न:) ॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभट:,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजित: ।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिन:,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न:) ॥७॥

महा-मोहातंक-प्रशमन-परा-कस्मिन्भिषग
निरापेक्षो बंधुर्विदित-महिमा मंगलकर:
शरण्य: साधूनां भव-भय-भृतामुत्तम-गुणो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न:) ॥८॥

(अनुष्टुप)
महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम्
य:पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥

महावीराष्टक-स्तोत्र

भागचंदजी कृत संस्कृत पाठ का डा. वीरसागर द्वारा हिंदी अनुवाद

जिनके चेतन में दर्पणवत सभी चेतनाचेतन भाव
युगपद झलकें अंतरहित हो ध्रुव-उत्पाद-व्ययात्मक भाव
जगत्साक्षी शिवमार्ग प्रकाशक जो हैं मानो सूर्य-समान
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥१॥

जिनके लोचनकमल लालिमा रहित और चंचलताहीन
समझाते हैं भव्यजनों को बाह्याभ्यन्तर क्रोध-विहीन
जिनकी प्रतिमा प्रकट शान्तिमय और अहो है विमल अपार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥२॥

नमते देवों की पंक्ति की मुकुटमणि का प्रभासमूह
जिनके दोनों चरणकमल पर झलके देखो जीवसमूह
सांसारिक ज्वाला को हरने जिनका स्मरण बने जलधार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥३॥

जिनके अर्चन के विचार में मेंढक भी जब हर्षितवान
क्षण भर में बन गया देवता गुणसमूह और सुक्ख निधान
तब अचरज क्या यदि पाते हैं सच्चे भक्त मोक्ष का द्वार ?
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥४॥

तप्तस्वर्ण-सा तन है फिर भी तनविरहित जो ज्ञानशरीर
एक रहें होकर विचित्र भी, सिद्धारथ राजा के वीर
होकर भी जो जन्मरहित हैं, श्रीमन फिर भी न रागविकार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥५॥

जिनकी वाणीरुपी गंगा नयलहरों से हीनविकार
विपुल ज्ञानजल से जनता का करती है जग में स्नान

अहो ! आज भी इससे परिचित ज्ञानी रुपी हंस अपार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥६॥

तीव्रवेग त्रिभुवन का जेता कामयोद्धा बड़ा प्रबल
वयकुमार में जिनने जीता उसको केवल निज के बल
शाश्वत सुख-शान्ति के राजा बनकर जो हो गये महान
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥७॥

महामोह आतंक शमन को जो हैं आकस्मिक उपचार
निरापेक्ष बन्धु हैं, जग में जिनकी महिमा मंगलकार
भवभव से डरते सन्तों को शरण तथा वर गुण भंडार
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु, मम हिय आवें नयनद्वार ॥८॥

महावीराष्टक स्तोत्र को, 'भाग' भक्ति से कीन
जो पढ़ ले अथवा सुने, परमगति वह लीन

लघु-प्रतिक्रमण

चिदानन्दैक रूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥

मैं नित्य उन परम सिद्धि को प्राप्त परमात्मा को नमस्कार करता हूँ जो परमात्म पद के प्रकाशन में अग्रसर हुए हैं, जिन्होंने अनेक रूपता में स्थित चिदानन्द प्रभु को सन्मार्ग के आधार स्वयं को परमात्म पद में स्थित कर जिस परमातम पद को दर्शाया है, मुक्ति प्राप्त की है, अनेक गुणों के भंडार हुए हैं ।

हे प्रभु मैंने अब तक पांच मित्थ्यात्व, बारह अविरति, पन्द्रह योग, पच्चीस कषाय, ये सत्तावन आस्रव के कारण हैं, इन्हीं के अंतर्गत संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन वच काय द्वारा, कृत, कारित, अनुमोदना तथा क्रोध, मान, माया, लोभ से 108 प्रकार नित्य ही तीन दण्ड, त्रिशल्य, तीन वर्ग, राज कथा, चोर कथा, स्त्री कथा, भोजन कथा, में अपने को अनादि मिथ्या, अज्ञान, मोहवश परिणामाया, परिणामाता रहता हूँ, और जब तक सद्बोधि की प्राप्ति नहीं हुई, परिणामाता रहूँगा, ऐसी दशा में मैंने जिनवाणी द्वारा सत समागम से जो उपलब्धि प्राप्त की है, उसके ऊपर कथित आस्रव में जो पाप लगा लगा हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ ।

मैंने भूल से मिथ्यात्व वश अज्ञान दशा में जो, इतर निगोद सात लाख, नित्य निगोद सात लाख, पृथ्वीकायिक सात लाख, जलकायिक सात लाख, अग्निकायिक सात लाख, वायुकायिक सात लाख, वनस्पतिकायिक दस लाख, दो इन्द्रिय दो लाख, तीन इन्द्रिय दो लाख, चार इन्द्रिय दो लाख, पंचेन्द्रिय पशु चार लाख, मनुष्य गति के चौदह लाख, देव गति के चार लाख, नरक गति के चार

लाख, ये सब जाति चौरासी लाख योनि हैं, माता पक्ष पिता पक्ष एक सौ साढ़े निन्यानवे कोडा कोडी कुल, सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त लब्धि, अपर्याप्त आदि जीवों की विराधना की हो, तथा इन पर राग-द्वेष द्वारा जो पाप लगा हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ ।

हे भगवन ! मेरे चार आर्त्त ध्यान, चार रौद्र ध्यान का पाप लगा हो, अनाचार का तथा त्रस जीवों की विराधना की हो, सप्त व्यसन सेवन किये हों, सप्त भयों का, अष्ट मूल गुणव्रत में अतिचार लगे हों, दस प्रकार का बहिरंग परिग्रह, चौदह प्रकार का अंतरंग परिग्रह, सम्बन्धी पाप किया हो, प्रन्द्रह प्रमाद के वशीभूत होकर बारह व्रतों के पांच-पांच अतिचार, इस प्रकार साठ अतिचारों में, पानी छानने में, जीवानी यथास्थान न पहुँचाने में, जो भी पाप लगा हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ ।

हे भगवन! मेरे रौद्र परिणाम दुश्चिन्तवन बोलने में, चलने में, हिलने में, सोने में, करवट लेने में, मार्ग में ठहरने में, बिना देखे गमन करने में, मेरे मन, वच, काय द्वारा जो पाप नासमझ से, समझ से, लगा हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ ।

हे भगवन ! मैंने सूक्ष्म अथवा बादर कोई भी जीव, पैर तले, करवट में, बैठने, उठने, चलने-फिरने इत्यादि आरम्भ के द्वारा, रसोई-व्यापर इत्यादि आरम्भ में सताए हों, भय को पहुंचाए हों, मरण को प्राप्त हुए हों, दुख को अनुभव करते हों, छेदन-भेदन को मन वच काय द्वारा जाने अनजाने में दुख को ज्ञात करते हों, यह सब दोष मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ ।

मैं सर्व जिनेंद्रों की वन्दना करता हूँ। चौबीस जिन भूत, भविष्य, वर्तमान, बीस तीर्थंकर, सिद्ध क्षेत्र, कल्याणक क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय की, जिन मन्दिरों की, जिन चैत्यालयों की, वन्दना करता हूँ । मैं सर्व मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, ग्यारह प्रतिमाओं में स्थित साधर्मी बन्धुओं की, बिना समझे अनुभवी भव्य जीवों की, जो निंदा की हो, कटु वचन कहें हों, आघात पहुंचाया हो, विनय न की हो, तथा एनी जीवों की निंदा की हो, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ ।

हे प्रभु मैंने निर्माल्य द्रव्य का उपयोग किया हो, सामायिक के बत्तीस प्रकार के दोष लगाये हों, जिन मन्दिर में पांच इन्द्रियों के विषय व मन के द्वारा, विषयों में प्रवृत्ति की हो, भगवत पूजन में जो प्रमाद किया हो, मैंने राग से, द्वेष से, मान से, माया से, खेल-तमाशे में, नाटक ग्रहों में, नृत्य-गान आदि सभा में, गृहित-अगृहित मिथ्या द्वारा जो कर्म–नोकर्म से संग्रहित किये हों, व् जो भाव दूसरों के प्रति अहित के हुये हों, वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चात्ताप करता हूँ ।

मेरा समस्त जीवों के प्रति मैत्री भाव रहे, सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करें, मेरा क्षमा भाव बने, कर्मक्षय के उपाय का प्रयत्न करूं, मेरा समाधि-मरण हो, चारों गतियों में मेरे भाव निर्मल रहें, यही प्रार्थना है ।

मुझे निरंतर शास्त्राभ्यास की प्राप्ति हो, सज्जन समागम का लाभ मिले, दोषों को कहने में मौन रहूँ, अपने दोषों तो त्यागने व् प्रयाश्चित के भाव हों, परोपकार, मिष्टवचन, प्रतिज्ञाओं पर दृढ रहूँ, चारों दान के भाव बनें ।

हे भगवन ! जब तक मेरा भव भ्रमण ना छूटे, आपकी शांत मुद्रा व आपके कर्मक्षय के प्रयास, अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति का लक्ष्य, आपके हितकारी वचन, वीतराग परिणति, केवलज्ञान द्वारा आत्महित का मनन, मुझे गति-गति में प्राप्त हो, यह अंतिम निवेदन है, मेरा हृदय आपके चरणों में

लीन रहे, शीघ्र भव पार होऊँ, यही मेरी आपसे प्रार्थना है ।

॥इति लघु प्रतिक्रमण॥

कल्याणमन्दिरस्तोत्रम

आ. कुमुदचंद्र कृत

कल्याण-मन्दिरमुदारमवद्य-भेदि
भीताभय-प्रदमनिन्दितमंग्-घ्रि-पद्मम्
संसार-सागर-निमज्जदशेष-जन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥

यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्त्रत-मतिर्न विभुर्विधातुम्
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय-धूमकेतो-
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरुप-
मस्मादृशः कथमधीश भवन्त्यधीशाः
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो
रुपं प्ररुपयति किं किल धर्मरश्मेः ॥३॥

मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मा-
न्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥४॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य-गुणाकरस्य
बालोऽपि किं न निज-बाहु-युगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥५॥

ये योगनामपि न यान्ति गुणास्तवेश
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः

जाता तदेवमसमीक्षित-कारितेयं
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

आस्तामचिन्त्य-महिमा जिन संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति
तीव्रातपोपहत-पान्थ-जनान्निदाघे
प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्म-बन्धाः
सद्यो भुजंगममया इव मध्य-भाग-
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्द्रनस्य ॥८॥

मुच्यन्त एव मनुजाः स हसा जिनेन्द्र
रौद्रैरुपद्रव-शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि
गो-स्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥९॥

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून-
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥

यस्मिन्हर-प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः
सोऽपि त्वया रति-पतिः क्षपितः क्षणेन
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥११॥

स्वामिन्ननल्प-गरिमाणमपि प्रपन्नाः
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥

क्रोधस्त्वा यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म-चौराः
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके

नील-द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥१३॥

त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरुप-
मन्वेषयन्ति ह्रदयाम्बुज-कोष-देशे
पूतस्य निर्मल-रुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति
तीर्वानलादुपल-भावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः ॥१५॥

अन्तः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्
एतत्स्वरुपमथ मध्य-विवंर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेद-बुद्धया
ध्यातो जिनेन्द्र भवतीह भवत्प्रभावः
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं
किं नाम नो विष-विकारमपाकरोति ॥१७॥

त्वामेव बीत-तमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो हरि-हरादि-धिया प्रपन्नाः
किं काच-कामलिभिरीश सितोऽपि शंखो
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण ॥१८॥

धर्मोपदेश-समये सविधानुभावाद्
आस्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः
अभ्युद् गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीव-लोकः ॥१९॥

चित्रं विभो कथमवांगमुख-वृन्तमेव
विष्वक्पतत्यविरला सुर-पुष्प-वृष्टिः
त्वद् गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥

स्थाने गभीर-हृदयोदधि-सम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति
पीत्वा यतः परम-सम्मद-संग-भाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजामरत्वम् ॥२१॥

स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चामरौघाः
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुंगवाय
ते नूनमूर्ध्व-गतयः खलु शुद्ध-भावाः ॥२२॥

श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्य-शिखण्डिनस्त्वाम्
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैः
श्वामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥

उद् गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन
लुप्त-च्छद-च्छविरशोक-तरुर्बभूव
सांनिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥२४॥

भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृति-पुरीं प्रति सार्थवाहम्
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः
मुक्ता-कलाप-कलितोरु-सितातपत्र-
व्याजात्त्रिधा धृत-तनुध्रुर्वमभ्युपेतः ॥२६॥

स्वेन प्रपूरित-जगत्त्रय-पिण्डितेन
कान्ति-प्रताप-यशसामिव संचयेन
माणिक्य-हेम-रजत-प्रविनिर्मितेन
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥

दिव्य-स्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना-
मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान्
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र
त्वत्संगमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

त्वं नाथ जन्म-जलधेर्विपरांगमुखोऽपि
यत्तारयस्यसुमतो निज-पृष्ठ-लग्नान्
युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव
चित्रं विभो यदसि कर्म-विपाक-शून्यः ॥२९॥

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक दुर्गतस्त्वं
किं वाक्षर-प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतुः ॥३०॥

प्राग्भार-सम्भृत-नभांसि रजांसि रोषद्
उत्थापितानि कमठेन शठेन यानि
छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥

यद्गर्जदूर्जित-घनौघमदभ्र-भीम-
भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल-घोरधारम्
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर-वारि दध्रे
तेनैव तस्य जिन दुस्तर-वारि कृत्यम् ॥३२॥

ध्वस्तोध्व-केश-विकृताकृति-मत्र्य-मुण्ड-
प्रालम्बभृभ्दयवक्त्र-विनिर्यदग्निः
प्रेमव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भव-दुःख-हेतुः ॥३३॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्य-कृत्याः
भक्त्योल्लसत्पुलक-पक्ष्मल-देह-देशाः
पाद-द्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥३४॥

अस्मिन्नपार-भव-वारि-निधौ मुनीश

मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि
आकर्णिते तुं तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

जन्मान्तरेऽपि तव पाद-युगं न देव
मन्ये मया महितमीहित-दान-दक्षम्
तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥३६॥

नूनं न मोह-तिमितावृत-लोचनेन
पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्ध-गतयः कथमन्यथैते ॥३७॥

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या
जातोऽस्मि तेन जन-बान्धव दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः ॥३८॥

त्वं नाथ दुःखि-जन-वत्सल हे शरण्य
कारुण्य-पुण्य-वसते वशिनां वरेण्य
भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय
दुःखांग्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९॥

निःसख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादित-रिपु प्रथितावदानम्
त्वत्पाद-पंकजमपि प्रणिधान-बन्ध्यो
बन्ध्योऽस्मि चेभ्दुवन-पावन हाहतोऽस्मि ॥४०॥

देवेन्द्र-वन्द्य विदिताखिल-वस्तुसार
संसार-तारक विभो भुवनाधिनाथ
त्रायस्व देव करुणा-ह्रद मां पुनीहि
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बु-राशेः ॥४१॥

यद्यस्ति नाथ भवदंगघ्रि-सरोरुहाणां
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-सञ्चितायाः

तन्मे त्वदेक-शरणस्य भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥

इत्थं समाहित-धियो विधिवज्जिनेन्द्र
सान्द्रोल्लसत्पुक - कञ्चुकितांगभागाः
त्वद्बिम्ब-निर्मल-मुखाम्बुज-बद्ध-लक्ष्या
ये संस्तवं तव विभो रचयन्ति भव्या ॥४३॥

जन-नयन-'कुमुदचन्द्र'-प्रभास्वराः स्वर्ग-सम्पदो भुक्त्वा
ते विगलित-मल-निचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥४४॥

कल्याणमन्दिर-स्तोत्र-हिंदी

आ. कुमुदचंद्र कृत संस्कृत पाठ का हिंदी रूपांतर

तर्ज : आओ बच्चों तुम्हे दिखाएं
जिसने राग द्वेष कामादिक जीते
फूल तुम्हें भेजा है ख़त में

कुसुमलता छंद

पारस प्रभु कल्याण के मंदिर, निज-पर पाप विनाशक हैं
अति उदार हैं भयाकुलित, मानव के लिए अभयप्रद हैं ॥
भवसमुद्र में पतितजनों के, लिए एक अवलम्बन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥१॥

सागर सम गंभीर गुणों से, अनुपम हैं जो तीर्थंकर
सुरगुरु भी जिनकी महिमा को, कह न सके वे क्षेमंकर ॥
महाप्रतापी कमठासुर का, मान किया प्रभु खण्डन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२॥

दिवाअन्ध ज्यों कौशिक शिशु नहिं, सूर्य का वर्णन कर सकता
वैसे ही मुझ सम अज्ञानी, कैसे प्रभु गुण कह सकता ॥
सूर्य बिम्ब सम जगमग-जगमग, जिनवर का मुखमंडल है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥३॥

प्रलय अनंतर स्वच्छ सिन्धु में, भी ज्यों रत्न न गिन सकते
वैसे ही तव क्षीणमोह के, गुण अनंत नहिं गिन सकते ॥
उनके क्षायिक गुण कहने में, पुद्गल शब्द न सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥४॥

शिशु निज कर फैलाकर जैसे, बतलाता सागर का माप
वैसे ही हम शक्तिहीन नर, कर लेते हैं व्यर्थ प्रलाप ॥
सच तो प्रभु गुणरत्नखान अरु, अतिशायी सुन्दर तन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥५॥

बड़े-बड़े योगी भी जिनके, गुणवर्णन में नहिं सक्षम
तब अबोध बालक सम मैं, कैसे कर सकता भला कथन ॥
फिर भी पक्षीसम वाणी से, करूँ पुण्य का अर्जन मैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥६॥

जलाशयों की जलकणयुत, वायू भी जैसे सुखकारी
ग्रीष्मवायु से थके पथिक के, लिए वही है श्रमहारी ॥
वैसे ही प्रभुनाम मंत्र भी, मात्र हमारा संबल है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥७॥

जो नर मनमंदिर में अपने, प्रभु का वास कराते हैं
उनके कर्मों के दृढ़तर, बंधन ढीले पड़ जाते हैं ॥
चंदन तरु लिपटे भुजंग के, लिए मयूर वचन सम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥८॥

ग्वाले के दिखते ही जैसे, चोर पशूधन तज जाते
वैसे ही तव मुद्रा लखकर, पाप शीघ्र ही भग जाते ॥
कैसा हो संकट समक्ष प्रभु, ही हरने में सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥९॥

भवपयोधितारक हे जिनवर! तुम्हें हृदय में धारण कर
तिर सकते हैं जैसे पवन, सहित तिरती है चर्ममसक ॥
इसीलिए भवसागर तिरने, में कारण प्रभु चिन्तन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥१०॥

हे अनङ्गविजयिन्! हरिहर, आदिक भी जिससे हार गये

कामदेव के वे प्रहार भी, तुम सम्मुख आ हार गये ॥
दावानल शांती में जल सम, प्रभु इन्द्रियजित् सक्षम हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥११॥

हे त्रैलोक्यतिलक! जिसकी, तुलना न किसी से हो सकती
उन अनंत गुणभार को मन में, धर जनता कैसे तिरती ॥
किन्तु यही आश्चर्य हुआ, तिरते जिनवर भाक्तिकजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१२॥

प्रभो! क्रोध को प्रथम जीतकर, कर्मचोर कैसे जीता?
प्रश्न उठा मन में बस केवल, इसीलिए तुमसे पूछा ॥
उत्तर आया हिम तुषार ज्यों, जला सके वन-उपवन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१३॥

हे जिनवर! योगीजन तुमको, हृदयकोष के मध्य रखें
वैसे ही ज्यों कमल कर्णिका, कमलबीज को संग रखे ॥
शुद्धात्मा के अन्वेषण में, हृदय कमल ही माध्यम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१४॥

हे जिनेश! तव ध्यानमात्र से, परमातम पद पाते जीव
अग्निनिमित पा करके जैसे, सोना बनता शुद्ध सदैव ॥
ऐसी शक्ती देने में निज, ज्ञानपुञ्ज ही सक्षम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१५॥

जिस काया के मध्य भव्यजन, सदा आपका ध्यान करें
उस काया का ही विनाश, क्यों करते हो भगवान्! अरे ॥
अथवा उचित यही जो विग्रह-तन तजते बन भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१६॥

हे जिनेन्द्र! मंत्रादिक से, जैसे जल अमृत बन जाता
विषविकार हरने में सक्षम, वह परमौषधि कहलाता ॥
इसी तरह तुमको ध्याकर, तुम सम बनते योगीजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१७॥

जैसे कामलरोगी को, दिखती पीली वस्तू सब हैं
वैसे ही अज्ञानी को, प्रभुवर दिखते हरिहर सम हैं ॥

हे त्रिभुवनपति! फिर भी वे, करते तेरी ही पूजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१८॥

हे प्रभु पुण्य गुणों के आकर! तव महिमा का क्या कहना
तरु भी शोकरहित तुम ढिग हों, फिर मानव का क्या कहना ॥
रवि प्रगटित होते ही जैसे, कमल आदि खिलते सब हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥१९॥

हे मुनीश! सुरपुष्पवृष्टि, जो तेरे ऊपर होती है
उनकी डंठल नीचे अरु, ऊपर पंखुरियाँ होती हैं ॥
यही सूचना है कि भव्य के, प्रभु ढिग खुलते बन्धन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२०॥

तव गंभीर हृदय उदधी से, समुत्पन्न जो दिव्यध्वनी
अमृततुल्य समझकर भविजन, पीकर बनते अतुलगुणी ॥
सबकी भव बाधा हरने में, जिनवर गुण ही साधन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वंदन है ॥२१॥

देवों द्वारा ढुरते चामर, जब नीचे-ऊपर जाते
विनयभाव वे भव्यजनों को, मानो करना सिखलाते ॥
प्रातिहार्य यह प्रगटित कर, बन गये नाथ अब भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२२॥

स्वर्ण-रत्नमय सिंहासन पर, श्यामवर्ण प्रभु जब राजें
स्वर्ण मेरु पर कृष्ण मेघ लख, मानों मोर स्वयं नाचें ॥
इसी तरह जिनवर सम्मुख, आल्हादित होते भविजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२३॥

तव भामण्डल प्रभ से जब, तरुवर अशोक भी कान्तिविहीन
हो जाता है तब बोलो क्यों?, भव्यराग नहिं होगा क्षीण ॥
वीतरागता के इस अतिशय, से लाभान्वित भविजन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२४॥

हे प्रभु! देवदुन्दुभी बाजे, जब त्रिलोक में बजते हैं
तब असंख्य देवों-मनुजों को, वे आमंत्रित करते हैं ॥
तज प्रमाद शिवपुर यात्रा, करना चाहें तब भविजन हैं

ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२५॥

तीन छत्र हे नाथ! चन्द्रमा, मानो स्वयं बना आकर
निज अधिकार पुन: लेने को, सेवा में वह है तत्पर ॥
छत्रों के मोती बन मानो, ग्रह भी करते वंदन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२६॥

समवसरण में माणिक-सोने-चांदी के त्रय कोट बने
माना नाथ! तुम्हारी कांती-कीर्ती और प्रताप इन्हें ॥
जन्मजात वैरी के भी, हो जाते मैत्रीयुत मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२७॥

प्रभु! इन्द्रों के नत मुकुटों की, पुष्पमालिका कहती हैं
तव पद का सामीप्य प्राप्त कर, प्रगट हुई जो भक्ती है ॥
इसका अर्थ समझिये प्रभु से, जुड़े सभी अन्तर्मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२८॥

हे कृपालु! जिस तरह अधोमुखि, पका घड़ा करता नदि पार
कर्मपाक से रहित प्रभो! त्यों ही तुम करते भवि भवपार ॥
इस उपकारमयी प्रकृति का, जिनमें अति आकर्षण है ॥
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥२९॥

हे जगपालक! तुम त्रिलोकपति, हो फिर भी निर्धन दिखते
अक्षरयुत हो लेखरहित, अज्ञानी हो ज्ञानी दिखते ॥
शब्द विरोधी अलंकार हैं, प्रभु तो गुण के उपवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३०॥

हे जितशत्रु! कमठ वैरी ने, तुम पर बहु उपसर्ग किया
किन्तु विफल हो कर्म रजों से, कमठ स्वयं ही जकड़ गया ॥
कर न सका कुछ अहित चूँकि, ध्यानस्थ हुए जब भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३१॥

हे बलशाली! तुम पर मूसल-धारा दैत्य ने बरसाई
भीम भयंकर बिजली की, गर्जना उसी ने करवाई ॥
खोटे कर्म बंधे उसके पर, जिनवर तो निश्चल तन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३२॥

केशविकृत मृतमुंडमाल धर, कंठ रूप विकराल किया
अग्नीज्वाला फैक-फैककर, विषधर सम मुख लाल किया ॥
क्रूर दैत्यकृत इन कष्टों से, भी नहिं प्रभु विचलित मन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३३॥

हे प्रभु! अन्यकार्य तज जो जन, तव पद आराधन करते
भक्ति भरित पुलकित मन से, त्रय संध्या में तुमको यजते ॥
धन्य-धन्य वे ही इस जग में, धन्य तुम्हारा दर्शन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३४॥

इस भव सागर में प्रभु! तेरा, पुण्यनाम नहिं सुन पाये
इसीलिए संसार जलधि में, बहुत दु:ख हमने पाये ॥
जिनका नाम मंत्र जपने से, खुल जाते भवबंधन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३५॥

हे जिन! पूर्व भवों में शायद, चरणयुगल तव नहिं अर्चे
तभी आज पर के निन्दायुत, वचनों से मन दुखित हुए ॥
अब देकर आधार मुझे, कर दो मेरा मन पावन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३६॥

मोहतिमिरयुत नैनों ने, प्रभु का अवलोकन नहीं किया
इसीलिए क्षायिक सम्यग्दर्शन आत्मा में नहीं हुआ ॥
जिनके दर्शन से भूतादिक, के कट जाते संकट हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३७॥

देखा सुना और पूजा भी, पर न प्रभो! तव ध्यान दिया
भक्तिभाव से हृदय कमल में, नहिं उनको स्थान दिया ॥
इसीलिए दुखपात्र बना, अब मिला भक्ति का साधन है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३८॥

हे दयालु! शरणागत रक्षक, तुम दु:खितजन-वत्सल हो
पुण्यप्रभाकर इन्द्रियजेता, मुझ पर भी अब दया करो ॥
जग के दु:खांकुर क्षय में, जिनकी भक्ती ही माध्यम है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥३९॥

हे त्रिभुवन पावन जिनवर! अशरण के भी तुम शरण कहे
कर न सकें यदि भक्ति तुम्हारी, समझो पुण्यहीन हम हैं
जिनका पुण्य नाम जपने से, होता नष्ट विषम ज्वर है
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४०॥

हे देवेन्द्रवंद्य! सब जग का, सार तुम्हीं ने समझ लिया
हे भुवनाधिप नाथ! तुम्हीं ने, जग को सच्चा मार्ग दिया ॥
जनमानस की रक्षा करते, दयासरोवर भगवन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४१॥

नाथ! तुम्हारे चरणों की, स्तुति में यह अभिलाषा है
भव-भव में तुम मेरे स्वामी, रहो यही आकांक्षा है ॥
जिन पद के आराधन से, मिटते सब रोग विघन घन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४२॥

हे जिनेन्द्र! तव रूप एकटक, देख-देख नहिं मन भरता
रोम-रोम पुलकित हो जाता, जो विधिवत् सुमिरन करता ॥
दिव्य विभव को देने वाले, रहते सदा अकिंचन हैं
ऐसे पारस प्रभु के पद में, शीश झुकाकर वन्दन है ॥४३॥

जो जन नेत्र 'कुमुद' शशि की, किरणों का दिव्य प्रकाश भरें
स्वर्गों के सुख भोग-भोग, कर्मों का शीघ्र विनाश करें ॥
मोक्षधाम का द्वार खोलकर, सिद्धिप्रिया का वरण करें
ऐसे पारस प्रभु को हम सब, शीश झुकाकर नमन करें ॥४४॥

(दोहा)
इस स्तोत्र सुपाठ का, भाषामय अनुवाद
किया 'चन्दनामति' सुखद, ले ज्ञानामृत स्वाद ॥

कल्याणमन्दिर-स्तोत्र-हिंदी

(दोहा)
परम-ज्योति परमात्मा, परम-ज्ञान परवीन
वंदूँ परमानंदमय घट-घट-अंतर-लीन ॥१॥

(चौपाई)

निर्भयकरन परम-परधान, भव-समुद्र-जल-तारन-यान
शिव-मंदिर अघ-हरन अनिंद, वंदूं पार्श्व-चरण-अरविंद ॥२॥

कमठ-मान-भंजन वर-वीर, गरिमा-सागर गुण-गंभीर
सुर-गुरु पार लहें नहिं जास, मैं अजान जापूँ जस तास ॥३॥

प्रभु-स्वरूप अति-अगम अथाह, क्यों हम-सेती होय निवाह
ज्यों दिन अंध उल्लू को होत, कहि न सके रवि-किरण-उद्योत ॥४॥

मोह-हीन जाने मनमाँहिं, तो हु न तुम गुन वरने जाहिं
प्रलय-पयोधि करे जल गौन, प्रगटहिं रतन गिने तिहिं कौन ॥५॥

तुम असंख्य निर्मल गुणखान, मैं मतिहीन कहूँ निज बान
ज्यों बालक निज बाँह पसार, सागर परमित कहे विचार ॥६॥

जे जोगीन्द्र करहिं तप-खेद, तेऊ न जानहिं तुम गुनभेद
भक्तिभाव मुझ मन अभिलाष, ज्यों पंछी बोले निज भाष ॥७॥

तुम जस-महिमा अगम अपार, नाम एक त्रिभुवन-आधार
आवे पवन पदमसर होय, ग्रीषम-तपन निवारे सोय ॥८॥

तुम आवत भवि-जन मनमाँहिं, कर्मनि-बन्ध शिथिल ह्वै जाहिं
ज्यों चंदन-तरु बोलहिं मोर, डरहिं भुजंग भगें चहुँ ओर ॥९॥

तुम निरखत जन दीनदयाल, संकट तें छूटें तत्काल
ज्यों पशु घेर लेहिं निशि चोर, ते तज भागहिं देखत भोर ॥१०॥

तुम भविजन-तारक इमि होहि, जे चित धारें तिरहिं ले तोहि
यह ऐसे करि जान स्वभाव, तिरहिं मसक ज्यों गर्भित बाव ॥११॥

जिहँ सब देव किये वश वाम, तैं छिन में जीत्यो सो काम
ज्यों जल करे अगनि-कुल हान, बडवानल पीवे सो पान ॥१२॥

तुम अनंत गुरुवा गुन लिए, क्यों कर भक्ति धरूं निज हिये
ह्वै लघुरूप तिरहिं संसार, प्रभु तुम महिमा अगम अपार ॥१३॥

क्रोध-निवार कियो मन शांत, कर्म-सुभट जीते किहिं भाँत
यह पटुतर देखहु संसार, नील वृक्ष ज्यों दहै तुषार ॥१४॥

मुनिजन हिये कमल निज टोहि, सिद्धरूप सम ध्यावहिं तोहि
कमल-कर्णिका बिन-नहिं और, कमल बीज उपजन की ठौर ॥१५॥

जब तुव ध्यान धरे मुनि कोय, तब विदेह परमातम होय
जैसे धातु शिला-तनु त्याग, कनक-स्वरूप धवे जब आग ॥१६॥

जाके मन तुम करहु निवास, विनशि जाय सब विग्रह तास
ज्यों महंत ढिंग आवे कोय, विग्रहमूल निवारे सोय ॥१७॥

करहिं विबुध जे आतमध्यान, तुम प्रभाव तें होय निदान
जैसे नीर सुधा अनुमान, पीवत विष विकार की हान ॥१८॥

तुम भगवंत विमल गुणलीन, समल रूप मानहिं मतिहीन
ज्यों पीलिया रोग दृग गहे, वर्ण विवर्ण शंख सों कहे ॥१९॥

(दोहा)
निकट रहत उपदेश सुन, तरुवर भयो 'अशोक'
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥२०॥

'सुमन वृष्टि' ज्यों सुर करहिं, हेठ बीठमुख सोहिं
त्यों तुम सेवत सुमन जन, बंध अधोमुख होहिं ॥२१॥

उपजी तुम हिय उदधि तें, 'वाणी' सुधा समान
जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमर-पदथान ॥२२॥

कहहिं सार तिहुँ-लोक को, ये 'सुर-चामर' दोय
भावसहित जो जिन नमहिं, तिहँ गति ऊरध होय ॥२३॥

'सिंहासन' गिरि मेरु सम, प्रभु धुनि गरजत घोर
श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन मोर ॥२४॥

छवि-हत होत अशोक-दल, तुम 'भामंडल' देख
वीतराग के निकट रह, रहत न राग विशेष ॥२५॥

सीख कहे तिहुँ-लोक को, ये 'सुर-दुंदुभि' नाद
शिवपथ-सारथ-वाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥२६॥

'तीन छत्र' त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छवि देत
त्रिविध-रूप धर मनहु शशि, सेवत नखत-समेत ॥२७॥

(पद्धरि छन्द)
प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम,परताप पुंज जिम शुद्ध-हेम
अतिधवल सुजस रूपा समान, तिनके गुण तीन विराजमान ॥२८॥

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमत भाल, तिन सीस मुकुट तज देहिं माल
तुम चरण लगत लहलहे प्रीति, नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥२९॥

प्रभु भोग-विमुख तन करम-दाह, जन पार करत भवजल निवाह
ज्यों माटी-कलश सुपक्क होय, ले भार अधोमुख तिरहिं तोय ॥३०॥

तुम महाराज निरधन निराश,तज तुम विभव सब जगप्रकाश
अक्षर स्वभाव-सु लिखे न कोय, महिमा भगवंत अनंत सोय ॥३१॥

कोपियो कमठ निज बैर देख, तिन करी धूलि वरषा विशेष
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन, सो भयो पापी लंपट मलीन ॥३२॥

गरजंत घोर घन अंधकार, चमकंत-विज्जु जल मूसल-धार
वरषंत कमठ धर ध्यान रुद्र, दुस्तर करंत निज भव-समुद्र ॥३३॥

(वास्तु छन्द)
मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि
भेजे तुरत पिशाच-गण, नाथ-पास उपसर्ग कारण
अग्नि-जाल झलकंत मुख, धुनिकरत जिमि मत्त वारण
कालरूप विकराल-तन, मुंडमाल-हित कंठ
ह्वै निशंक वह रंक निज, करे कर्म दृढ़-गंठ ॥३४॥

(चौपाई छन्द)
जे तुम चरण-कमल तिहुँकाल, सेवहिं तजि माया जंजाल
भाव-भगति मन हरष-अपार, धन्य-धन्य जग तिन अवतार ॥३५॥

भवसागर में फिरत अजान, मैं तुव सुजस सुन्यो नहिं कान
जो प्रभु-नाम-मंत्र मन धरे, ता सों विपति भुजंगम डरे ॥३६॥

मनवाँछित-फल जिनपद माहिं, मैं पूरब-भव पूजे नाहिं
माया-मगन फिर्यो अज्ञान, करहिं रंक-जन मुझ अपमान ॥३७॥

मोहतिमिर छायो दृग मोहि, जन्मान्तर देख्यो नहिं तोहि
जो दुर्जन मुझ संगति गहें, मरम छेद के कुवचन कहें ॥३८॥

सुन्यो कान जस पूजे पायँ, नैनन देख्यो रूप अघाय
भक्ति हेतु न भयो चित चाव, दुःखदायक किरिया बिनभाव ॥३९॥

महाराज शरणागत पाल, पतित-उधारण दीनदयाल
सुमिरन करहूँ नाय निज-शीश, मुझ दुःख दूर करहु जगदीश ॥४०॥

कर्म-निकंदन-महिमा सार, अशरण-शरण सुजस विस्तार
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय, तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥४१॥

सुर-गन-वंदित दया-निधान, जग-तारण जगपति अनजान
दुःख-सागर तें मोहि निकासि, निर्भय-थान देहु सुख-रासि ॥४२॥

मैं तुम चरण कमल गुणगाय, बहु-विधि-भक्ति करी मनलाय
जनम-जनम प्रभु पाऊँ तोहि, यह सेवाफल दीजे मोय ॥४३॥

(बेसरी छंद - षड्पद)

इहविधि श्री भगवंत, सुजस जे भविजन भाषहिं
ते निज पुण्यभंडार, संचि चिर-पाप प्रणासहिं ॥
रोम-रोम हुलसंति अंग प्रभु-गुण मन ध्यावहिं
स्वर्ग संपदा भुंज वेगि पंचमगति पावहिं ॥
यह कल्याणमंदिर कियो, कुमुदचंद्र की बुद्धि
भाषा कहत 'बनारसी', कारण समकित-शुद्धि ॥४४॥

भक्तामर-प्रणत-मौलिमणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमोवितानम्
सम्यक् प्रणम्य जिन पादयुगं युगादा-
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - भक्तामर= भक्त अमर- भक्ति करने वाले देव,प्रणत=झुके हुए,मौलि=मुकुट,मणि=मणियों की प्रभाणाम = कांति को! उद्योतकमं= प्रकाशित/विकसित करने वाले,दलित =नष्ट करने वाले, पाप-तमो=पाप रूपी अन्धकार,वितानम्=विस्तार को। सम्यक्-प्रणम्य= अच्छी प्रकार प्रणाम करके,जिन-पाद-युगम= जिनेनेंद्र भगवान् के दोनों पैरों को, युगादौ=युग के आदि में, भव जले= संसार रुपी जल,पततां=गिरते हुए, जनानाम्= प्राणियों को, आलम्बनं=सहारा देने वाले! भावार्थ - भगवान ऋषभदेव के चरण-युगल में जब देवगण भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं, तब उनके मुकुट में जडी मणियां प्रभु के चरणों की दिव्य कांति से और अधिक चमकने लगती है। भगवान के ऐसे दीप्तिमान चरणों का स्पर्श ही प्राणियों के पापों का नाश करने वाला है, तथा जो उन चरण-युगल का आलम्बन(सहारा) लेता है, वह संसार समुद्र से पार हो जाता है। इस युग के प्रारंभ में धर्म का प्रवर्तन करने वाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के चरण-युगल में विधिवत प्रणाम करके मैं स्तुति करता हूँ।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्वबोधा-
दुद्भूत- बुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय चित्त हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - यःसंस्तुतः= जिनका स्तवन किया गया था, सकल=सम्पूर्ण, वाड.मय=जिनवाणी /द्वादशांग की,तत्व=तत्वों को,बोधा=जानने के , उद्भूत=उत्पन्न हुई है,बुद्धि=बुद्धि के,पटुभिः=चतुर, जिनमे ,सुर= देव ,लोक- नाथैः=और देव लोक के नाथों अर्थात इन्द्रों के द्वारा। स्तोत्रै =स्तोत्र द्वारा र्जगत-त्रितय=तीनो लोक के जीवों के ,चित्त=चित्त को,हरै =हरने वाले रूदारैः=उत्कृष्ट /

श्रेष्ट,तं प्रथमं जिनेन्द्रम् =उन प्रथम जिनेन्द्र तीर्थंकर भगवान् आदि नाथ प्रभु का, किल=निश्चय से ,अहम =मै,अपि =भी,स्तोष्ये -स्तवन करूँगा ! भावार्थ - सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने से जिनकी बुद्धि अत्यंत प्रखर हो गई है, ऐसे देवेन्द्रों ने तीन लोक के चित्त को आनन्दित करने वाले सुंदर स्त्रोतों द्वारा प्रभु आदिनाथ की स्तुति की है। उन प्रथम जिनेन्द्र की मैं, अल्पबुद्धि वाला मानतुंग आचार्य भी स्तुति करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित- पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम्
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छित जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - बुद्धया=बुद्धि के, विनापि=बिना भी, विबुधार्चित=देवों के द्वारा पूजित, पाद-पीठ=चरण रखने का आसन्न (सिंहासन)! स्तोतुं=स्तवन करने को, समुद्यत= तत्पर, मति=बुद्धि वाला हुआ हूँ, विगत=छोड़कर, त्रप=लजजा को, अह्म्-मै, बालं=बालक, विहाय=छोड़कर, जल= जल में, संस्थितं=स्थित, इंदु=चन्द्रमा, बिम्ब=बिम्ब मन्यः=अन्य क=कौन, इच्छति=इच्छा करता है, जनः=पुरुष, सहसा=बिना विचारे, ग्रहीतुम=पकड़ने की! भावार्थ - हे देवों के द्वारा पूजित जिनेश्वर ! जिस प्रकार जल में पडते चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकडना असंभव होते हुए भी, नासमझ बालक उसे पकडने का प्रयास करता है, उसी प्रकार मैं अत्यंत अल्प बुद्धि होते हुए भी आप जैसे महामहिम की स्तुति करने का प्रयास कर रहा हूँ।

वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ- वक्तुं=कहने के लिए, गुणान्-गुणों को,गुण-समुद्र=हे गुणों के सागर (भगवान् के लिए संबोधन) शशाँक=चंद्रमा,कान्तान्=जैसी कांति अर्थात स्वच्छ /पवित्र, क:क्षम:=कैसे समर्थ हो सकता है, ते=आपके,सुरगुरु=बृहस्पति के,प्रतिम:अपि=सदृश्य भी,बुद्धया=बुद्धि वाले । कल्पान्त-काल=प्रलय काल की, पवन=हवा के, उद्धत=प्रचंड, नक्र=मगरमच्छ, चक्रं=समूह को वा अलम्= कौन समर्थ हो सकता है, तरीतुम=तैरने के लिए, अम्बु निधिं=समुद्र को, भुजाभ्याम्=अपनी भुजाओं से भावार्थ - हे गुणों के समुद्र जिनेश्वर ! आपके चन्द्रमा के समान स्वच्छ, आनन्दरूप, अनंत गुणों का वर्णन करने में देव-गुरु बृहस्पति के समान बुद्धिमान भी कौन पुरुष समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं| अथवा प्रलयकाल की वायु के द्वारा प्रचण्ड है मगरमच्छों का समूह जिसमें, ऐसे समुद्र को भुजाओं के द्वारा तैरने के लिए कौन समर्थ है अर्थात् कोई नहीं|

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - सोऽहं=इस लिए मै, तथापि=फिर भी, तव भक्ति=आपकी भक्ति, वशात=वश, मुनीश-हे मुनीश्वर!, कर्तुं=करूँगा, स्तवं=स्तवन, विगत=बिना, शक्ति रपि=शक्ति के भी, प्रवृत्त=प्रवृत्त हो रहा हूँ । प्रीती=प्रीती, स्नेह वश, आत्मवीर्यम=शक्ति का, अविचार्य=विचार करे बिना, मृगो= हिरनी, मृगेनद्रम्=सिंह से, न अभ्येति=नहीं जाती, किं=क्या, निज=अपने शिशो=बच्चे की, परिपालनार्थम्=रक्षा करती है! भावार्थ - हे मुनीश! तथापि-शक्ति रहित होता हुआ भी, मैं- अल्पज्ञ, भक्तिवश, आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ| जैसे हरिणी, अपनी शक्ति का विचार न कर, प्रीतिवश अपने शिशु की रक्षा के लिये, क्या सिंह के सामने नहीं जाती? अर्थात जाती हैं|

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारु- कलिका निकरैकहेतु ॥६॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - अल्पश्रुतं=अल्प ज्ञानी, श्रुतवतां=द्वादशांग के ज्ञानी विद्वानो का, परिहासधाम=हास्य का पात्र होने पर भी, त्वद भक्ति रेव=आपकी भक्ति ही, मुखरी=बोलने के लिये प्रेरित, कुरुतु=कर रही है, बलात्=बल पूर्वक, माम्=मुझ को। यत्कोकिल=जैसे कोयल को, किल-निश्चय से, मधौ-वसंत ऋतु मे, मधुरं-सुरीली आवाज़ मे, विरौति-बोलती है, तत्=उसमे, आम्र=आम की, चारूकलिका=सुंदर मंजरी, निकर=समुदाय ही, एक हेतु=एक कारण है। भावार्थ - हे प्रभो ! जिस प्रकार बसंत-ऋतु में आम की मंजरियां खाकर कोकिल मधुर स्वर में कूजती है, उसी प्रकार आपकी भक्ति का बल पाकर मैं भी स्तुति करने को वाचाल हो रहा हूँ। अन्यथा मेरी क्या शक्ति? मैं तो अल्पज्ञ हूँ और विद्वानों के सामने उपहास का पात्र हूँ।

त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्
आक्रान्त -लोकमलि-नीलमशेषमाशु
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - त्वत्संस्त्वेन= आपके संस्तावन करने से, भव= जन्म जन्म के, सन्तति=परम्परा, सन्निबद्धम=बांधे गए, पापं क्षणात् क्षयम्= पाप कर्म क्षण भर में क्षय को, उपैति= प्राप्त हो जाते है, शरीर भाजाम्=प्राणियों अर्थात संसारी जीवों के! आक्रांत लोकम्=सम्पूर्ण लोक में, अलि नीलम्=काले भवरे के सामान, अशेषम्=सम्पूर्ण, अशु-शीघ्र ही, सूर्यांशु-भिन्नम=सूर्य की किरणों से छिन्न भिन्न, इव=तरह, शार्वरम्= रात्रि सम्बन्धी, अंधकारम्=अन्धकार भावार्थ - हे आदिदेव ! आपकी भक्ति में लीन होने वाले प्राणियों के अनेक जन्मों में बाँधे गये पाप कर्म आपकी भक्ति के प्रभाव से क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं, जैसे समस्त संसार को आच्छादित करने वाला भंवरे के समान काला पीला सघन अंधकार सूर्य की किरणों से क्षणभर में छिन्न भिन्न हो जाता है|

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फल द्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ- मत्वेति=इति मत्वा-ऐसा मानकर, नाथ=भगवान!, तव=आपका ,संस्तवनं= उत्कृष्ट स्तवन करने से, मया=मेरे द्वारा, तनु=मंद, ध्यापी=बुद्धि वाले, इदम= यह, आरभ्यते=आरम्भ किया जा रहा है, तव प्रभावात्=आपके प्रभाव से, सतां=सज्जन जीवों के, चेतो हरिष्यति=चित्त को हरेगा, नलिनी दलेषु=कमलिनी के पत्ते पर, ननू=निश्चय से, उद बिंदु= पानी की बूँद, मुक्त फल=मोती, ध्युतिम=कान्ति, उपैति=प्राप्त होती है भावार्थ - हे स्वामिन्! ऐसा मानकर मुझ मन्दबुद्धि के द्वारा भी आपका यह स्तवन प्रारम्भ किया जाता है, जो आपके दिव्य प्रभाव से सज्जनों के चित्त को हरेगा| जिस प्रकार कमलिनी के पत्तों पर पडी नन्हीं-नन्हीं ओस की बूँदें सूरज की किरणें पडने से मोती के समान चमकने लगती है।

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति
दूरे सहस्त्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ॥९॥

अन्वयार्थ : भावार्थ - हे जिनेश्वरदेव ! **[समस्त-दोषं]** समस्त दोषों का नाश करने वाले आपके **[स्तवनं]** स्त्रोत की असीम शक्ति का तो कहना ही क्या, किन्तु श्रद्धा भक्तिपूर्वक **[तव]** आपकी **[संकथाऽपि]** पवित्र कथा भी **[जगतां]** जगत के जीवों के **[दुरीतानि हन्ति]** पापों का नाश कर देती है । जैसे, सूर्य तो दूर, उसकी **[प्रभैव]** प्रभा ही **[पद्मा-करेषु]** सरोवर में **[जलजानि]** कमलों को **[विकासभाञ्जि]** विकसित कर देती है ।

नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - नात्यद्-भुतं=न+अति+अद्भुतं - इसमें अत्यंत आश्चर्य नहीं है, भुवन-भूषण=तीनो लोको के आभूषण स्वरुप, भूतनाथ=समस्त जीवों के स्वामी, हे प्राणियों के स्वामी भूतै-र्गुणै=आपके पवित्र गुणों का, भुवि=इस पृथ्वी पर, भवन्तमभिष्टुवन्तः = भवन्तं-आपके +अभिष्टुवन्तः-स्तुति करने वाले तुल्या=सामान, भवन्ति=हो जाते है, भवतो=आपके, ननु=निश्चय से, तेन=उस मालिक, किं=क्या, वा=प्रयोजन, भूत्या-श्रितं=भूत्या+आश्रितम=आश्रितों को, भूत्या -विभूति से, य=जो, इह=इस लोक में, नात्म समंकरोति-न +आत्म +समं+करोति=अपने सामान नहीं करता ! भावर्थ - हे जगत् के भूषण! हे प्राणियों के नाथ! सत्यगुणों के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले पुरुष पृथ्वी पर यदि आपके समान हो जाते हैं तो इसमें अधिक आश्चर्य नहीं है| क्योंकि उस स्वामी से क्या प्रयोजन, जो इस लोक में अपने अधीन पुरुष को सम्पत्ति के द्वारा अपने समान नहीं कर लेता |

दृष्टवा भवन्तमनिमेष विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः
पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - दृष्टवा=देखकर, भवन्तम=आपको, अनिमेष= बिना पलके झुकाए, विलोक-नीयम्=देखने के योग्य, नान्यत्र=न+अन्यत्र - और कही नहीं/कुदेव आदि को, तोषम=संतोष, उपयाति=प्राप्त होती है, जनस्य=मनुष्यों को, चक्षुः=आँखें । पीत्वा=पीकर, पयः=जल, शशिकरध्युति-चंद्रमा के सामान कान्तिमान, दुग्ध-सिन्धोः=क्षीर सागर के, क्षारं=खारे, जलं=जल को, जल-निधे=लवन समुद्र के, रसितुं=पीने की, कः-कौन, इच्छेत=इच्छा करेगा ! भावार्थ - हे अनिमेष दर्शनीय प्रभो! आपके दिव्य स्वरूप के

दर्शन के पश्चात् मनुष्यों के नेत्र अन्यत्र सन्तोष को प्राप्त नहीं होते। चन्द्रकीर्ति के समान निर्मल क्षीरसमुद्र के जल को पीकर कौन पुरुष समुद्र के खारे पानी को पीना चाहेगा? अर्थात् कोई नहीं।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्तवं
निर्मापितस्त्रिभुवनैक ललाम भूत
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

अन्वयार्थ : शब्दार्थ - यै=जिनके द्वारा, शांतराग=शांत भाव के धारक अर्थात वैराग्य उत्पन्न करने वाले, रुचिभिः-प्रभावाले, परमाणुभि:=परमाणुओं से, तवम्=आप, निर्मापित:=बनाये गए है, त्रिभुवनैक=त्रिलोक में एकमात्र अद्वितीय, ललामभूत=सौन्दर्य के धारक, तावन्त= उतने, एव=ही थे , खलु-निश्चय से, ते=वे ,पयणवः= परमाणु, पृथिव्याम=पृथ्वी पर, यत्=क्योकि, तेसमानम्=उनके सामान, अपरं=दूसरा, नहि=नहीं, रूपम्=रूप, अस्ति =है! जितने आपके शरीर में है भावार्थ - हे त्रिभुवन के एकमात्र आभुषण जिनेन्द्रदेव! जिन रागरहित सुन्दर परमाणुओं के द्वारा आपकी रचना हुई, वे परमाणु पृथ्वी पर निश्चय से उतने ही थे क्योंकि आपके समान दूसरा रूप नहीं है।

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्
बिम्बं कलङ्क मलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पांडु-पलाशकल्पम् ॥१३॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो! सम्पूर्ण रुप से तीनों जगत् की उपमाओं का विजेता, देव मनुष्य तथा धरणेन्द्र के नेत्रों को हरने वाला कहां आपका मुख? और कलंक से मलिन, चन्द्रमा का वह मण्डल कहां? जो दिन में पलाश (ढाक) के पत्ते के समान फीका पड़ जाता।

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति
ये संश्रितास् त्रिजगदीश्वर नाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

अन्वयार्थ : पूर्णमासी के चन्द्रमा की कलाओं के समान उज्ज्वल आपके गुण, तीन लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं क्योंकि जो अद्वितीय त्रिजगत् के भी नाथ के आश्रित हैं उन्हें इच्छानुसार घूमते हुए कौन रोक सकता हैं? कोई नहीं|

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार मार्गम्
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखिरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

अन्वयार्थ : हे वीतराग देव ! यदि आपका मन देवागंनाओं के द्वारा किंचित् भी विक्रति को प्राप्त नहीं कराया जा सका, तो इस विषय में आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि सामान्य पर्वतों को हिला देने वाली प्रलयकाल की पवन के द्वारा क्या कभी सुमेरु पर्वत का शिखर हिल सका है? नहीं|

निर्धूमवर्तिरपवर्जित तैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी करोषि
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! आप धूम तथा बाती से रहित, तेल के प्रवाह के बिना भी इस सम्पूर्ण लोक को प्रकट करने वाले अपूर्व जगत प्रकाशक अलौकिक दीपक हैं जिसे विशाल पर्वतों को कंपा देने वाला झंझावात भी कभी बुझा नहीं सकता।

नास्तं कादाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति
नाम्भोधरोदर निरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके ॥१७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! आप न तो कभी अस्त होते हैं न ही राहु के द्वारा ग्रसे जाते हैं और न आपका महान तेज मेघ से तिरोहित होता है आप एक साथ तीनों लोकों को शीघ्र ही प्रकाशित कर देते हैं अतः आप सूर्य से भी अधिक महिमावन्त हैं।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प कान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्रदेव ! आपका मुखमंडल नित्य उदित रहने वाला विलक्षण चंद्रमा है, जिसने मोहरूपी अंधकार को नष्ट कर दिया है, जो अत्यंत दीप्तिमान है, जिसे न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं, तथा जो जगत को प्रकाशित करता हुआ अलौकिक चंद्रमंडल की तरह सुशोभित होता है ।|

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ
निष्पन्न- शालि-वन-शालिनि जीव-लोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ॥१९॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! जब अंधकार आपके मुख रुपी चन्द्रमा के द्वारा नष्ट हो जाता है तो रात्रि में चन्द्रमा से एवं दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन? जैसे कि पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान धरती तल पर पानी के भार से झुके हुए मेघों से फिर क्या प्रयोजन |

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

अन्वयार्थ : अनंत गुण-पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान जिस प्रकार आप में सुशोभित होता है वैसा हरि-हरादिक अर्थात विष्णु-ब्रह्मा-महेश आदि लौकिक देवों में है ही नहीं। स्फुरायमान महारत्नों में जैसा तेज होता है, किरणों की राशि से व्याप्त होने पर भी काँच के टुकडों में वैसा तेज नहीं होता ।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्| देखे गये विष्णु महादेव ही मैं उत्तम मानता हूँ, जिन्हें देख लेने पर मन आपमें सन्तोष को प्राप्त करता है| किन्तु आपको देखने से क्या लाभ? जिससे कि प्रथ्वी पर कोई दूसरा देव जन्मान्तर में भी चित्त को नहीं हर पाता |

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालं ॥२२॥

अन्वयार्थ : सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं, परन्तु आप जैसे पुत्र को दूसरी माँ उत्पन्न नहीं कर सकी| नक्षत्रों को सभी दिशायें धारण करती हैं परन्तु कान्तिमान् किरण समूह से युक्त सूर्य को पूर्व दिशा ही जन्म देती हैं |

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयंति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! तपस्वीजन आपको सूर्य की तरह तेजस्वी निर्मल और मोहान्धकार से परे रहने वाले परम पुरुष मानते हैं | वे आपको ही अच्छी तरह से प्राप्त कर म्रत्यु को जीतते हैं | इसके सिवाय मोक्षपद का दूसरा अच्छा रास्ता नहीं है |

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम्
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

अन्वयार्थ : सज्जन पुरुष आपको शाश्वत, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आद्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंगकेतु, योगीश्वर, विदितयोग, अनेक, एक ज्ञानस्वरुप और अमल कहते हैं |

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात्
धातासि धीर शिव-मार्ग विधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

अन्वयार्थ : देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित ज्ञान वाले होने से आप ही बुद्ध हैं| तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण आप ही शंकर हैं| हे धीर! मोक्षमार्ग की विधि के करने वाले होने से आप ही ब्रह्मा हैं| और हे स्वामिन्! आप ही स्पष्ट रुप से मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हैं |

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! तीनों लोकों के दुःख को हरने वाले आपको नमस्कार हो, प्रथ्वीतल के निर्मल आभुषण स्वरुप आपको नमस्कार हो, तीनों जगत् के परमेश्वर आपको नमस्कार हो और संसार समुन्द्र को सुखा देने वाले आपको नमस्कार हो|

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीशः!
दोषैरूपात्तविविधाश्रय- जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश! अन्यत्र स्थान न मिलने के कारण समस्त गुणों ने यदि आपका आश्रय लिया हो तो तथा अन्यत्र अनेक आधारों को प्राप्त होने से अहंकार को प्राप्त दोषों ने कभी स्वप्न में भी आपको न देखा हो तो इसमें क्या आश्चर्य?

उच्चैरशोक तरु-संश्रितमुन्मयूख
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त- तमो-वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥२८॥

अन्वयार्थ : ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, उन्नत किरणों वाला, आपका उज्ज्वल रुप जो स्पष्ट रुप से शोभायमान किरणों से युक्त है, अंधकार समूह के नाशक, मेघों के निकट स्थित सूर्य बिम्ब की तरह अत्यन्त शोभित होता है |

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता- वितानं
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्र-रश्मेः ॥२९॥

अन्वयार्थ : मणियों की किरण-ज्योति से सुशोभित सिंहासन पर, आपका सुवर्ण कि तरह उज्ज्वल शरीर, उदयाचल के उच्च शिखर पर आकाश में शोभित, किरण रुप लताओं के समूह वाले सूर्य मण्डल की तरह शोभायमान हो रहा है|

कुन्दावदात चल-चामर-चारु-शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्
उद्यच्छशांक-शुचि-निर्झर वारि-धार
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

अन्वयार्थ : कुन्द के पुष्प के समान धवल चँवरों के द्वारा सुन्दर है शोभा जिसकी, ऐसा आपका स्वर्ण के समान सुन्दर शरीर, सुमेरुपर्वत, जिस पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल झरने के जल की धारा बह रही है, के स्वर्ण निर्मित ऊँचे तट की तरह शोभायमान हो रहा है|

छत्रत्रयं तव विभाति शशांक-कान्त
मुच्चैःस्थितं स्थगित-भानु-कर प्रतापम्
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

अन्वयार्थ : चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य की किरणों के सन्ताप को रोकने वाले, तथा मोतियों के समूहों से बढ़ती हुई शोभा को धारण करने वाले, आपके ऊपर स्थित तीन छत्र, मानो आपके तीन लोक के स्वामित्व को प्रकट करते हुए शोभित हो रहे हैं|

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः
सद्धर्मराज-जय-घोषण घोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

अन्वयार्थ : गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओं को गुञ्जायमान करने वाला, तीन लोक के जीवों को शुभ विभूति प्राप्त कराने में समर्थ और समीचीन जैन धर्म के स्वामी की जय घोषणा करने वाला दुन्दुभि वाद्य आपके यश का गान करता हुआ आकाश में शब्द करता है|

मन्दार-सुन्दर-नमेरू-सुपारिजात
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर- वृष्टि-रुद्धा
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द मरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

अन्वयार्थ : सुगंधित जल बिन्दुओं और मन्द सुगन्धित वायु के साथ गिरने वाले श्रेष्ठ मनोहर मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा आपके वचनों की पंक्तियों की तरह आकाश से होती है । (छठवां प्रातिहार्य "पुष्पवृष्टि")

शुम्भत्प्रभा-वलय भूरिविभा विभोस्ते
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती
प्रोद्यद्दिवाकर निरन्तर- भूरि-संख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो! तीनों लोकों के कान्तिमान पदार्थों की प्रभा को तिरस्कृत करती हुई आपके मनोहर भामण्डल की विशाल कान्ति, एक साथ उगते हुए अनेक सूर्यों की कान्ति से युक्त होने पर भी चन्द्रमा से अधिक शीतलता, सौम्यता प्रदान करने वाली है । (सातवां प्रातिहार्य "भामण्डल")|

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग विमार्गणेष्टः
सद्धर्म-तत्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

अन्वयार्थ : आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने में सक्षम, तीन लोक के जीवों को समीचीन धर्म का कथन करने में समर्थ, स्पष्ट अर्थ वाली, समस्त भाषाओं में परिवर्तित करने वाले स्वाभाविक गुण से सहित होती है । (आठवां प्रातिहार्य "दिव्यध्वनि")

उन्निद्र-हेम-नव-पंकज-पुंज-कान्ती
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

अन्वयार्थ : नव विकसित स्वर्ण कमलों के समान शोभायमान नखों की किरण प्रभा से सुन्दर आपके चरण जहाँ पड़ते हैं वहाँ देव गण स्वर्णमयी कमलों की रचना करते जाते हैं ।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र! इस प्रकार धर्मोपदेश के कार्य में जैसा आपका ऐश्वर्य होता है, वैसा अन्य देवों को कभी प्राप्त नहीं होता। अंधकार को नष्ट करने वाली जैसी प्रभा सूर्य की होती है वैसी अन्य प्रकाशमान भी ग्रहों की कैसे हो सकती है?

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूलं
मत्तभ्रमद् भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

अन्वयार्थ : आपके आश्रित मनुष्यों को, झरते हुए मद जल से जिसके गण्डस्थल मलीन, कलुषित तथा चंचल हो रहे है और उन पर उन्मत्त होकर मंडराते हुए काले रंग के भौरे अपने गुजंन से क्रोध बढा़ रहे हों ऐसे ऐरावत की तरह उद्दण्ड, सामने आते हुए हाथी को देखकर भी, भय नहीं होता|

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमिभागः
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥३९॥

अन्वयार्थ : सिंह, जिसने हाथी का गण्डस्थल विदीर्ण कर, गिरते हुए उज्ज्वल तथा रक्तमिश्रित गजमुक्ताओं से पृथ्वी तल को विभूषित कर दिया है तथा जो छलांग मारने के लिये तैयार है वह भी अपने पैरों के पास आये हुए ऐसे पुरुष पर आक्रमण नहीं करता जिसने आपके चरण युगल रुप पर्वत का आश्रय ले रखा है|

कल्पांत-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

अन्वयार्थ : आपकी नाम स्मरणरुपी जलधारा, प्रलयकाल की वायु से उद्धत, प्रचण्ड अग्नि के समान प्रज्वलित, उज्ज्वल चिनगारियों से युक्त, संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह सामने आती हुई वन की अग्नि को पूर्ण रुप से बुझा देती है ।

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शंकः
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

अन्वयार्थ : जिस पुरुष के हृदय में नाम स्मरणरुपी-नागदमनी नामक औषध मौजूद है, वह पुरुष लाल लाल आँखों वाले, मदयुक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले, क्रोध से उद्धत और ऊपर को फण उठाये हुए, सामने आते हुए सर्प को निःशंक निर्भय होकर पुष्पमाला की भांति दोनों पैरों से लाँघ जाता है|

वल्गत्तुरंग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्!
उद्यद्दिवाकर मयूख शिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥

अन्वयार्थ : आपके यशोगान से युद्धक्षेत्र में उछलते हुए घोड़े और हाथियों की गर्जना से उत्पन भयंकर कोलाहल से युक्त पराक्रमी राजाओं की भी सेना, उगते हुए सूर्य किरणों की शिखा से वेधे गये अंधकार की तरह शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है |

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! आपके चरण कमलरुप वन का सहारा लेने वाले पुरुष, भालों की नोकों से छेद गये हाथियों के रक्त रुप जल प्रवाह में पड़े हुए, तथा उसे तैरने के लिये आतुर हुए योद्धाओं से भयानक युद्ध में, दुर्जय शत्रु पक्ष को भी जीत लेते हैं ।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ
रंगत्तरंग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा
स्त्रासं विहाय भवतःस्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

अन्वयार्थ : क्षोभ को प्राप्त भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भयभीत करने वाले दावानल से युक्त समुद्र में विकराल लहरों के शिखर पर स्थित है जहाज जिनका, ऐसे मनुष्य, आपके स्मरण मात्र से भय छोड़कर पार हो जाते हैं।

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्चुतजीविताशाः
त्वत्पाद-पंकज -रजोऽमृत-दिग्ध-देहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥४५॥

अन्वयार्थ : उत्पन्न हुए भीषण जलोदर रोग के भार से झुके हुए, शोभनीय अवस्था को प्राप्त और नहीं रही है जीवन की आशा जिनके, ऐसे मनुष्य आपके चरण कमलों की रज रुप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए कामदेव के समान रुप वाले हो जाते हैं।

आपाद-कण्ठमुरू-श्रृंखल-वेष्टितांगा
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंघाः
त्वन्नाम-मंत्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४६॥

अन्वयार्थ : जिनका शरीर पैर से लेकर कण्ठ पर्यन्त बडी़-बडी़ सांकलों से जकडा़ हुआ है और विकट सघन बेड़ियों से जिनकी जंघायें अत्यन्त छिल गईं हैं ऐसे मनुष्य निरन्तर आपके नाममंत्र को स्मरण करते हुए शीघ्र ही बन्धन मुक्त हो जाते है।

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
संग्राम-वारिधि-महोदर बन्धनोत्थम्
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

अन्वयार्थ : जो बुद्धिमान मनुष्य आपके इस स्तवन को पढ़ता है उसका मत्त हाथी, सिंह, दवानल, युद्ध, समुद्र जलोदर रोग और बन्धन आदि से उत्पन्न भय मानो डरकर शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है।

स्तोत्रस्त्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया विविध-वर्ण-विचित्रपुष्पाम्
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव! इस जगत् में जो लोग मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक (ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि) गुणों से रची गई नाना अक्षर रुप, रंग बिरंगे फूलों से युक्त आपकी स्तुति रुप माला को कंठाग्र करता है उस उन्नत सम्मान वाले पुरुष को अथवा आचार्य मानतुंग को स्वर्ग मोक्षादि की विभूति अवश्य प्राप्त होती है।

भक्तामर

आचार्य मानतुंग कृत, पं कमलकुमारजी शास्त्री द्वारा हिंदी अनुवाद

तर्ज : आओ बच्चों तुम्हे दिखाएं
जिसने राग द्वेष कामादिक जीते
फूल तुम्हें भेजा है ख़त में
कसमें वादे प्यार वफा

भक्त अमर नत-मुकुट सुमणियों, की सुप्रभा का जो भासक
पापरूप अतिसघन-तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक ॥
भव-जल पतित जनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन
उनके चरण-कमल को करते, सम्यक् बारम्बार नमन ॥१॥

सकल वाङ् मय तत्त्वबोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग-जन मनहारी ॥
अति आश्चर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिन स्वामी की
जगनामी-सुखधामी तद्भव-शिवगामी अभिरामी की ॥२॥

स्तुति को तैयार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड़ के लाज
विज्ञजनों से अर्चित हैं प्रभु, मंदबुद्धि की रखना लाज ॥
जल में पड़े चन्द्र-मंडल को, बालक बिना कौन मतिमान ?
सहसा उसे पकडऩे वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान ॥३॥

हे जिन ! चन्द्रकान्त से बढक़र, तव गुण विपुल अमल अतिश्वेत
कह न सकें नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धिसमेत ॥
मक्र-नक्र-चक्रादि जन्तु युत, प्रलय पवन से बढ़ा अपार
कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार ॥४॥

वह मैं हूँ, कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वा-पर्य विचार ॥
निज शिशु की रक्षार्थ आत्म-बल, बिना विचारे क्या न मृगी
जाती है मृगपति के आगे, शिशु-सनेह में हुई रंगी ॥५॥

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से, हास्य कराने का ही धाम
करती है वाचाल मुझे प्रभु! भक्ति आपकी आठों याम ॥
करती मधुर गान पिक मधु में, जग-जन मनहर अति अभिराम
उसमें हेतु सरस फल-फूलों, से युत हरे-भरे तरु -आम ॥६॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप
पलभर में भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप ॥
सकल लोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त
प्रात: रवि की उग्र किरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त ॥७॥

मैं मतिहीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूँ स्तुति अघ-हान
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान ॥
जैसे कमल-पत्र पर जल-कण, मोती जैसे आभावान
दिपते हैं फिर छिपते हैं असली मोती में हे भगवान् ॥८॥

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष ॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर
फेंका करता सूर्य-किरण को, आप रहा करता है दूर ॥९॥

त्रिभुवन-तिलक जगत-पति हे प्रभु! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य
सद्भक्तों को निज सम करते, इसमें नहीं अधिक आश्चर्य ॥
स्वाश्रित जन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से
नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या ? उन धनिकों की करनी से ॥१०॥

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु! तुम्हें देखकर परम-पवित्र
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र ॥
चन्द्रकिरण सम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का कर जल पान
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ॥११॥

जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह
थे उतने वैसे अणु जग में, शान्ति-राग-मय निःसन्देह ॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण-रूप
इसीलिये तो आप सरीखा, नहीं दूसरों का है रूप ॥१२॥

कहाँ आपका मुख अतिसुंदर, सुर-नर उरग नेत्रहारी
जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमाधारी ॥
कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक-समान कीट-सा दीन
जो पलाश-सा फीका पड़ता,दिन में हो करके छबि-छीन ॥१३॥

तव गुण पूर्ण-शशांक कान्तिमय, कला-कलापों से बढक़े
तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढक़े ॥
विचरें चाहे जहाँ कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार ॥१४॥

मद की छकी अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विकार
कर न सकी आश्चर्य कौन-सा, रह जाती हैं मन को मार ॥
गिर गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु -शिखर
हिल सकता है रंच-मात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर ॥१५॥

धूम न बत्ती तैल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनों लोक
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक ॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्वपर प्रकाशक जग विख्यात ॥१६॥

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल

एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ॥
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट
ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ॥१७॥

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला ॥
विश्व प्रकाशकमुख-सरोज तब, अधिक कांतिमय शांतिस्वरूप
है अपूर्व जग का शशिमंडल, जगत शिरोमणि शिव का भूप ॥१८॥

नाथ ! आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश
तब दिन में रवि और रात्रि में, चन्द्रबिम्ब का विफल प्रयास ॥
धान्य खेत जब धरती तल के, पके हुए हों अति अभिराम
शोर मचाते जल को लादे, हुए घनों से तब क्या काम ? ॥१९॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वपर प्रकाशक उत्तम ज्ञान
हरि-हरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान ॥
अति ज्योर्तिमय महारतन का, जो महत्त्व देखा जाता
क्या वह किरणा-कुलित काँच में, अरे कभी लेखा जाता ॥२०॥

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानूँ उत्तम अवलोकन
क्योंकि उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन ॥
है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन्! मुझको लाभ
जन्म-जन्म में लुभा न पाते, कोई यह मेरा अमिताभ ॥२१॥

सौ-सौ नारी, सौ-सौ सुत को, जनती रहती सौ-सौ ठौर
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और ॥
तारागण को सर्व दिशाएँ धरें नहीं कोई खाली
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥२२॥

तुम को परम पुरुष मुनि मानें, विमल वर्ण रवि तमहारी
तुम्हें प्राप्त कर मृत्युञ्जय के, बन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हें छोडक़र अन्य न कोई, शिवपुर-पथ बतलाता है
किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव में भटकाता है ॥२३॥

तुम्हें आद्य अक्षय अनन्त प्रभु, एकानेक तथा योगीश
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, विदितयोग मुनिनाथ मुनीश ॥

विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश
इत्यादिक नामों कर माने, सन्त निरन्तर विभो निधीश ॥२४॥

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, इसीलिये कहलाते बुद्ध
भुवनत्रय के सुख संवद्र्धक, अत: तुम्हीं शंकर हो शुद्ध ॥
मोक्ष-मार्ग के आद्य प्रवर्तक, अत: विधाता कहे गणेश
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश ॥२५॥

तीन लोक के दु:ख हरण करने वाले हे तुम्हें नमन
भूमण्डल के निर्मल-भूषण आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन ॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन
भवसागर के शोषक पोषक, भव्यजनों के तुम्हें नमन ॥२६॥

गुणसमूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश
क्या आश्चर्य न मिल पाये हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश
देव कहे जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष
तेरी ओर न झाँक सकें वे, स्वप्नमात्र में हे गुण-कोष ॥२७॥

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर-छवि-वाला ॥
वितरण-किरण निकर तमहारक, दिनकर घनके अधिक समीप
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीरांजन करता ले दीप ॥२८॥

मणि-मुक्ता-किरणों से चित्रित, अद्भुत शोभित सिंहासन
कान्तिमान कंचनसा दिखता, जिस पर तव कमनीय वदन ॥
उदयाचल के तुंग शिखर से, मानो सहस्र रश्मि वाला
किरण-जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला ॥२९॥

ढुरते सुन्दर चँवर विमल अति, नवल कुन्द के पुष्प-समान
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान ॥
कनकाचल के तुंग शृंग से, झर-झर झरता है निर्झर
चन्द्रप्रभा सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर ॥३०॥

चन्द्रप्रभा सम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय
दीप्तिमान शोभित होते हैं, सिर पर छत्र-त्रय भवदीय ॥
ऊपर रहकर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर प्रताप

मानों वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप ॥३१॥

ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुञ्जन
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ-सम्मेलन ॥
पीट रही है डंका, हो सत् धर्म-राज की जय-जय-जय
इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तव यश की अक्षय ॥३२॥

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मंदार
गंधोदक की मंदवृष्टि करते हैं प्रमुदित देव उदार ॥
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी-धीमी मंद पवन
पंक्ति बाँधकर बिखर रहे हों, मानों तेरे दिव्य वचन ॥३३॥

तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आये
तन-भा-मंडल की छवि लखकर, तव सन्मुख शरमा जावे ॥
कोटि सूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप
जिसके द्वारा चन्द्र सु-शीतल, होता निष्प्रभ अपने आप ॥३४॥

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन
करा रहे है सत्य-धर्म के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन ॥
सुनकर जग के जीव वस्तुत:, कर लेते अपना उद्धार
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ॥३५॥

जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभ में चन्द्रकिरण
विकसित नूतन सरसीरुह सम, हे प्रभु तेरे विमल चरण ॥
रखते जहाँ वहीं रचते हैं, स्वर्ण-कमल, सुर दिव्य ललाम
अभिनन्दन के योग्य चरण तव,भक्ति रहे उनमें अभिराम ॥३६॥

धर्म-देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौन्दर्य ॥
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती
वैसी ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रों में लेखी जाती ॥३७॥

लोल कपोलों से झरती हैं, जहाँ निरन्तर मद की धार
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौंरे गुँजार ॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत-सा काल
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥३८॥

क्षत-विक्षत कर दिये गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल
कान्तिमान गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल ॥
जिन भक्तों को तेरे चरणों के, गिरि की हो उन्नत ओट
ऐसा सिंह छलांगे भरकर, क्या उस पर कर सकता चोट? ॥३९॥

प्रलयकाल की पवन उड़ाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अंगारों का भी होवे जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार
प्रभु के नाम-मंत्र-जल से वह, बुझ जाती है उसही बार ॥४०॥

कंठ-कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटै नाग महा विकराल ॥
नाम-रूप तब अहि-दमनी का, लिया जिन्होंने हो आश्रय
पग रख कर निश्शंक नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥४१॥

जहाँ अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर
शूरवीर नृप की सेनायें, रव करती हों चारों ओर ॥
वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम
सूर्य तिमिर सम शूर-सैन्य का, कर देता है काम तमाम ॥४२॥

रण में भालों से वेधित गज, तन से बहता रक्त अपार
वीर लड़ाकू जहँ आतुर हैं, रुधिर-नदी करने को पार ॥
भक्त तुम्हारा हो निराश तहँ, लख अरिसेना दुर्जयरूप
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार-स्वरूप ॥४३॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घडियाल
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल ॥
भ्रमर-चक्र में फँसे हुये हों, बीचोंबीच अगर जलयान
छुटकारा पा जाते दु:ख से, करने वाले तेरा ध्यान ॥४४॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा भार
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार ॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद-रज संजीवन
स्वास्थ्य लाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुंदर तन ॥४५॥

लोह-शृंखला से जकड़ी है, नख से शिख तक देह समस्त
घुटने-जंघे छिले बेडियों से, जो अधीर जो है अतित्रस्त ॥
भगवन ऐसे बंदीजन भी, तेरे नाम - मंत्र की जाप
जप कर गत-बंधन हो जाते, क्षणभर में अपने ही आप ॥४६॥

वृषभेश्वर के गुण स्तवन का, करते निश-दिन जो चिंतन
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन् ॥
कुंजर-समर-सिंह-शोक - रुज, अहि दावानल कारागार
इनके अति भीषण दु:खों का, हो जाता क्षण में संहार ॥४७॥

हे प्रभु ! तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य ललाम
गूँथी विविध वर्ण सुमनों की, गुणमाला सुन्दर अभिराम ॥
श्रद्धासहित भविकजन जो भी कण्ठाभरण बनाते हैं
मानतुंग-सम निश्चित सुन्दर, मोक्ष-लक्ष्मी पाते हैं ॥४८॥

भक्तामर

(दोहा)
आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार ।
धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥
(चौपाई)
सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करैं, अन्तर पाप-तिमिर सब हरैं
जिनपद वंदों मन-वच-काय, भव-जल-पतित उधरन-सहाय ॥१॥

अन्वयार्थ : भगवान ऋषभदेव के चरण-युगल में जब देवगण भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं, तब उनके मुकुट में जडी मणियां प्रभु के चरणों की दिव्य कांति से और अधिक चमकने लगती है। भगवान के ऐसे दीप्तिमान चरणों का स्पर्श ही प्राणियों के पापों का नाश करने वाला है, तथा जो उन चरण-युगल का आलम्बन(सहारा) लेता है, वह संसार समुद्र से पार हो जाता है। इस युग के प्रारंभ में धर्म का प्रवर्तन करने वाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के चरण-युगल में विधिवत प्रणाम करके मैं स्तुति करता हूँ।

श्रुत पारग इन्द्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभु की वरनों गुन-माल॥२॥

अन्वयार्थ : सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने से जिनकी बुद्धि अत्यंत प्रखर हो गई है, ऐसे देवेन्द्रों ने तीन लोक के चित्त को आनन्दित करने वाले सुंदर स्त्रोतों द्वारा प्रभु आदिनाथ की स्तुति की है। उन प्रथम जिनेन्द्र की मैं, अल्पबुद्धि वाला मानतुंग आचार्य भी स्तुति करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन, हो निलज्ज थुति-मनसा कीन
जल-प्रतिबिम्ब बुद्ध को गहै, शशि-मण्डल बालक ही चहै॥३॥

अन्वयार्थ : हे देवों के द्वारा पूजित जिनेश्वर ! जिस प्रकार जल में पडते चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकडना असंभव होते हुए भी, नासमझ बालक उसे पकडने का प्रयास करता है, उसी प्रकार मैं अत्यंत अल्प बुद्धि होते हुए भी आप जैसे महामहिम की स्तुति करने का प्रयास कर रहा हूँ।

गुन-समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुर-गुरु पावें पार
प्रलय-पवन-उद्धत जल-जन्तु, जलधि तिरै को भुज-बलवन्त॥४॥

अन्वयार्थ : हे गुणों के समुद्र जिनेश्वर ! आपके चन्द्रमा के समान स्वच्छ, आनन्दरूप, अनंत गुणों का वर्णन करने में देव-गुरु बृहस्पति के समान बुद्धिमान भी कौन पुरुष समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं| अथवा प्रलयकाल की वायु के द्वारा प्रचण्ड है मगरमच्छों का समूह जिसमें, ऐसे समुद्र को भुजाओं के द्वारा तैरने के लिए कौन समर्थ है अर्थात् कोई नहीं|

सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्तिभाव वश कुछ नहिं डरूँ
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत॥५॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश! तथापि-शक्ति रहित होता हुआ भी, मैं- अल्पज्ञ, भक्तिवश, आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ| जैसे हरिणी, अपनी शक्ति का विचार न कर, प्रीतिवश अपने शिशु की रक्षा के लिये, क्या सिंह के सामने नहीं जाती? अर्थात जाती हैं|

मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम
ज्यों पिक अंब-कली-परभाव, मधु-ऋतु मधुर करै आराव ॥६॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो ! जिस प्रकार बसंत-ऋतु में आम की मंजरियां खाकर कोकिल मधुर स्वर में कूजती है, उसी प्रकार आपकी भक्ति का बल पाकर मैं भी स्तुति करने को वाचाल हो रहा हूँ। अन्यथा मेरी क्या शक्ति? मैं तो अल्पज्ञ हूँ और विद्वानों के सामने उपहास का पात्र हूँ।

तुम जस जंपत जन छिनमाहिं, जनम-जनम के पाप नशाहिं
ज्यों रवि उगै फटै तत्काल, अलिवत नील निशा-तम-जाल ॥७॥

अन्वयार्थ : हे आदिदेव ! आपकी भक्ति में लीन होने वाले प्राणियों के अनेक जन्मों में बाँधे गये पाप कर्म आपकी भक्ति के प्रभाव से क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं, जैसे समस्त संसार को आच्छादित करने वाला भंवरे के समान काला पीला सघन अंधकार सूर्य की किरणों से क्षणभर में छिन्न भिन्न हो जाता है|

तव प्रभावतैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार
ज्यों जल-कमल-पत्र पै परै, मुक्ताफल की द्युति विस्तरै ॥८॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! ऐसा मानकर मुझ मन्दबुद्धि के द्वारा भी आपका यह स्तवन प्रारम्भ किया जाता है, जो आपके दिव्य प्रभाव से सज्जनों के चित्त को हरेगा| जिस प्रकार कमलिनी के पत्तों पर पडी नन्हीं-नन्हीं ओस की बूँदें सूरज की किरणें पडने से मोती के समान चमकने लगती है।

तुम गुन-महिमा हत-दु:ख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष
पाप-विनाशक है तुम नाम, कमल-विकासी ज्यों रवि-धाम ॥९॥

अन्वयार्थ : हे जिनेश्वरदेव ! समस्त दोषों का नाश करने वाले आपके स्त्रोत की असीम शक्ति का तो कहना ही क्या, किन्तु श्रद्धा भक्तिपूर्वक किया गया आपका नाम भी जगत जीवों के पापों का नाश कर उन्हें पवित्र बना देता है।| जैसे, सूर्य तो दूर, उसकी प्रभा ही सरोवर में कमलों को विकसित कर देती है|

नहिं अचम्भ जो होहिं तुरन्त, तुमसे तुम गुण वरणत संत
जो अधीन को आप समान, करै न सो निंदित धनवान ॥१०॥

अन्वयार्थ : हे जगत् के भूषण! हे प्राणियों के नाथ! सत्यगुणों के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले पुरुष पृथ्वी पर यदि आपके समान हो जाते हैं तो इसमें अधिक आश्चर्य नहीं है| क्योंकि उस स्वामी से क्या प्रयोजन, जो इस लोक में अपने अधीन पुरुष को सम्पत्ति के द्वारा अपने समान नहीं कर लेता |

इकटक जन तुमको अविलोय, अवरविषै रति करै न सोय
को करि क्षीर-जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान ॥११॥

अन्वयार्थ : हे अनिमेष दर्शनीय प्रभो! आपके दिव्य स्वरूप के दर्शन के पश्चात् मनुष्यों के नेत्र अन्यत्र सन्तोष को प्राप्त नहीं होते। चन्द्रकीर्ति के समान निर्मल क्षीरसमुद्र के जल को पीकर कौन पुरुष समुद्र के खारे पानी को पीना चाहेगा? अर्थात् कोई नहीं |

प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन, जिन परमाणु देह तुम की
हैं तितने ही ते परमाणु, यातैं तुम सम रूप न आनु ॥१२॥

अन्वयार्थ : हे त्रिभुवन के एकमात्र आभुषण जिनेन्द्रदेव! जिन रागरहित सुन्दर परमाणुओं के द्वारा आपकी रचना हुई, वे परमाणु पृथ्वी पर निश्चय से उतने ही थे क्योंकि आपके समान दूसरा रूप नहीं है।

कहँ तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मनहार
कहाँ चन्द्र-मण्डल सकलंक, दिन में ढाक-पत्र सम रंक ॥१३॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो! सम्पूर्ण रुप से तीनों जगत् की उपमाओं का विजेता, देव मनुष्य तथा धरणेन्द्र के नेत्रों को हरने वाला कहां आपका मुख? और कलंक से मलिन, चन्द्रमा का वह मण्डल कहां? जो दिन में पलाश (ढाक) के पत्ते के समान फीका पड़ जाता।

पूरन-चन्द्र-ज्योति छबिवंत, तुम गुन तीन जगत लंघंत
एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार ॥१४॥

अन्वयार्थ : पूर्णमासी के चन्द्रमा की कलाओं के समान उज्ज्वल आपके गुण, तीन लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं क्योंकि जो अद्वितीय त्रिजगत् के भी नाथ के आश्रित हैं उन्हें इच्छानुसार घूमते हुए कौन रोक सकता हैं? कोई नहीं।

जो सुर-तियविभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तो न अचंभ
अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु-शिखर डगमगै न धीर ॥१५॥

अन्वयार्थ : हे वीतराग देव ! यदि आपका मन देवागंनाओं के द्वारा किंचित् भी विक्रति को प्राप्त नहीं कराया जा सका, तो इस विषय में आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि सामान्य पर्वतों को हिला देने वाली प्रलयकाल की पवन के द्वारा क्या कभी सुमेरु पर्वत का शिखर हिल सका है? नहीं।

धूम रहित वाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन घर एह
वात-गम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम बलो अखण्ड ॥१६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! आप धूम तथा बाती से रहित, तेल के प्रवाह के बिना भी इस सम्पूर्ण लोक को प्रकट करने वाले अपूर्व जगत प्रकाशक अलौकिक दीपक हैं जिसे विशाल पर्वतों को कंपा देने वाला झंझावात भी कभी बुझा नहीं सकता।

छिपहु न लुपहु राहुकी छाहिं, जग-परकाशक हो छिनमाहिं
घन अनवर्त्त दाह विनिवार, रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥१७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! आप न तो कभी अस्त होते हैं न ही राहु के द्वारा ग्रसे जाते हैं और न आपका महान तेज मेघ से तिरोहित होता है आप एक साथ तीनों लोकों को शीघ्र ही प्रकाशित कर देते हैं अतः आप सूर्य से भी अधिक महिमावन्त हैं।

सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित नेह राहु अविरोह
तुम मुख-कमल अपूरब चंद, जगत विकासी जोति अमन्द ॥१८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्रदेव ! आपका मुखमंडल नित्य उदित रहने वाला विलक्षण चंद्रमा है, जिसने मोहरूपी अंधकार को नष्ट कर दिया है, जो अत्यंत दीप्तिमान है, जिसे न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं, तथा जो जगत को प्रकाशित करता हुआ अलौकिक चंद्रमंडल की तरह सुशोभित होता है ।।

निशदिन शशि रवि को नहिं काम, तुम मुखचंद हरै तम घाम
जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज ॥१९॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! जब अंधकार आपके मुख रुपी चन्द्रमा के द्वारा नष्ट हो जाता है तो रात्रि में चन्द्रमा से एवं दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन? जैसे कि पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान धरती तल पर पानी के भार से झुके हुए मेघों से फिर क्या प्रयोजन।

जो सुबोध सोहै तुम माहिं, हरि नर आदिकमें सो नाहिं
जो दुति महा-रतन में होय, काच-खण्ड पावै नहिं सोय ॥२०॥

अन्वयार्थ : अनंत गुण-पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान जिस प्रकार आप में सुशोभित होता है वैसा हरि-हरादिक अर्थात विष्णु-ब्रह्मा-महेश आदि लौकिक देवों में है ही नहीं। स्फुरायमान महारत्नों में जैसा तेज होता है, किरणों की राशि से व्याप्त होने पर भी काँच के टुकडों में वैसा तेज नहीं होता ।

(नाराच छन्द)

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया

स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ॥
कछु न तोहि देख के जहाँ तुही विशेखिया
मनोग चित्त-चोर और भूल हूँ न पेखिया ॥२१॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्| देखे गये विष्णु महादेव ही मैं उत्तम मानता हूँ, जिन्हें देख लेने पर मन आपमें सन्तोष को प्राप्त करता है| किन्तु आपको देखने से क्या लाभ? जिससे कि प्रथ्वी पर कोई दूसरा देव जन्मान्तर में भी चित्त को नहीं हर पाता |

अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ॥
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥२२॥

अन्वयार्थ : सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं, परन्तु आप जैसे पुत्र को दूसरी माँ उत्पन्न नहीं कर सकी| नक्षत्रों को सभी दिशायें धारण करती हैं परन्तु कान्तिमान् किरण समूह से युक्त सूर्य को पूर्व दिशा ही जन्म देती हैं |

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो
कहैं मुनीश अन्धकार-नाश को सुभान हो ॥
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके
न और मोहि मोखपंथ देह तोहि टालके ॥२३॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! तपस्वीजन आपको सूर्य की तरह तेजस्वी निर्मल और मोहान्धकार से परे रहने वाले परम पुरुष मानते हैं | वे आपको ही अच्छी तरह से प्राप्त कर म्रत्यु को जीतते हैं | इसके सिवाय मोक्षपद का दूसरा अच्छा रास्ता नहीं है |

अनन्त नित्य चित्त की अगम्य रम्य आदि हो
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥२४॥

अन्वयार्थ : सज्जन पुरुष आपको शाश्वत, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आद्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंगकेतु, योगीश्वर, विदितयोग, अनेक, एक ज्ञानस्वरुप और अमल कहते हैं |

तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतैं
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं ॥
तुही विधात है सही सु मोखपंथ धारतैं
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचारतैं ॥२५॥

अन्वयार्थ : देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित ज्ञान वाले होने से आप ही बुद्ध हैं| तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण आप ही शंकर हैं| हे धीर! मोक्षमार्ग की विधि के करने वाले होने से आप ही ब्रह्मा हैं| और हे स्वामिन्! आप ही स्पष्ट रुप से मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हैं |

नमों करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो
नमों करूँ सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो ॥
नमों करूँ भवाब्धि-नीर-राशि-शोष-हेतु हो
नमों करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥२६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! तीनों लोकों के दुःख को हरने वाले आपको नमस्कार हो, प्रथ्वीतल के निर्मल आभुषण स्वरुप आपको नमस्कार हो, तीनों जगत् के परमेश्वर आपको नमस्कार हो और संसार समुन्द्र को सुखा देने वाले आपको नमस्कार हो|

(चौपाई)

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्व करि तुम परिहरे

और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥२७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश! अन्यत्र स्थान न मिलने के कारण समस्त गुणों ने यदि आपका आश्रय लिया हो तो तथा अन्यत्र अनेक आधारों को प्राप्त होने से अहंकार को प्राप्त दोषों ने कभी स्वप्न में भी आपको न देखा हो तो इसमें क्या आश्चर्य?

तरु अशोक-तर किरन उदार, तुम तन शोभित हे अविकार
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत ॥२८॥

अन्वयार्थ : ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, उन्नत किरणों वाला, आपका उज्ज्वल रुप जो स्पष्ट रुप से शोभायमान किरणों से युक्त है, अंधकार समूह के नाशक, मेघों के निकट स्थित सूर्य बिम्ब की तरह अत्यन्त शोभित होता है।

सिंहासन मनि-किरन-विचित्र, तापर कंचन-वरन पवित्र
तुम तन शोभित किरन-विथार, ज्यों उदयाचल रवि तमहार ॥२९॥

अन्वयार्थ : मणियों की किरण-ज्योति से सुशोभित सिंहासन पर, आपका सुवर्ण कि तरह उज्ज्वल शरीर, उदयाचल के उच्च शिखर पर आकाश में शोभित, किरण रुप लताओं के समूह वाले सूर्य मण्डल की तरह शोभायमान हो रहा है|

कुन्द-पहुप-सित-चमर ढुरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरैं नीर उमगांति ॥३०॥

अन्वयार्थ : कुन्द के पुष्प के समान धवल चँवरों के द्वारा सुन्दर है शोभा जिसकी, ऐसा आपका स्वर्ण के समान सुन्दर शरीर, सुमेरुपर्वत, जिस पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल झरने के जल की धारा बह रही है, के स्वर्ण निर्मित ऊँचे तट की तरह शोभायमान हो रहा है|

ऊँचे रहैं सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपैं अगोप
तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती-झालरसौं छबि लहैं ॥३१॥

अन्वयार्थ : चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य की किरणों के सन्ताप को रोकने वाले, तथा मोतियों के समूहों से बढ़ती हुई शोभा को धारण करने वाले, आपके ऊपर स्थित तीन छत्र, मानो आपके तीन लोक के स्वामित्व को प्रकट करते हुए शोभित हो रहे हैं|

दुन्दुभि-शब्द गहर गम्भीर, चहुँ दिशि होय तुम्हारे धीर
त्रिभुवन-जन शिवसंगम करैं, मानूँ जय-जय रव उच्चरै ॥३२॥

अन्वयार्थ : गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओं को गुञ्जायमान करने वाला, तीन लोक के जीवों को शुभ विभूति प्राप्त कराने में समर्थ और समीचीन जैन धर्म के स्वामी की जय घोषणा करने वाला दुन्दुभि वाद्य आपके यश का गान करता हुआ आकाश में शब्द करता है|

मन्द पवन गन्धोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पहुप सुवृष्ट
देव करैं विकसित दल सार, मानौं द्विज-पंकति अवतार ॥३३॥

अन्वयार्थ : सुगंधित जल बिन्दुओं और मन्द सुगन्धित वायु के साथ गिरने वाले श्रेष्ठ मनोहर मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा आपके वचनों की पंक्तियों की तरह आकाश से होती है। (छठवां प्रातिहार्य "पुष्पवृष्टि")

तुम तन-भामण्डल जिनचन्द, सब दुतिवंत करत है मन्द
कोटिशंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय ॥३४॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो! तीनों लोकों के कान्तिमान पदार्थों की प्रभा को तिरस्कृत करती हुई आपके मनोहर भामण्डल की विशाल कान्ति, एक साथ उगते हुए अनेक सूर्यों की कान्ति से युक्त होने पर भी चन्द्रमा से अधिक शीतलता, सौम्यता प्रदान करने वाली है। (सातवां प्रातिहार्य "भामण्डल")|

स्वर्ग-मोख-मारग संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध, सब भाषागर्भित हित साध ॥३५॥

अन्वयार्थ : आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने में सक्षम, तीन लोक के जीवों को समीचीन धर्म का कथन करने में समर्थ, स्पष्ट अर्थ वाली, समस्त भाषाओं में परिवर्तित करने वाले स्वाभाविक गुण से सहित होती है। (आठवां प्रातिहार्य "दिव्यध्वनि")

(दोहा)

विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं
तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥

अन्वयार्थ : नव विकसित स्वर्ण कमलों के समान शोभायमान नखों की किरण प्रभा से सुन्दर आपके चरण जहाँ पड़ते हैं वहाँ देव गण स्वर्णमयी कमलों की रचना करते जाते हैं ।

ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय
सूरज में जो जोत है, नहिं तारा-गण होय ॥३७॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र! इस प्रकार धर्मोपदेश के कार्य में जैसा आपका ऐश्वर्य होता है, वैसा अन्य देवों को कभी प्राप्त नहीं होता। अंधकार को नष्ट करने वाली जैसी प्रभा सूर्य की होती है वैसी अन्य प्रकाशमान भी ग्रहों की कैसे हो सकती है?

(षट्पद)

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारै
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं ॥
काल-वरन विकराल कालवत सनमुख आवैं
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावैं ॥
देखि गयन्द न भय करै, तुम पद-महिमा छीन
विपति रहित सम्पति सहित, वरतैं भक्त अदीन ॥३८॥

अन्वयार्थ : आपके आश्रित मनुष्यों को, झरते हुए मद जल से जिसके गण्डस्थल मलीन, कलुषित तथा चंचल हो रहे है और उन पर उन्मत्त होकर मंडराते हुए काले रंग के भौरे अपने गुजंन से क्रोध बढा़ रहे हों ऐसे ऐरावत की तरह उद्दण्ड, सामने आते हुए हाथी को देखकर भी, भय नहीं होता|

अति मद-मत्त-गयन्द कुम्भथल नखन विदारै
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ॥
बाँकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै
भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै ॥
ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय
शरण गये तुम चरण की, बाधा करै न सोय ॥३९॥

अन्वयार्थ : सिंह, जिसने हाथी का गण्डस्थल विदीर्ण कर, गिरते हुए उज्ज्वल तथा रक्तमिश्रित गजमुक्ताओं से पृथ्वी तल को विभूषित कर दिया है तथा जो छलांग मारने के लिये तैयार है वह भी अपने पैरों के पास आये हुए ऐसे पुरुष पर आक्रमण नहीं करता जिसने आपके चरण युगल रुप पर्वत का आश्रय ले रखा है|

प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटन्तर
बमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरन्तर ॥
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों
तडतडाट दव-अनल जोर चहुँ दिशा उठानो ॥
सो इक छिन में उपशमें, नाम-नीर तुम लेत
होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत ॥४०॥

अन्वयार्थ : आपकी नाम स्मरणरुपी जलधारा, प्रलयकाल की वायु से उद्धत, प्रचण्ड अग्नि के समान प्रज्वलित, उज्ज्वल चिनगारियों से युक्त, संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह सामने आती हुई वन की अग्नि को पूर्ण रुप से बुझा देती है ।

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता
रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलन्ता ॥

फण को ऊँचो करै वेग ही सन्मुख धाया
तब जन होय निशंक देख फेणपति को आया ॥
जो चाँपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगार
नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार ॥४१॥

अन्वयार्थ : जिस पुरुष के हृदय में नाम स्मरणरुपी-नागदमनी नामक औषध मौजूद है, वह पुरुष लाल लाल आँखों वाले, मदयुक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले, क्रोध से उद्धत और ऊपर को फण उठाये हुए, सामने आते हुए सर्प को निःशंक निर्भय होकर पुष्पमाला की भांति दोनों पैरों से लाँघ जाता है।

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम
घन-से गज गरजाहिं मत्त मानो गिरि जंगम ॥
अति कोलाहल माहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै
राजन को परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥
नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय ॥४२॥

अन्वयार्थ : आपके यशोगान से युद्धक्षेत्र में उछलते हुए घोड़े और हाथियों की गर्जना से उत्पन भयंकर कोलाहल से युक्त पराक्रमी राजाओं की भी सेना, उगते हुए सूर्य किरणों की शिखा से वेधे गये अंधकार की तरह शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है।

मारै जहाँ गयन्द कुम्भ हथियार विदारै
उमगै रुधिर प्रवाह बेग जल-सम विस्तारै ॥
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे
तिस रन में जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे ॥
दुर्जय अरिकुल जीत के, जय पावैं निकलंक
तुम पद-पंकज मन बसै, ते नर सदा निशंक ॥४३॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! आपके चरण कमलरुप वन का सहारा लेने वाले पुरुष, भालों की नोकों से छेद गये हाथियों के रक्त रुप जल प्रवाह में पड़े हुए, तथा उसे तैरने के लिये आतुर हुए योद्धाओं से भयानक युद्ध में, दुर्जय शत्रु पक्ष को भी जीत लेते हैं ।

नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावै
जामैं बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै ॥
पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी
गरजै अतिगम्भीर लहर की गिनती न ताकी ॥
सुखसों तिरै समुद्र को, जे तुम गुन सु राहिं
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहिं ॥४४॥

अन्वयार्थ : क्षोभ को प्राप्त भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भयभीत करने वाले दावानल से युक्त समुद्र में विकराल लहरों के शिखर पर स्थित है जहाज जिनका, ऐसे मनुष्य, आपके स्मरण मात्र से भय छोड़कर पार हो जाते हैं।

महा जलोदर रोग भार पीड़ित नर जे हैं
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं ॥
सोचत रहैं उदास नाहिं जीवन की आशा
अति घिनावनी देह धरैं दुर्गन्धि-निवासा ॥
तुम पद-पंकज-धूल को, जो लावैं निज-अंग
ते नीरोग शरीर लहि, छिन में होय अनंग ॥४५॥

अन्वयार्थ : उत्पन्न हुए भीषण जलोदर रोग के भार से झुके हुए, शोभनीय अवस्था को प्राप्त और नहीं रही है जीवन की आशा जिनके, ऐसे मनुष्य आपके चरण कमलों की रज रुप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए कामदेव के समान रुप वाले हो जाते हैं।

पाँव कंठतैं जकर बाँध साँकल अति भारी
गाढ़ी बेड़ी पैरमाहिं जिन जाँघ विदारी ॥
भूख प्यास चिंता शरीर दु:खजे विललाने
सरन नाहिं जिन कोय भूप के बन्दीखाने ॥
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बन्धन सब खुल जाहिं
छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहिं ॥४६॥

अन्वयार्थ : जिनका शरीर पैर से लेकर कण्ठ पर्यन्त बडी़-बडी़ सांकलों से जकडा़ हुआ है और विकट सघन बेड़ियों से जिनकी जंघायें अत्यन्त छिल गईं हैं ऐसे मनुष्य निरन्तर आपके नाममंत्र को स्मरण करते हुए शीघ्र ही बन्धन मुक्त हो जाते है।

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल
फणपति रण परचंड नीर-निधि रोग महाबल ॥
बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै ॥
इस अपार संसार में, शरन नाहिं प्रभु कोय
यातैं तुम पद-भक्त को, भक्ति सहाई होय ॥४७॥

अन्वयार्थ : जो बुद्धिमान मनुष्य आपके इस स्तवन को पढ़ता है उसका मत्त हाथी, सिंह, दवानल, युद्ध, समुद्र जलोदर रोग और बन्धन आदि से उत्पन्न भय मानो डरकर शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है।

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी ॥
जे नर पहिरे कंठ भावना मन में भावैं
'मानतुंग' ते निजाधीन-शिव-लछमी पावैं ॥
भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित हेत
जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिव-खेत ॥४८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव! इस जगत् में जो लोग मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक (ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि) गुणों से रची गई नाना अक्षर रुप, रंग बिरंगे फूलों से युक्त आपकी स्तुति रुप माला को कंठाग्र करता है उस उन्नत सम्मान वाले पुरुष को अथवा आचार्य मानतुंग को स्वर्ग मोक्षादि की विभूति अवश्य प्राप्त होती है।

शत इन्द्रनि के मुकुट जु नये, पाप विनाशक जग के भये
ऐसे चरण ऋषभ के नाय, जो भवसागर तिरन सहाय ॥१॥

अन्वयार्थ : भगवान ऋषभदेव के चरण-युगल में जब देवगण भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं, तब उनके मुकुट में जडी मणियां प्रभु के चरणों की दिव्य कांति से और अधिक चमकने लगती है। भगवान के ऐसे दीप्तिमान चरणों का स्पर्श ही प्राणियों के पापों का नाश करने वाला है, तथा जो उन चरण-युगल का आलम्बन(सहारा) लेता है, वह संसार समुद्र से पार हो जाता है। इस युग के प्रारंभ में धर्म का प्रवर्तन करने वाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के चरण-युगल में विधिवत प्रणाम करके मैं स्तुति करता हूँ।

तत्व ज्ञान से जो थुति भरी, बुद्धि चतुर सुरपति सो करी
ते पद सब जन के मन हरें, सो थुती हम उस जिन की करें॥२॥

अन्वयार्थ : सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने से जिनकी बुद्धि अत्यंत प्रखर हो गई है, ऐसे देवेन्द्रों ने तीन लोक के चित्त को आनन्दित करने वाले सुंदर स्त्रोतों द्वारा प्रभु आदिनाथ की स्तुति की है। उन प्रथम जिनेन्द्र की मैं, अल्पबुद्धि वाला मानतुंग आचार्य भी स्तुति करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

ज्यों नभ में शशि को लख बाल, पकड़न चाहें होय खुश्याल
त्यों मैं थुति वरणों मति हीन, जिसमें गणधर थके प्रवीण॥३॥

अन्वयार्थ : हे देवों के द्वारा पूजित जिनेश्वर ! जिस प्रकार जल में पडते चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकडना असंभव होते हुए भी, नासमझ बालक उसे पकडने का प्रयास करता है, उसी प्रकार मैं अत्यंत अल्प बुद्धि होते हुए भी आप जैसे महामहिम की स्तुति करने का प्रयास कर रहा हूँ।

हे गुण निधि तुम गुण शशि कान्त, कहि न सके ऋषि सुर लौकांत
प्रलय पवन उद्धत दधि नीर, तर सकता को भुजबल वीर॥४॥

अन्वयार्थ : हे गुणों के समुद्र जिनेश्वर ! आपके चन्द्रमा के समान स्वच्छ, आनन्दरूप, अनंत गुणों का वर्णन करने में देव-गुरु बृहस्पति के समान बुद्धिमान भी कौन पुरुष समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं| अथवा प्रलयकाल की वायु के द्वारा प्रचण्ड है मगरमच्छों का समूह जिसमें, ऐसे समुद्र को भुजाओं के द्वारा तैरने के लिए कौन समर्थ है अर्थात् कोई नहीं|

मै मति हीन रंच नहीं डरों, भक्ति भाव वश तुम थुति करों
तुमहिं कहो जिन निज सुत काज, मृग न लड़ें मृगपति से गाज ॥५॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश! तथापि-शक्ति रहित होता हुआ भी, मैं- अल्पज्ञ, भक्तिवश, आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ| जैसे हरिणी, अपनी शक्ति का विचार न कर, प्रीतिवश अपने शिशु की रक्षा के लिये, क्या सिंह के सामने नहीं जाती? अर्थात जाती हैं|

अल्प शास्त्र का ज्ञात जान, हँसी करेंगें बहु श्रुतवान
पर मो बुद्धि करे वाचाल, कोयल को ज्यों मधु ऋतु काल ॥६॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो ! जिस प्रकार बसंत-ऋतु में आम की मंजरियां खाकर कोकिल मधुर स्वर में कूजती है, उसी प्रकार आपकी भक्ति का बल पाकर मैं भी स्तुति करने को वाचाल हो रहा हूँ। अन्यथा मेरी क्या शक्ति? मैं तो अल्पज्ञ हूँ और विद्वानों के सामने उपहास का पात्र हूँ।

यह थुति अल्प रचित भगवान, तुम प्रसाद हो निपुण सामान
ज्यों जल कमल पत्र पे परे, मोती वत् सो शोभा धरे ॥७॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! ऐसा मानकर मुझ मन्दबुद्धि के द्वारा भी आपका यह स्तवन प्रारम्भ किया जाता है, जो आपके दिव्य प्रभाव से सज्जनों के चित्त को हरेगा| जिस प्रकार कमलिनी के पत्तों पर पडी नन्हीं-नन्हीं ओस की बूँदें सूरज की किरणें पडने से मोती के समान चमकने लगती है।

तुम थुति गावत ही क्षण माहि -जन्म जन्म के पाप नशाहिं
ज्यों दिनकर के उदय वशात, अंधकार तत्काल नशात॥८॥

अन्वयार्थ : हे आदिदेव ! आपकी भक्ति में लीन होने वाले प्राणियों के अनेक जन्मों में बाँधे गये पाप कर्म आपकी भक्ति के प्रभाव से क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं, जैसे समस्त संसार को आच्छादित करने वाला भंवरे के समान काला पीला सघन अंधकार सूर्य की किरणों से क्षणभर में छिन्न भिन्न हो जाता है|

तुम निर्दोष रहो थुति दुर, कथा मात्र से ही अधचूर
ज्यों रवि दूर किरण के जोर, कमल प्रफुल्लित सरवर ओर ॥९॥

अन्वयार्थ : हे जिनेश्वरदेव ! समस्त दोषों का नाश करने वाले आपके स्त्रोत की असीम शक्ति का तो कहना ही क्या, किन्तु श्रद्धा भक्तिपूर्वक किया गया आपका नाम भी जगत जीवों के पापों का नाश कर उन्हें पवित्र बना देता है।| जैसे, सूर्य तो दूर, उसकी प्रभा ही सरोवर में कमलों को विकसित कर देती है|

क्या अचरज जो तुम सम बनें, कारण निश दिन तुम गुण भनें
ज्यों निरधन धनपति को पाय, धनी होए तो कहे बड़ाय ॥१०॥

अन्वयार्थ : हे जगत् के भूषण! हे प्राणियों के नाथ! सत्यगुणों के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले पुरुष पृथ्वी पर यदि आपके समान हो जाते हैं तो इसमें अधिक आश्चर्य नहीं है| क्योंकि उस स्वामी से क्या प्रयोजन, जो इस लोक में अपने अधीन पुरुष को सम्पत्ति के द्वारा अपने समान नहीं कर लेता |

शांति रूप तुम मूरत धनी, क्या अद्भुभूत परमाणु बनी
वे परमाणु रहे ना शेष, इससे तुम सम दुतिय ना भेष ॥११॥

अन्वयार्थ : हे अनिमेष दर्शनीय प्रभो! आपके दिव्य स्वरूप के दर्शन के पश्चात् मनुष्यों के नेत्र अन्यत्र सन्तोष को प्राप्त नहीं होते। चन्द्रकीर्ति के समान निर्मल क्षीरसमुद्र के जल को पीकर कौन पुरुष समुद्र के खारे पानी को पीना चाहेगा? अर्थात् कोई नहीं |

तुम मुख उपमा सब जग वरे,सुर नर नाग नयन मन हरे
तुम सम उपमा चन्द न रखे, वह दोषी दिन फीका दिखे ॥१२॥

अन्वयार्थ : हे त्रिभुवन के एकमात्र आभुषण जिनेन्द्रदेव! जिन रागरहित सुन्दर परमाणुओं के द्वारा आपकी रचना हुई, वे परमाणु पृथ्वी पर निश्चय से उतने ही थे क्योंकि आपके समान दूसरा रूप नहीं है |

सब शशि मंडल मे शशि कला,त्यों तुम गुण सब जग मे फला
जो ऐसे के आश्रित होय, उस विचरत को रोके कोय ॥१३॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो! सम्पूर्ण रुप से तीनों जगत् की उपमाओं का विजेता, देव मनुष्य तथा धरणेन्द्र के नेत्रों को हरने वाला कहां आपका मुख? और कलंक से मलिन, चन्द्रमा का वह मण्डल कहां? जो दिन में पलाश (ढाक) के पत्ते के समान फीका पड़ जाता|

देवांगना न मन को हरें, क्या अचरज हम इसमें करें
प्रलय पवन से अचला चले,किन्तु मेरु गिरी रंच न हिलें ॥१४॥

अन्वयार्थ : पूर्णमासी के चन्द्रमा की कलाओं के समान उज्ज्वल आपके गुण, तीन लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं क्योंकि जो अद्वितीय त्रिजगत् के भी नाथ के आश्रित हैं उन्हें इच्छानुसार घूमते हुए कौन रोक सकता हैं? कोई नहीं|

तेल न बत्ती धुआं न पास ,जगमग जगमग जगत प्रकाश
प्रलय पवन से बुझे न खंड , ज्ञान दीप तुम जले अखंड ॥१५॥

अन्वयार्थ : हे वीतराग देव ! यदि आपका मन देवागंनाओं के द्वारा किंचित् भी विक्रति को प्राप्त नहीं कराया जा सका, तो इस विषय में आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि सामान्य पर्वतों को हिला देने वाली प्रलयकाल की पवन के द्वारा क्या कभी सुमेरु पर्वत का शिखर हिल सका है? नहीं |

राहू ग्रसे न हो तू अस्त , युगपत भाषे जगत समस्त
तुझ प्रभाव नहीं बद्दल छिपे , तू रवि से अधिकारी दिपे ॥१६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! आप धूम तथा बाती से रहित, तेल के प्रवाह के बिना भी इस सम्पूर्ण लोक को प्रकट करने वाले अपूर्व जगत प्रकाशक अलौकिक दीपक हैं जिसे विशाल पर्वतों को कंपा देने वाला झंझावात भी कभी बुझा नहीं सकता |

ताप विनाशक तू नित दिपे , राहू ग्रसे न बद्दल छिपे
तुम मुख सुन्दर ज्योति अमंद , शांति विकासी अद्भूत चंद ॥१७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! आप न तो कभी अस्त होते हैं न ही राहु के द्वारा ग्रसे जाते हैं और न आपका महान तेज मेघ से तिरोहित होता है आप एक साथ तीनों लोकों को शीघ्र ही प्रकाशित कर देते हैं अतः आप सूर्य से भी अधिक महिमावन्त हैं |

क्या दिन रवि क्या निश शशि होय ,जब तेरा मुख जग तम खोय
जब पक जाय धान्य सब ठाम ,फिर घनघोर घटा बे काम ॥१८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्रदेव ! आपका मुखमंडल नित्य उदित रहने वाला विलक्षण चंद्रमा है, जिसने मोहरूपी अंधकार को नष्ट कर दिया है, जो अत्यंत दीप्तिमान है, जिसे न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं, तथा जो जगत को प्रकाशित करता हुआ अलौकिक चंद्रमंडल की तरह सुशोभित होता है ।|

जो सु ज्ञान सोहे तुम माहिं , हरि हरादि पुरुषों में नाहिं
सूर्यकांत में जो थुति कढ़े , सो नं कांच मे रवि से बढ़े ॥१९॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! जब अंधकार आपके मुख रुपी चन्द्रमा के द्वारा नष्ट हो जाता है तो रात्रि में चन्द्रमा से एवं दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन? जैसे कि पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान धरती तल पर पानी के भार से झुके हुए मेघों से फिर क्या प्रयोजन।

हरि हरादि उत्तम इस रीति , उनको लख तुमसे है प्रीति
तुमरी रति से फल यह हमें , जो न भावांतर पर मे रमें ॥२०॥

अन्वयार्थ : अनंत गुण-पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान जिस प्रकार आप में सुशोभित होता है वैसा हरि-हरादिक अर्थात विष्णु-ब्रह्मा-महेश आदि लौकिक देवों में है ही नहीं। स्फुरायमान महारत्नों में जैसा तेज होता है, किरणों की राशि से व्याप्त होने पर भी काँच के टुकडों में वैसा तेज नहीं होता ।

तुम को इकटक लखे जु कोय , अवर विषें रति कैसे होय
को कर पान मधुर जल क्षीर , फिर क्यों पीवे खारा नीर ॥२१॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्| देखे गये विष्णु महादेव ही मैं उत्तम मानता हूँ, जिन्हें देख लेने पर मन आपमें सन्तोष को प्राप्त करता है| किन्तु आपको देखने से क्या लाभ? जिससे कि प्रथ्वी पर कोई दूसरा देव जन्मान्तर में भी चित्त को नहीं हर पाता |

सब नारी जननी सुत घने, पर तुमसे सुत नाहीं जने
सर्व दिशा से तारे मान , किन्तु पूर्व दिश उगें भान ॥२२॥

अन्वयार्थ : सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं, परन्तु आप जैसे पुत्र को दूसरी माँ उत्पन्न नहीं कर सकी| नक्षत्रों को सभी दिशायें धारण करती हैं परन्तु कान्तिमान् किरण समूह से युक्त सूर्य को पूर्व दिशा ही जन्म देती हैं |

परम पुरुष जाने मुनि तुमें , तम से परे तेज रवि समें
तुम्हे पाय सब मृत्यू हरें , मोक्ष मार्ग इससे नहीं परें ॥२३॥

अन्वयार्थ : हे मुनीन्द्र! तपस्वीजन आपको सूर्य की तरह तेजस्वी निर्मल और मोहान्धकार से परे रहने वाले परम पुरुष मानते हैं | वे आपको ही अच्छी तरह से प्राप्त कर म्रत्यु को जीतते हैं | इसके सिवाय मोक्षपद का दूसरा अच्छा रास्ता नहीं है |

तुम अचिन्त्य व्यापक ध्रुव एक , मुनिवर विदित असंख्य अनेक
ब्रह्मा ईश्वर आद्य अनंत ,अमल ज्ञान मय कहते संत ॥२४॥

अन्वयार्थ : सज्जन पुरुष आपको शाश्वत, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आद्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंगकेतु, योगीश्वर, विदितयोग, अनेक, एक ज्ञानस्वरुप और अमल कहते हैं |

तुम सुबुद्दी से बुद्ध प्रसिद्ध , अघ संहारक शंकर सिद्ध
धर्म प्रवर्तक ब्रह्मा आप , जग पालक नारायण थाप ॥२५॥

अन्वयार्थ : देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित ज्ञान वाले होने से आप ही बुद्ध हैं| तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण आप ही शंकर हैं| हे धीर! मोक्षमार्ग की विधि के करने वाले होने से आप ही ब्रह्मा हैं| और हे स्वामिन्! आप ही स्पष्ट रुप से मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हैं |

तुम्हे नमों हे पर दुख हार , तुम्हें नमों जग भूषण सार
तुम्हे नमो जग नायक धार , तुम्हे नमों भव शोषण हार ॥२६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! तीनों लोकों के दुःख को हरने वाले आपको नमस्कार हो, प्रथ्वीतल के निर्मल आभुषण स्वरुप आपको नमस्कार हो, तीनों जगत् के परमेश्वर आपको नमस्कार हो और संसार समुन्द्र को सुखा देने वाले आपको नमस्कार हो|

क्या अचरज सब गुण तुम पास , जबकि न उनको अन्य निवास
दोष गर्व बहु थल को पाय , सपने भी तुम पास न आय ॥२७॥

अन्वयार्थ : हे मुनीश! अन्यत्र स्थान न मिलने के कारण समस्त गुणों ने यदि आपका आश्रय लिया हो तो तथा अन्यत्र अनेक आधारों को प्राप्त होने से अहंकार को प्राप्त दोषों ने कभी स्वप्न में भी आपको न देखा हो तो इसमें क्या आश्चर्य?

तरु अशोक ऊँचे के तीर , तुमरो सोहे विमल शरीर
ज्यों तम हर अरु तेजस खास , रवि दीखे घन घट के पास ॥२८॥

अन्वयार्थ : ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, उन्नत किरणों वाला, आपका उज्ज्वल रुप जो स्पष्ट रुप से शोभायमान किरणों से युक्त है, अंधकार समूह के नाशक, मेघों के निकट स्थित सूर्य बिम्ब की तरह अत्यन्त शोभित होता है।

रतन जड़ीत सिंघासन ऊप , तुम तन सोहे कनक स्वरुप
पूरब दिश उदयाचल पास , सोहे किरण लता रवि खास ॥२९॥

अन्वयार्थ : मणियों की किरण-ज्योति से सुशोभित सिंहासन पर, आपका सुवर्ण कि तरह उज्ज्वल शरीर, उदयाचल के उच्च शिखर पर आकाश में शोभित, किरण रुप लताओं के समूह वाले सूर्य मण्डल की तरह शोभायमान हो रहा है|

कुंद पुष्प सम चौसठ चमर , तुम तन ऊपर ढोरें अमर
शशि सम श्वेत बहे जल धार , ऊँचे कनक मेरु दिश चार॥३०॥

अन्वयार्थ : कुन्द के पुष्प के समान धवल चँवरों के द्वारा सुन्दर है शोभा जिसकी, ऐसा आपका स्वर्ण के समान सुन्दर शरीर, सुमेरुपर्वत, जिस पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल झरने के जल की धारा बह रही है, के स्वर्ण निर्मित ऊँचे तट की तरह शोभायमान हो रहा है|

शशि सम तीन छत्र सिर आप , जो रोके रवि का आताप
मोती झालर शोभे घना , जिससे प्रकटे ईश्वर पना ॥३१॥

अन्वयार्थ : चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य की किरणों के सन्ताप को रोकने वाले, तथा मोतियों के समूहों से बढ़ती हुई शोभा को धारण करने वाले, आपके ऊपर स्थित तीन छत्र, मानो आपके तीन लोक के स्वामित्व को प्रकट करते हुए शोभित हो रहे हैं|

दश दिश मे धुनि उच्च अभंग, जग जन को सूचक शुभ संग
तुमरी बोलें जय जय कार , नभ मे यस को बजे नकार ॥३२॥

अन्वयार्थ : गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओं को गुञ्जायमान करने वाला, तीन लोक के जीवों को शुभ विभूति प्राप्त कराने में समर्थ और समीचीन जैन धर्म के स्वामी की जय घोषणा करने वाला दुन्दुभि वाद्य आपके यश का गान करता हुआ आकाश में शब्द करता है|

पारी जात सुन्दर मंदार , वर्षे फूल अनेक प्रकार
मंद पवन गंधोदक झिरें ,मानों तुम बच नभ से खिरें ॥३३।

अन्वयार्थ : सुगंधित जल बिन्दुओं और मन्द सुगन्धित वायु के साथ गिरने वाले श्रेष्ठ मनोहर मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा आपके वचनों की पंक्तियों की तरह आकाश से होती है । (छठवां प्रातिहार्य "पुष्पवृष्टि")

तुम भामंडल तेज अपार , जीते सब जग तेजस धार
कोटि सूर्य से बढ़ कर कांति लज्जित भई चन्द्र की शांति ॥३४॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो! तीनों लोकों के कान्तिमान पदार्थों की प्रभा को तिरस्कृत करती हुई आपके मनोहर भामण्डल की विशाल कान्ति, एक साथ उगते हुए अनेक सूर्यों की कान्ति से युक्त होने पर भी चन्द्रमा से अधिक शीतलता, सौम्यता प्रदान करने वाली है । (सातवां प्रातिहार्य "भामण्डल")|

स्वर्ग मोक्ष पथ सूचक शुद्ध , तत्व कथन में सबको बुद्ध
प्रकट अर्थ तुम धुनि से होय , सब भाषा गुण परजय जोय ॥३५॥

अन्वयार्थ : आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने में सक्षम, तीन लोक के जीवों को समीचीन धर्म का कथन करने में समर्थ, स्पष्ट अर्थ वाली, समस्त भाषाओं में परिवर्तित करने वाले स्वाभाविक गुण से सहित होती है । (आठवां प्रातिहार्य "दिव्यध्वनि")

फूले कनक कमल की ज्योति , चहुँ ओर त्यों नख द्युति होति
ऐसे चरण धरो तुम जहाँ , झटपट कमल रचें सुर तहां ॥३६॥

अन्वयार्थ : नव विकसित स्वर्ण कमलों के समान शोभायमान नखों की किरण प्रभा से सुन्दर आपके चरण जहाँ पड़ते हैं वहाँ देव गण स्वर्णमयी कमलों की रचना करते जाते हैं ।

जैसा विभव तुम्हारे लार , वैसा विभव न कोई धार
जैसे तम हर सूर्य प्रकाश , तैसा अन्य न ज्योतिष पास ॥३७॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र! इस प्रकार धर्मोपदेश के कार्य में जैसा आपका ऐश्वर्य होता है, वैसा अन्य देवों को कभी प्राप्त नहीं होता। अंधकार को नष्ट करने वाली जैसी प्रभा सूर्य की होती है वैसी अन्य प्रकाशमान भी ग्रहों की कैसे हो सकती है?

हो उन्मत मद झरे अपार , जो क्रोधित सुन अलि गुंजार
ऐसा सुर गज सन्मुख आय ,भय न करे तुम आश्रित पाय ॥३८॥

अन्वयार्थ : आपके आश्रित मनुष्यों को, झरते हुए मद जल से जिसके गण्डस्थल मलीन, कलुषित तथा चंचल हो रहे है और उन पर उन्मत्त होकर मंडराते हुए काले रंग के भौरे अपने गुजंन से क्रोध बढ़ा रहे हों ऐसे ऐरावत की तरह उद्दण्ड, सामने आते हुए हाथी को देखकर भी, भय नहीं होता|

खेंचे कुम्भस्थल गज मत्त , भूमें बिखरे मोती रत्त
ऐसा सिंह न पकडे खाय , जो तेरे पद आश्रित आय ॥३९॥

अन्वयार्थ : सिंह, जिसने हाथी का गण्डस्थल विदीर्ण कर, गिरते हुए उज्ज्वल तथा रक्तमिश्रित गजमुक्ताओं से पृथ्वी तल को विभूषित कर दिया है तथा जो छलांग मारने के लिये तैयार है वह भी अपने पैरों के पास आये हुए ऐसे पुरुष पर आक्रमण नहीं करता जिसने आपके चरण युगल रुप पर्वत का आश्रय ले रखा है|

प्रलय पवन सम अग्नि हले, तड़तड़ाय दावानल जले
जगदाहक सन सन्मुख आय , तब तुम थुति जल देई बुझाय ॥४०॥

अन्वयार्थ : आपकी नाम स्मरणरुपी जलधारा, प्रलयकाल की वायु से उद्धत, प्रचण्ड अग्नि के समान प्रज्वलित, उज्ज्वल चिनगारियों से युक्त, संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह सामने आती हुई वन की अग्नि को पूर्ण रुप से बुझा देती है ।

लाल नेत्र अरु काला अंग , धाय उच्च फण कुपति भुजंग
उसको लांघे निर्भय राम , जिस पर अहिऔषध तुम नाम ॥४१॥

अन्वयार्थ : जिस पुरुष के ह्रदय में नाम स्मरणरुपी-नागदमनी नामक औषध मौजूद है, वह पुरुष लाल लाल आँखों वाले, मदयुक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले, क्रोध से उद्धत और ऊपर को फण उठाये हुए, सामने आते हुए सर्प को निःशंक निर्भय होकर पुष्पमाला की भांति दोनों पैरों से लाँघ जाता है |

हय उछलें गज गरजें घोर , सेना चढ़ी नृपति के जोर
तुम कीर्तन से शीघ्र पलाय , ज्यों रवि ऊगत तम विनशाय ॥४२॥

अन्वयार्थ : आपके यशोगान से युद्धक्षेत्र में उछलते हुए घोड़े और हाथियों की गर्जना से उत्पन भयंकर कोलाहल से युक्त पराक्रमी राजाओं की भी सेना, उगते हुए सूर्य किरणों की शिखा से वेधे गये अंधकार की तरह शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है |

भाले छिदें बहें गज रक्त , चल फिर सकै न जोधा मत्त
तब रिपु प्रबल न जीता जाये , सो जय तुम पद आश्रय पाय ॥४३॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! आपके चरण कमलरुप वन का सहारा लेने वाले पुरुष, भालों की नोकों से छेद गये हाथियों के रक्त रुप जल प्रवाह में पड़े हुए, तथा उसे तैरने के लिये आतुर हुए योद्धाओं से भयानक युद्ध में, दुर्जय शत्रु पक्ष को भी जीत लेते हैं ।

दधि मे मगर मच्छ उद्दण्ड , -बद्वानल या पवन प्रचंड ।
अथवा नाव भंवर मे आय,तब तुम सुमिरत विघ्न नाशाय ॥४४॥

अन्वयार्थ : क्षोभ को प्राप्त भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भयभीत करने वाले दावानल से युक्त समुद्र में विकराल लहरों के शिखर पर स्थित है जहाज जिनका, ऐसे मनुष्य, आपके स्मरण मात्र से भय छोड़कर पार हो जाते हैं|

घोर जलोदर पीड़ा सहे , आयु न आशा चिन्ता रहे ।
जब तन लेपे तुम पद धूल, कामदेव सम होय समूल ॥४५॥

अन्वयार्थ : उत्पन्न हुए भीषण जलोदर रोग के भार से झुके हुए, शोभनीय अवस्था को प्राप्त और नहीं रही है जीवन की आशा जिनके, ऐसे मनुष्य आपके चरण कमलों की रज रुप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए कामदेव के समान रुप वाले हो जाते हैं|

नख शिख अंग सांकलें ठिलीं,दृढ़ बेडिनि सों टांगें छिलीं
जब तुम नाम मंत्र सुमिराय , बंधन रहित शीघ्र हो जाय ॥४६॥

अन्वयार्थ : जिनका शरीर पैर से लेकर कण्ठ पर्यन्त बडी़-बडी़ सांकलों से जकडा़ हुआ है और विकट सघन बेड़ियों से जिनकी जंघायें अत्यन्त छिल गईं हैं ऐसे मनुष्य निरन्तर आपके नाममंत्र को स्मरण करते हुए शीघ्र ही बन्धन मुक्त हो जाते है|

गज केहरि दावानल नाग , रण दधि रोग बन्ध बहु लाग
ये भय भजें स्वयं भय खाय , जब इनको तुम व्रतधर पाय ॥४७॥

अन्वयार्थ : जो बुद्धिमान मनुष्य आपके इस स्तवन को पढ़ता है उसका मत्त हाथी, सिंह, दवानल, युद्ध, समुद्र जलोदर रोग और बन्धन आदि से उत्पन्न भय मानो डरकर शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है |

तुम स्तोत्र जिनेश महान , भक्ति विवश कछु रचा अजान
पर जो पाठ पढ़े मन लाय , 'मानतुंग' अरु लक्ष्मी पाय ॥४८॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र देव! इस जगत् में जो लोग मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक (ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि) गुणों से रची गई नाना अक्षर रुप, रंग बिरंगे फूलों से युक्त आपकी स्तुति रुप माला को कंठाग्र करता है उस उन्नत सम्मान वाले पुरुष को अथवा आचार्य मानतुंग को स्वर्ग मोक्षादि की विभूति अवश्य प्राप्त होती है |

एकीभाव-स्तोत्र

आ. वादीराज कृत

एकीभावं गत इव मया य: स्वयं कर्म-बन्धो,
घोरं दु:खं भव-भव-गतो दुर्निवार: करोति ॥

तस्याप्यस्य त्वयि जिन-रवे! भक्तिरुन्मुक्तये चेज्-
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतु: ॥१॥

अन्वयार्थ : हे जिनेन्द्र! जबकि आपकी समीचीन भक्ति के द्वारा चिरपरिचित और अत्यन्त दु:खदायी एवं आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिले हुए कर्मबंधन भी दूर किये जाते हैं तब दूसरा ऐसा कौन सा संताप का कारण है जो कि उस भक्ति के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता अर्थात् दु:ख के सभी कारण नष्ट किये जा सकते हैं

ज्योतीरूपं दुरित-निवहध्वान्त-विध्वंस-हेतुं,
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ता:
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्भासमान-
स्तस्मिन्नंह: कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे॥२॥

अन्वयार्थ : हे नाथ जब तक आपको, अतिशय बुद्धि के धारक गणधरादि देवों ने, पापरूपी अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान कहा है और आप मेरे मन-मंदिर में अच्छी तरह से प्रकाशमान भी हो रहे हैं, तब उसमें पापरूपी अंधकार कैसे ठहर सकता है? अर्थात् जो आपको अपने हृदय में धारण करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं

आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत त्वयि दृढ-मना: स्तोत्र-मन्त्रैर्भवन्तम्
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-वल्मीक-मध्यान्-
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधय: काद्रवेया:॥३॥

अन्वयार्थ : जिस प्रकार समीचीन मंत्रों की सामर्थ्य से वामी के मध्य भाग से साँप बाहर निकाल दिये जाते हैं ठीक उसी प्रकार जिनेन्द्र के स्तवन रूप मंत्रो से, स्तवन-पूजन करने वाले भव्य पुरुषों की विषम विषयरूप व्याधियाँ भी दूर कर दी जाती हैं। अर्थात् जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रद्धा से सम्पन्न होकर एकाग्रचित्त से जिनेन्द्र भगवान का पवित्र स्तवन करता है उसके पुरातन विषम रोग भी दूर हो जाते हैं और उसका शरीर निरोग बन जाता है

प्रागेवेह त्रिदिव-भवनादेष्यता भव्यपुण्यात्,
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्
ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्ट-
स्तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि॥४॥

अन्वयार्थ : जब कि स्वर्गलोक से माता के गर्भ में आने के छह महीने पहले ही आपने इस पृथ्वीमण्डल को सुवर्णमय बना दिया, तो फिर ध्यान के द्वारा मेरे मनोहर अन्त:करणरूप मंदिर में प्रविष्ट हुए आप कुष्ठरोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को यदि सुवर्णमय बना दें तो इसमें क्या आश्चर्य है अर्थात् कुछ नहीं

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धु-
स्त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्तिरप्रत्यनीका
भक्ति-स्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-
शय्यां मय्युत्पन्नं कथमिव तत: क्लेश-यूथं सहेथा:॥५॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! आप संसारी जीवों के अकारण बंधु हैं और आपकी सकल पदार्थ विषयक यह अपूर्व एवं अनन्तशक्ति प्रतिपक्षी कर्मों के प्रतिघात से रहित है, क्योंकि वह कर्म के क्षय से उत्पन्न हुई है। फिर आप चिरकाल तक हमारे पवित्र मन-मंदिर में निवास करते हुए भी क्या दु:खों को नाश नहीं करेंगे अर्थात् अवश्य ही करेंगे। जो भद्र मानव आपका भक्तिपूर्वक निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन करता है उसके दु:ख दूर होना तो सहज ही है किन्तु उसके जटिल कर्मों का बंधन भी ढीला पड़ कर नष्ट हो जाता है और आत्मा विकसित होता हुआ परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है।

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं,
निर्मग्नं मां न जहति कथं दु:ख-दावोपतापा:॥६॥

अन्वयार्थ : हे स्वामिन्! मुझे इस संसाररूप विषम अटवी में भ्रमण करते हुए और दु:खों को सहते हुए अनन्तकाल बीत गया है। अब मुझे बड़े भारी भाग्योदय से यह आपकी स्याद्वादरूप अमृतरस से भरी हुई वापिका बावड़ी प्राप्त हुई है जो चन्द्रमा और बर्फ़ से भी अत्यन्त शीतल है। ऐसी वापिका में उन्मज्जन करते हुए मेरे क्या थोड़े से दु:ख सन्ताप दूर न होंगे? किन्तु अवश्य ही दूर होंगे

पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं,
हेमाभासो भवति सुरभि: श्रीनिवासश्च पद्म:
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे,
श्रेय: किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति॥७॥

अन्वयार्थ : सकल परमात्मा अरहंत जब जीवन्मुक्तरूप सयोगकेवली अवस्था में विहार करते हैं तब उनके विहार से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं और देवगण उनके पवित्र चरणों के नीचे कमलों की रचना कर दिया करते हैं और वे कमल जब जिनेन्द्र देव के चरणों के स्पर्श से सुवर्ण सी कान्ति वाले सुगंधित एवं लक्ष्मी के निवास बन जाते हैं, तब मेरा मन आपको सर्वाङ्ग रूप से स्पर्श कर रहा है अर्थात् मेरे मन मंदिर में चैतन्य जिनप्रतिमा का सर्वाङ्गरूप से स्पर्श हो रहा है अतएव मुझे कल्याणकों का प्राप्त होना उचित ही है। जो भव्यप्राणी जिनेन्द्र भगवान का निष्कपट रूप से भक्तिपूर्वक स्मरण, चिंतन एवं ध्यान करता है उसे सर्व सुख प्राप्त होते ही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्ति-पात्र्या पिबन्तं,
कर्मारण्यात्पुरुषमसमानन्द-धाम-प्रविष्टम्
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं,
व्रूराकारा: कथमिव रुजा कण्टका निर्लुठन्ति॥८॥

अन्वयार्थ : हे भगवन्! कर्मरूपी वन से निकलकर आपने अनुपम अनंत सुखस्वरूप आनन्दधाम को प्राप्त किया है तथा आप दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले हैं। आपको देखने वाले और भक्तिरूपी पात्र से आपके अमृतरूपी वचनों को पाने वाले भव्यपुरुषों को फिर क्रूर आकार वाले रोग रूपमयी काँटे कैसे पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते

पाषाणात्मा तदितरसम: केवलं रत्न-मूर्ति-
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्ग:
दृष्टिं प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतु:॥९॥

अन्वयार्थ : पत्थर का बना हुआ मानस्तंभ भी दूसरे साधारण पत्थरों के समान ही है। रत्नमय होना उसकी कोई विशेषता नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसके समान और भी रत्न होते हैं परन्तु उनमें मान हरण करने की शक्ति नहीं होती, इस कारण से मानस्तंभ में मनुष्यों के मान हरण करने की शक्ति का अस्तित्व मालूम नहीं होता। अतएव यह स्पष्ट है कि उसकी ऐसी शक्ति में आपकी समीपता ही कारण है। यदि आपकी समीपता न होती तो गौतम जैसे महामानी विद्वानों का अभिमान कैसे दूर होता? इस कारण उस रत्नमयी मानस्तंभ में यह अपूर्वशक्ति आपके प्रसाद से ही प्राप्त हुई जान पड़ती है

हृद्य: प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्ति-शैलोपवाही,
सद्य: पुंसां निरवधि-रुजा धूलिबन्धं धुनोति
ध्यानाहूतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्ट-
स्तस्याशक्य: क इह भुवने देव! लोकोपकार:॥१०॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! जबकि आपके शरीर के पास से बहने वाली वायु भी, लोगों के तरह-तरह के रोग दूर कर देती है, तब आप जिस भव्यपुरुष के हृदय में विराजमान हो जाते हैं वह संसार के प्राणियों का कौन सा उपकार नहीं कर सकता-अर्थात् लोक की सच्ची-सजीव सेवा करना अथवा आहार पान, औषधादि के द्वारा दीन दु:खियों की सेवा कर उन्हें दु:ख से उन्मुक्त करना तो सरल है परन्तु जब कोई भद्रमानव जिनेन्द्र भगवान को अपने हृदयवर्ती बना लेता है अर्थात् चैतन्य जिनप्रतिमा को अपने हृदय-कमल में अंकित कर लेता है और स्तुति पूजा-ध्यानादि के द्वारा उनके पवित्र गुणों का स्तवन-पूजन वंदनादि किया करता है एवं उनके नक्शे कदम पर चलकर तदनुकूल प्रवृत्ति करने लगता है तब उस भव्य पुरुष के अनादिकालीन कर्मबंधन भी उसी तरह शिथिल होने लगते हैं जिस तरह चन्दन के वृक्ष पर मोर के आने पर सर्पों के बंधन ढीले पड़ कर नीचे खिसकने लगते हैं

जानासि त्वं मम भवे-भवे यच्च यादृक्च दु:खं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि

त्वं सर्वेश: सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव! एव प्रमाणम्॥११॥

अन्वयार्थ : हे भगवन्! इस चतुर्गति रूप संसार में अनादिकाल से भ्रमण करते हुए मैंने जो घोर दु:ख भोगे हैं और भोग रहा हूँ, जिनका स्मरण करना भी शस्त्र घात के समान दु:खदाई है। उनको आप अच्छी तरह से जानते ही हैं। आप सिर्फ़ जानते ही नहीं हैं किन्तु सबके अकारण बंधु और दयालु हैं। इसीलिए मैं भक्तिपूर्वक आपकी शरण में आया हूँ। ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए? यह आप ही समझ सकते हैं। मैंने तो अपनी दशा आपके सामने प्रकट करा दी है

प्रापद्वैवं तव नुति-पदैर्जीवकेनोपदिष्टै:,
पापाचारी मरण-समये सारमेयोऽपि सौख्यम्
क: सन्देहो यदुपलभते वासव-श्री-प्रभुत्वं,
जल्पज्ञाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम्॥१२॥

अन्वयार्थ : जबकि एक पापी कुत्ता भी मृत्यु के समय (न कि जीवन भर) जीवन्धर कुमार द्वारा बताये हुए मंत्राऽक्षरों के ध्यान से यक्षों का स्वामी यक्षेन्द्र हो सकता है तब निर्मल मणियों के द्वारा आपके नमस्कारमंत्र का ध्यान करने वाला भद्र मानव यदि इन्द्र की विभूति को प्राप्त कर ले तो इसमें क्या आश्चर्य है अर्थात् कुछ नहीं है

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो,
मुक्ति-द्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कवाटम्॥१३॥

अन्वयार्थ : विशुद्धज्ञान और निर्मल चारित्र के रहते हुए भी यदि जिनेन्द्र को भक्तिमय अथवा सम्यग्दर्शनरूप-कुंजी नहीं है तो फिर महा मिथ्यात्वरूप मुद्रा से अंकित मोक्षमंदिर का द्वार कैसे खोला जा सकता है? अर्थात् भक्तिरूपी कुंचिका के बिना मुक्तिद्वार का खुलना नितान्त कठिन है परन्तु जिस भद्रमानव के पास जिनेन्द्र की भक्तिरूपी अथवा सम्यग्दर्शनरूपी कुंजी है, वह बहुत जल्दी ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र भी मिथ्या कहलाते हैं अत: मुक्ति के इच्छुक पुरुषों को सबसे पहले सम्यग्दर्शन का प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है

प्रच्छन्न: खल्वयमघमयैरन्धकारै: समन्तात्,
पन्था मुक्ते: स्थपुटित-पद: क्लेश-गर्तैरगाधै:
तस्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारती रत्न-दीप:॥१४॥

अन्वयार्थ : हे देव! मुक्ति का मार्ग मिथ्यात्वरूप अज्ञान अंधकार से व्याप्त है, आच्छादित है और अगाध दु:खरूप गड्ढों से विषम है, दुष्प्रवेश है। ऐसा होने पर भी यदि सप्ततत्त्वों के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला अथवा सप्त तत्त्वों के द्वारा मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाला-आपकी पवित्र दिव्यध्वनिरूप वाणीरूपी दीपक का प्रकाश आगे-आगे नहीं होता, तो ऐसा कौन पुरुष है जो आपकी वाणीरूप दीपक के प्रकाश के बिना ही उस कंटकाकीर्ण विषम मार्ग से सुखपूर्वक गमन कर सकता है? और अपने इष्टस्थान को सुगमता से प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है अर्थात् कोई नहीं। अस्तु: हे नाथ! आपकी पवित्र वाणीरूपी दीपक के प्रकाश से ही संसारी जीव हेयोपादेयरूप तत्वों का परिज्ञान करते हैं और उसी के अनुकूल आचरण कर कर्मबंधन से छूटने का उपाय करते हैं। अर्थात् मोक्ष के साधक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण करते हैं उन्हें अपने जीवन में उतारते हैं साथ ही रत्नत्रय की पूर्णता एवं परम प्रकर्षता से ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों का समूल नाशकर कृत-कृत्य अवस्था को प्राप्त करते हैं और अनन्तकाल तक उस आत्मोत्थ अव्याबाध निराकुल सुख का अनुभव करते रहते हैं। यह सब वीतराग भगवान की उस दिव्यवाणी का ही माहात्म्य एवं प्रभाव है

आत्म-ज्योतिर्निधि-रनवधि-द्रैष्टुरानन्द-हेतु:,
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्य: परेषाम्
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाज:,
स्तोत्रैर्बंध-प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रै:॥१५॥

अन्वयार्थ : जिस प्रकार पृथ्वी में गड़े हुए धन को कुदाल से कठोर भूमि को खोदकर निकाल लेते हैं, ठीक उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप पुद्गल पिण्डों से आच्छादित अपनी ज्ञानादिरूप आत्मसम्पदा को आपके पवित्र स्तवनरूप कुदाल से कर्मबंधनरूप अतिशय कठोर भूमि को खोदकर निकाल लेते हैं परन्तु मिथ्यादृष्टियों को वह नहीं प्राप्त होती

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरे-रायता चामृताब्धे:,
या देव! त्वत्पद-कमलयो: संगता भक्ति-गङ्गा
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांह:,
कल्माषं यद्भवति किमियं देव! सन्देह-भूमि:॥१६॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! स्याद्वादनयरूप हिमालय से निकली और मोक्षरूपी समुद्र तक लम्बी यह आपकी भक्तिरूपी गंगा मुझे बड़े भारी भाग्योदय से प्राप्त हुई है, गंगा में स्नान करने से जिस तरह शरीर का बाह्य मैल धुल जाता है और वह स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार आपकी भक्तिरूपी गंगा में स्नान करने से, उसमें गोता लगाने से यदि मेरे अन्त:करण की पापरूप कालिका धुलकर मेरा मन पवित्र-राग-द्वेषादि विभावभावों से रहित निर्विकार हो जाये, तो इसमें क्या संदेह है? अर्थात् कुछ नहीं है

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुखं त्वामनुध्यायतो मे,
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेषरूपां,
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद् भवन्ति॥१७॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! आपके पवित्र ज्ञानादि अनंत गुणों का ध्यान एवं चिन्तन करते-करते जो परमात्मा है सो मैं हूँ सो परमात्मा है जब ऐसी निर्विकल्पात्मक अभेद बुद्धि उत्पन्न हो जाती है सो यद्यपि यह मिथ्या है तो भी निश्चल आनन्द को प्रकट करती है। बहुत कहने से क्या, सदोषी पतितात्मा पुरुष भी आपके सामीप्य एवं प्रसाद से अभिमतफल को प्राप्त करते ही हैं

मिथ्यावादं मल-मपनुदन्सप्तभङ्गी-तरङ्गै-
र्वागम्भोधि-र्भुवन-मखिलं देव! पर्येति यस्ते
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्-चेतसैवाचलेन,
व्यातन्वन्त: सुचिर-ममृतासेवया तृप्नुवन्ति॥१८॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! सप्तभंगरूपतरंगों से अथवा अनेकांत के माहात्म्य से शरीरादिक बाह्य पदार्थों में आत्मत्व बुद्धिरूपी जीव के विपरीताभिनिवेश को दूर करने वाले आपके वचन समुद्र का जो भव्य प्राणी निरन्तर अभ्यास मनन एवं परिशीलन करता है अर्थात् आगमोक्त विधि से अभ्यास कर चित्त की निश्चलतारूप परम समाधि को प्राप्त करता है वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है और अनन्तकाल तक यहाँ सुख में मग्न रहता है। यह सब आपके वचन समुद्र का ही माहात्म्य है

आहार्येभ्य: स्पृहयति परं य: स्वभावादहृद्य:,
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्य:
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्य: परेषां,
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमै: किंâ च शस्त्रैरुदस्त्रै:॥१९॥

अन्वयार्थ : आचार्य वादिराज ने इस श्लोक में सच्चे देव का यथार्थ स्वरूप दिखलाते हुए जिनेन्द्र देव की अन्य हरिहरादिक देवों से सर्वोत्कृष्टता प्रकट की है, उन्हें ही निर्दोष और वास्तविक देव बताया है, क्योंकि संसार में बहुत से जीव अपनी अज्ञतावश देवत्वविहीन पुरुषों में भी देव की कल्पना कर लेते हैं। जिनका चित्त राग-द्वेष से मलिन है, दूषित है-जो स्वभाव से ही कांतिहीन एवं अमनोज्ञ है और अनेक प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित हैं-अथवा बहुमूल्य वस्त्राभूषण और स्त्री, गदा आदि अस्त्रों (हथियारों) से जिनकी पहचान होती है, जो नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत करने की इच्छा करते हैं, जिन्हें शत्रुओं से सदा भय बना रहता है अतएव गदा-त्रिशूल आदि अस्त्रों को धारण किए हुए हैं, जैनधर्म ऐसे भेषी रागी-द्वेषी पुरुषों को देव नहीं कहता और न उनमें देवत्व का वास्तविक लक्षण ही घटित होता है। परन्तु जिनेन्द्र भगवान स्वभाव से ही मनोज्ञ हैं-कान्तिवान् हैं अत: वे कृत्रिम वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत नहीं करते हैं उन्होंने देह भोगों का खुशी-खुशी त्याग किया है और मोह शत्रु पर विजय प्राप्त की है। इसके सिवाय उन्हें किसी शत्रु आदि का कोई भय नहीं है और न संसार में उनका कोई शत्रु-मित्र ही है, वे सबको समानदृष्टि से देखते हैं, चाहे पूजक और निंदक कोई भी क्यों न हो, किसी से भी उनका राग-द्वेष नहीं है। उनके आत्मतेज या तपश्चरण विशेष की सामर्थ्य से कट्टर बैरी भी अपने बैर-विरोध को छोड़कर शान्त हो जाते हैं अत: ऐसे पूर्ण अहिंसक, परम वीतराग और क्षीणमोही परमात्मा को सुन्दर वस्त्राभूषणों और अस्त्र-शस्त्रों से क्या प्रयोजन हो सकता है? अर्थात् कुछ नहीं

इन्द्र: सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भव-लय-करी श्लाघ्यता-मातनोति

त्वं निस्तारी जनन-जलधे: सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं,
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्॥२०॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! इन्द्र आपकी सेवा, वन्दना, पूजा, स्तुति आदि करता है, केवल इसी से आपकी कोई महत्ता और प्रशंसा नहीं हो सकती है, क्योंकि इन्द्र तो आपकी समीचीन भक्ति एवं स्तुति, पूजादि से महान पुण्य का संचय करता है और वह भक्ति उसके लिए भवलयकरी संसार का नाश करने वाली होती है। इसी से वह एक भवावतारी हो जाता है अर्थात् मनुष्य का एक भव धारण करके ही मोक्ष चला जाता है परन्तु आप संसार-समुद्र से स्वयं तरने और तारने वाले हैं और मुक्तिरूपी लक्ष्मी के अधिपति हैं तथा संसार के समस्त जीवों के अकारण बंधु हैं-उन्हें संसार के दु:खों से छुटाने वाले हैं और हेयोपादेयरूप तत्वों का परिज्ञान कराते हैं इसलिए आप उनके प्रभु हैं, आपने जिस उच्च आदर्श को प्राप्त किया है वही संसारी जीवों के द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं, इन्हीं सब कारणों से आपकी महत्ता एवं प्रभुता संसार में प्रकट होती है

वृत्तिर्वाचामपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्य:,
स्तुत्युद्गारा: कथमिव ततस्त्वय्यमी न: क्रमन्ते
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्! भक्ति-पीयूष-पुष्टा-
स्ते भव्यानामभिमत-फला: पारिजाता भवन्ति॥२१॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! हमारे वचनों की प्रवृत्ति अन्य अल्पज्ञ जीवों के समान ही है परन्तु आप राग-द्वेषादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चुके हैं अत: आपकी तुलना अन्य अल्पज्ञ संसारी जीवों से नहीं की जा सकती है, क्योंकि आप सच्चिदानन्द, परमब्रह्म परमात्मा हैं। यद्यपि हमारे स्तुतिरूपी उद्गार आपके समीप तक नहीं पहुँचते हैं, तो भी आपकी समीचीन भक्तिरूप-अमृत से पुष्ट हुए ये स्तुतिरूप उद्गार भव्य जीवों के लिए कल्पवृक्ष के समान इच्छित फल के देने वाले होते हैं

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयै-वानपेक्षम्
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि-र्वैर-हारी,
क्वैवं भूतं भुवन-तिलकं प्राभवं त्वत्परेषु॥२२॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! आपको न किसी से राग और न द्वेष, आप न किसी पर प्रसन्न ही होते हैं और न किसी को अपने क्रोध का भाजन ही बनाते हैं, क्योंकि आप परम वीतरागी हैं, राग-द्वेषादि के अभावरूप परम उपेक्षाभाव को अंगीकार किए हुए हैं परन्तु फिर भी, आपकी आज्ञा त्रैलोक्यवर्ती जीवों के द्वारा मान्य है तथा आपकी समीपता वैर-विरोध का नाश करने वाली है। साथ ही, आपकी प्रशांत मुद्रा मुमुक्षु जीवों के लिए साक्षात् मोक्षमार्ग को प्रकट करती है, उसके ध्यान एवं चिंतन से भव्यात्मा आत्मा के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान करते हैं और उसी तरह चैतन्य जिनप्रतिमा बनने का अभ्यास करते हैं अतएव जैसा प्रभाव आपका है वैसा अन्य हरिहरादिक देवों का कहाँ हो सकता है? क्योंकि वे रागी-द्वेषी हैं, अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर अनुग्रह करते हैं और निंदकों पर रुष्ट होते हैं उन्हें शाप दे देते हैं परन्तु हे देव! ये सब बातें आप में नहीं हैं, पूजक और निन्दकों पर आपका समान भाव रहता है क्योंकि आप जिन हैं, इन सब विकारों को जीत चुके हैं अत: आप जैसा प्रभाव अन्य किसी भी देवी-देवता का नहीं हो सकता है

देव! स्तोतुं त्रिदिव-गणिका-मण्डली-गीत-कीर्ति,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिर्जनो य:
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्था-
स्तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मत्र्य:॥२३॥

अन्वयार्थ : हे भगवन्! जो भद्र मानव आपकी समीचीन भक्ति करता है और आपके पवित्र अनन्तज्ञानादि गुणों की स्तुति करता है, उनका चिन्तवन और मनन करता है, वह शीघ्र ही कर्मबंधन को काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है और कर्मबंध के विनाश से पूर्णज्ञानी होता हुआ फिर कभी भी अज्ञान को प्राप्त नहीं होता है

चित्ते कुर्वन्निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य-रूपं,
देव! त्वां य: समय-नियमादाऽऽदरेण स्तवीति
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृतिस्तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषय: पञ्चधा पञ्चितानाम्॥२४॥

अन्वयार्थ : अनन्तचतुष्टयस्वरूप हे नाथ! जो भव्य पुरुष आपका आदरपूर्वक भक्ति से स्तवन करता है, वह पुण्यात्मा पंचकल्याणकों का पात्र होता हुआ मोक्षमार्ग का नेता होता है

भक्ति-प्रह्व-महेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमा:
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृत: के हन्त मन्दा वयम्
अस्माभि: स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु न: कल्याण-कल्पद्रुम:॥२५॥

अन्वयार्थ : हे नाथ! आप जैसे परमयोगीन्द्र की, जब द्वादशांग का पाठी इन्द्र भक्तिपूर्वक स्तुति करता है और चार ज्ञान के धारक गणधरादिक भी आपको अपनी स्तुति का विषय बनाते हैं तथा अनेक ऋद्धियों के धारक क्षीणकाय मुनिपुंगव भी जब आपके गुणों की स्तुति करते हैं, तो भी वह पूर्णतया आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हो पाते, ऐसी अवस्था में आचार्य वादिराज अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहते हैं कि तब मुझ जैसा मन्दमति पुरुष आप जैसे जगद्वन्द्य परमात्मा की स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकता है? अस्तु, आपके गुणों में जो अनुराग प्रकट किया है-भक्ति से इस स्तवनरूप पुष्पमाला को गूँथा है, सो उक्त गुणानुराग ही आत्महितैषी मोक्ष के इच्छुक हम जैसे पुरुषों का कल्याण करने वाला हो, अथवा मेरी आत्मोन्नति में सहायक हो

-स्वागता छंद-
वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्विक-सिंह:
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्य-सहाय:॥२६॥

विषापहारस्तोत्रम्

श्रीधनञ्जय कृत

स्वात्म-स्थितः सर्व-गतः समस्त-व्यापार-वेदी विनिवृत्त-संगः
प्रवृद्ध - कलोऽप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥1॥

परैचिन्त्यं युग-भारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः
स्तुत्योऽद्यमेऽसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥2॥

तत्याज शक्रः शकनाभिमांन नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं वातायनेनेव निरुपयामि ॥3॥

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥4॥

व्यापीडितं बालमिवात्म-दोषैरुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम्
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः सर्वस्य जन्तोरसि बाल-वैद्यः ॥5॥

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युत दर्शिताशः
संव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥6॥

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम्

सदावदात-द्युतिरेकरुपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥7॥

अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुंगा प्रक्रतिः स यत्र
द्यावाप्रथिव्योः प्रथुता तथैव व्याप त्वदीया भुवनान्तराणि ॥8॥

तवानवस्था परमार्थ-तत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्ध-व्रत्तोऽपि समञ्जसस्त्वम् ॥9॥

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नुद् भूलितात्मा यदि नाम शम्भुः
अशेत व्रन्दोपहतोऽपि विष्णुः किं ग्रह्यते येन भवानजागः ॥10॥

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैर्वनते गुणित्वम्
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥11॥

कर्मस्थितिं जन्तुरनेक-भूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य
त्वंनेतृ-भावंहि तयोर्भवाब्धौ जिनेन्द्र नौ-नाविकयोरिवाख्यः ॥12॥

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरन्ति
तैलाय वालाः सिकता-समूहं निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः ॥13॥

विषाप हारं मणिमौषधानि मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च
भ्राम्यन्त्यहोन त्वमिति स्मरन्ति पर्याय-नामानि तवैव तानि ॥14॥

चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम्
हस्ते क्रतं तेन जगद्विचित्र सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥15॥

त्रिकाल-तत्त्वंत्वमवैस्त्रिलोकी-स्वामीति संख्या-नियतेरमीषाम्
बोधाधिपत्यंप्रति नाभविष्यस्तेऽन्येऽपिचेद् व्याप्स्यदमूनपीदम् ॥16॥

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरुपस्य तवोपकारि
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्विभ्रतच्छत्रमिवादरेण ॥17॥

क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छा-प्रतिकूल-वादः
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते ॥18॥

तुगांत्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः

निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥19॥

त्रैलोक्य-सेवा-नियमाय दण्डं दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्म-योगाद्यदि वा तवास्तु ॥20॥

विषापहारस्तोत्र

रचयिता 'महाकवि धनञ्जय' (संस्कृत) कविश्री शांतिदास (हिंदी)

दोहा
नमौं नाभिनंदन बली, तत्त्व-प्रकाशनहार
चतुर्थकाल की आदि में, भये प्रथम-अवतार ॥

रोला छन्द
निज-आतम में लीन ज्ञानकरि व्यापत सारे
जानत सब व्यापार संग नहिं कछु तिहारे
बहुत काल के हो पुनि जरा न देह तिहारी
ऐसे पुरुष पुरान करहु रक्षा जु हमारी ॥१॥

पर करि के जु अचिंत्य भार जग को अति भारो
सो एकाकी भयो वृषभ कीनों निसतारो
करि न सके जोगिंद्र स्तवन मैं करिहों ताको
भानु प्रकाश न करै दीप तम हरै गुफा को ॥२॥

स्तवन करन को गर्व तज्यो सक्री बहुज्ञानी
मैं नहिं तजौं कदापि स्वल्प ज्ञानी शुभध्यानी
अधिक अर्थ का कहूँ यथाविधि बैठि झरोके
जालांतर धरि अक्ष भूमिधर को जु विलोके ॥३॥

सकल जगत् को देखत अर सबके तुम ज्ञायक
तुमको देखत नाहिं नाहिं जानत सुखदायक
हो किसाक तुम नाथ और कितनाक बखानें
तातें थुति नहिं बने असक्ती भये सयाने ॥४॥

बालकवत निज दोष थकी इहलोक दु:खी अति
रोगरहित तुम कियो कृपाकरि देव भुवनपति

हित अनहित की समझ नाहिं हैं मंदमती हम
सब प्राणिन के हेत नाथ तुम बाल-वैद सम ॥५॥

दाता हरता नाहिं भानु सबको बहकावत
आज-कल के छल करि नितप्रति दिवस गुमावत
हे अच्युत! जो भक्त नमें तुम चरन कमल को
छिनक एक में आप देत मनवाँछित फल को ॥६॥

तुम सों सन्मुख रहै भक्ति सों सो सुख पावे
जो सुभावतें विमुख आपतें दु:खहि बढ़ावै
सदा नाथ अवदात एक द्युतिरूप गुसांई
इन दोन्यों के हेत स्वच्छ दरपणवत् झाँई ॥७॥

है अगाध जलनिधी समुद्र जल है जितनो ही
मेरु तुंग सुभाव सिखरलों उच्च भन्यो ही
वसुधा अर सुरलोक एहु इस भाँति सई है
तेरी प्रभुता देव भुवन कूं लंघि गई है ॥८॥

है अनवस्था धर्म परम सो तत्त्व तुमारे
कह्यो न आवागमन प्रभू मत माँहिं तिहारे
इष्ट पदारथ छाँड़ि आप इच्छति अदृष्ट कौं
विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सृष्ट कौं ॥९॥

कामदेव को किया भस्म जगत्राता थे ही
लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही
सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हार्यो
तुम को काम न गहे आप घट सदा उजार्यो ॥१०

पापवान वा पुन्यवान सो देव बतावे
तिनके औगुन कहे नाहिं तू गुणी कहावे
निज सुभावतैं अंबु-राशि निज महिमा पावे
स्तोक सरोवर कहे कहा उपमा बढ़ि जावे ॥११॥

कर्मन की थिति जंतु अनेक करै दु:खकारी
सो थिति बहु परकार करै जीवनकी ख्वारी
भवसमुद्र के माँहिं देव दोन्यों के साखी

नाविक नाव समान आप वाणी में भाखी ॥१२॥

सुख को तो दु:ख कहे गुणनिकूं दोष विचारे
धर्म करन के हेत पाप हिरदे विच धारे
तेल निकासन काज धूलि को पेलै घानी
तेरे मत सों बाह्य ऐसे ही जीव अज्ञानी ॥१३॥

विष मोचै ततकाल रोग को हरै ततच्छन
मणि औषधी रसांण मंत्र जो होय सुलच्छन
ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यों मन धरिहैं
भ्रमत अपरजन वृथा नहीं तुम सुमिरन करिहैं ॥१४॥

किंचित् भी चितमाँहि आप कछु करो न स्वामी
जे राखे चितमाँहिं आपको शुभ-परिणामी
हस्तामलकवत् लखें जगत् की परिणति जेती
तेरे चित के बाह्य तोउ जीवै सुख सेती ॥१५॥

तीन लोक तिरकाल माहिं तुम जानत सारी
स्वामी इनकी संख्या थी तितनी हि निहारी
जो लोकादिक हुते अनंते साहिब मेरा
तेऽपि झलकते आनि ज्ञान का ओर न तेरा ॥१६

है अगम्य तव रूप करे सुरपति प्रभु सेवा
ना कछु तुम उपकार हेत देवन के देवा
भक्ति तिहारी नाथ इंद्र के तोषित मन को
ज्यों रवि सन्मुख छत्र करे छाया निज तन को ॥१७॥

वीतरागता कहाँ कहाँ उपदेश सुखाकर
सो इच्छा प्रतिकूल वचन किम होय जिनेसर
प्रतिकूली भी वचन जगत् कूँ प्यारे अति ही
हम कछु जानी नाहिं तिहारी सत्यासति ही ॥१८॥

उच्च प्रकृति तुम नाथ संग किंचित् न धरनितैं
जो प्रापति तुम थकी नाहिं सो धनेसुरनतैं
उच्च प्रकृति जल विना भूमिधर धूनी प्रकासै
जलधि नीरतैं भर्यो नदी ना एक निकासै ॥१९॥

तीन लोक के जीव करो जिनवर की सेवा
नियम थकी कर दंड धर्यो देवन के देवा
प्रातिहार्य तो बनैं इंद्र के बनै न तेरे
अथवा तेरे बनै तिहारे निमित परे रे ॥२०॥

तेरे सेवक नाहिं इसे जे पुरुष हीन-धन
धनवानों की ओर लखत वे नाहिं लखत पन
जैसैं तम-थिति किये लखत परकास-थिती कूं
तैसैं सूझत नाहिं तमथिती मंदमती कूं ॥२१॥

निज वृध श्वासोच्छ्वास प्रगट लोचन टमकारा
तिनकों वेदत नाहिं लोकजन मूढ़ विचारा
सकल ज्ञेय ज्ञायक जु अमूरति ज्ञान सुलच्छन
सो किमि जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन ॥२२॥

नाभिराय के पुत्र पिता प्रभु भरत तने हैं
कुलप्रकाशि कैं नाथ तिहारो स्तवन भनै हैं
ते लघु-धी असमान गुनन कों नाहिं भजै हैं
सुवरन आयो हाथ जानि पाषान तजैं हैं ॥२३॥

सुरासुरन को जीति मोह ने ढोल बजाया
तीन लोक में किये सकल वशि यों गरभाया
तुम अनंत बलवंत नाहिं ढिंग आवन पाया
करि विरोध तुम थकी मूलतैं नाश कराया ॥२४॥

एक मुक्ति का मार्ग देव तुमने परकास्या
गहन चतुरगति मार्ग अन्य देवन कूँ भास्या
'हम सब देखनहार' इसीविधि भाव सुमिरिकैं
भुज न विलोको नाथ कदाचित् गर्भ जु धरिकैं ॥२५॥

केतु विपक्षी अर्क-तनो पुनि अग्नि तनो जल
अंबुनिधी अरि प्रलय-काल को पवन महाबल
जगत्-माँहिं जे भोग वियोग विपक्षी हैं निति
तेरो उदयो है विपक्ष तैं रहित जगत्-पति ॥२६॥

जाने बिन हूँ नमत आप को जो फल पावे
नमत अन्य को देव जानि सो हाथ न आवे
हरी मणी कूँ काच काच कूँ मणी रटत हैं
ताकी बुधि में भूल मूल्य मणि को न घटत है ॥२७॥

जे विवहारी जीव वचन में कुशल सयाने
ते कषाय-मधि-दग्ध नरन कों देव बखानैं
ज्यों दीपक बुझि जाय ताहि कह 'नंदि' गयो है
भग्न घड़े को कहैं कलस ए मँगलि गयो है ॥२८॥

स्याद्वाद संजुक्त अर्थ को प्रगट बखानत
हितकारी तुम वचन श्रवन करि को नहिं जानत
दोषरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जग-गुरु
जो ज्वर-सेती मुक्त भयो सो कहत सरल सुर ॥२९॥

बिन वांछा ए वचन आपके खिरैं कदाचित्
है नियोग ए कोऽपि जगत् को करत सहज-हित
करै न वाँछा इसी चंद्रमा पूरो जलनिधि
शीत रश्मि कूँ पाय उदधि जल बढै स्वयं सिधि ॥३०॥

तेरे गुण-गंभीर परम पावन जगमाँहीं
बहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न पाहीं
तिन गुण को अंत एक याही विधि दीसै
ते गुण तुझ ही माँहिं और में नाहिं जगीसै ॥३१॥

केवल थुति ही नाहिं भक्तिपूर्वक हम ध्यावत
सुमिरन प्रणमन तथा भजनकर तुम गुण गावत
चितवन पूजन ध्यान नमन करि नित आराधैं
को उपाव करि देव सिद्धि-फल को हम साधैं ॥३२॥

त्रैलोकी-नगराधिदेव नित ज्ञान-प्रकाशी
परम-ज्योति परमात्म-शक्ति अनंती भासी
पुन्य पापतैं रहित पुन्य के कारण स्वामी
नमौं नमौं जगवंद्य अवंद्यक नाथ अकामी ॥३३॥

रस सुपरस अर गंध रूप नहिं शब्द तिहारे

इनि के विषय विचित्र भेद सब जाननहारे
सब जीवन-प्रतिपाल अन्य करि हैं अगम्य जिन
सुमरन-गोचर माहिं करौं जिन तेरो सुमिरन ॥३४॥

तुम अगाध जिनदेव चित्त के गोचर नाहीं
नि:किंचन भी प्रभू धनेश्वर जाचत सोई
भये विश्व के पार दृष्टि सों पार न पावै
जिनपति एम निहारि संत-जन सरनै आवै ॥३५॥

नमौं नमौं जिनदेव जगत्-गुरु शिक्षादायक
निजगुण-सेती भई उन्नती महिमा-लायक
पाहन-खंड पहार पछैं ज्यों होत और गिर
त्यों कुलपर्वत नाहिं सनातन दीर्घ भूमिधर ॥३६॥

स्वयंप्रकाशी देव रैन दिनसों नहिं बाधित
दिवस रात्रि भी छतैं आपकी प्रभा प्रकाशित
लाघव गौरव नाहिं एक-सो रूप तिहारो
काल-कला तैं रहित प्रभू सूँ नमन हमारो ॥३७॥

इहविधि बहु परकार देव तव भक्ति करी हम
जाचूँ कर न कदापि दीन ह्वै रागरहित तुम
छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे ह्वै है
फिर छाया कों जाचत यामें प्रापति कै है ॥३८॥

जो कुछ इच्छा होय देन की तौ उपगारी
द्यो बुधि ऐसी करूँ प्रीतिसौं भक्ति तिहारी
करो कृपा जिनदेव हमारे परि ह्वै तोषित
सनमुख अपनो जानि कौन पंडित नहिं पोषित ॥३९॥

यथा-कथंचित् भक्ति रचै विनयी-जन केई
तिनकूँ श्रीजिनदेव मनोवाँछित फल देही
पुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावै
सो सुख जस 'धन-जय' प्रापति है शिवपद पावै ॥४०॥

श्रावक 'माणिकचंद' सुबुद्धी अर्थ बताया
सो कवि 'शांतीदास' सुगम करि छंद बनाया

फिरि-फिरिकै ऋषि-रूपचंद ने करी प्रेरणा
भाषा-स्तोतर की विषापहार पढ़ो भविजना ॥४१॥

मृत्युमहोत्सव

मृत्यु - मार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागोददातु मे
समाधि-बोधि-पाथेयं यावन्मुक्ति-पुरी पुर: ॥१॥

कृमि - जाल - शताकीर्णे, जर्जरे देह - पञ्जरे
भज्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञान-विग्रह: ॥२॥

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्यु-महोत्सवे
स्वरूपस्थ: पुरं याति, देही देहान्तर-स्थितिम् ॥३॥

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद्, दृश्यते पूर्व-सत्तमै:
भुज्यते-स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीति: कुत: सताम् ॥४॥

आगर्भाद्दु:ख - सन्तप्त: प्रक्षिप्तो देह-पिञ्जरे
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्यु-भूमिपतिं विना ॥५॥

सर्व - दु:खं - प्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभि:
मृत्यु-मित्र-प्रसादेन प्राप्यन्ते सुख-सम्पद: ॥६॥

मृत्यु-कल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधित:
निमग्नो जन्म-जम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥७॥

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यत:
स मृत्यु: किं न मोदाय सतां सतोत्थितिर्यथा ॥८॥

सुखं दु:खं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत्
मृत्यु-भीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थत: ॥९॥

संसारासक्त-चित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्
मोदायते पुन: सोऽपि ज्ञान-वैराग्यवासिनाम् ॥१०॥

पुराधीशो यदा याति सुकृत्यस्य बुभुत्सया

तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चै: पाञ्च-भौतिकै: ॥११॥

मृत्यु-काले सतां दु:खं यद् भवेद् व्याधि-संभवम्
देह-मोह-विनाशाय मन्ये शिव-सुखाय च॥ १२॥

ज्ञानिनोऽमृत - सङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥१३॥

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायास - विडम्बनात्
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्यु-काले समाधिना ॥१४॥

अनार्त: शान्तिमान् मत्र्यो न तिर्यग्नापि नारक:
धर्म्य-ध्यानी पुरो मत्र्योऽनशनी त्वमरेश्वर:॥ १५॥

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्यु: समाधिना॥ १६॥

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जन-वाद:
चिरंतर-शरीर-नाशे नवतर-लाभे च किं भीरु:॥१७॥

स्वर्गादित्य पवित्र-निर्मल - कुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्वा भक्ति-विधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनम्!
भुक्त्वा भोगमहर्निशं पर-कृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले,
पात्रावेश-विसर्जनामिव मृतिं सन्तो लभन्ते स्वत: ॥१८॥

अपूर्व-अवसर

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जब
संबंधों का बंधन तीक्ष्ण छेदकर
विचरूंगा कब महत्पुरुष के पंथ जब ॥१॥

उदासीन वृत्ति हो सब परभाव से
यह तन केवल संयम हेतु होय जब
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं
तन में किंचित भी मूर्च्छा नहीं होय जब ॥२॥

दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब
चरित्र मोह का क्षय जिससे जायेगा
वर्ते ऐसा निज स्वरुप का ध्यान जब ॥३॥

आत्म लीनता मन वच काया योग की
मुख्यरूप से रही देह पर्यन्त जब
भयकारी उपसर्ग परिषह हो महा
किन्तु न होवे स्थिरता का अंत जब ॥४॥

संयम ही के लिये योग की वृत्ति हो
निज आश्रय से जिन आज्ञा अनुसार जब
वह प्रवृत्ति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी
होऊँ अंत में निज स्वरुप में लीन जब ॥५॥

पंच विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं
अरु प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव प्रतिबन्ध बिन
वीतलोभ हो विचरूँ उदयाधीन जब ॥६॥

क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता
मान भाव प्रति दीन भावमय मान जब
माया के प्रति माया साक्षी भाव की
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब ॥७॥

बहु उपसर्ग कर्त्ता के प्रति भी क्रोध नहीं
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब
देह जाय पर माया नहीं हो रोम में
लोभ नहीं हो प्रबल सिद्धि निदान जब ॥८॥

नग्नभाव मुंडभाव सहित अस्नानता
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब
केश-रोम-नख आदि अंग श्रृंगार नहीं
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रंथ सिद्ध जब ॥९॥

शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता
मान-अपमान में वर्ते वही स्वभाव जब
जन्म-मरण में हो नहीं न्यून अधिकता
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब ॥१०॥

एकाकी विचरूँगा जब श्मशान में
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब ॥११॥

घोर तपश्चर्या में तन संताप नहीं
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की
सब में भासे पुद्गल एक स्वभाव जब ॥१२॥

ऐसे प्राप्त करूँ जय चारित्र मोह पर
पाऊँगा तब करण अपूरव भाव जब
क्षायिक श्रेणी पर होऊँ आरूढ़ जब
अनन्य चिंतन अतिशय शुद्ध स्वभाव जब ॥१३॥

मोह स्वयंभूरमण उदधि को तैर कर
प्राप्त करूँगा क्षीणमोह गुणस्थान जब
अंत समय में पूर्णरूप वीतराग हो
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब ॥१४॥

चार घातिया कर्मों का क्षय हो जहाँ
हो भवतरु का बीज समूल विनाश जब
सकल ज्ञेय का ज्ञाता दृष्टा मात्र हो
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनंत प्रकाश जब ॥१५॥

चार अघाति कर्म जहाँ वर्ते प्रभो
जली जेवरीवत हो आकृति मात्र जब
जिनकी स्थिति आयु कर्म आधीन है
आयु पूर्ण हो तो मिटता तन पात्र जब ॥१६॥

मन वच काया अरु कर्मों की वर्गणा

छूटे जहाँ सकल पुद्गल सम्बन्ध जब
यही अयोगी गुणस्थान तक वर्तता
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जब ॥१७॥

इक परमाणु मात्र की न स्पर्शता
पूर्ण कलंक विहीन अडोल स्वरुप जब
शुद्ध निरंजन चेतन मूर्ति अनन्यमय
अगुरुलघु अमूर्त सहजपद रूप जब ॥१८॥

पूर्व प्रयोगादिक कारण के योग से
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय में सुस्थित जब
सादि अनंत अनंत समाधि सुख में
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जब ॥१९॥

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब
उस स्वरुप को अन्य वचन से क्या कहूँ
अनुभव गोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब ॥२०॥

यही परम पद पाने को धर ध्यान जब
शक्तिविहीन अवस्था मनरथरूप जब
तो भी निश्चय 'राजचंद्र' के मन रहा
प्रभु आज्ञा से होऊँ वही स्वरूप जब ॥२१॥

कुंदकुंद-शतक

कुंद-कुंद आचार्य के पंच परमागम में से चुनी हुई १०१ गाथाऐं
हिंदी पद्दानुवाद - डा. हुकमचंद भारिल्ल

प्रवचनसार-१
सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र-वंदित, कर्ममल निर्मल करन
वृषतीर्थ के करतार श्री, वर्द्धमान जिन शत-शत नमन ॥१॥

मोक्षपाहुड-१०४
अरहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु हैं परमेष्ठि पण
सब आतमा की अवस्थाएँ, आतमा ही है शरण ॥२॥

मोक्षपाहुड-१०५
सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप, समभाव सम्यक् आचरण
सब आतमा की अवस्थाएँ, आतमा ही है शरण ॥३॥

नियमसार-४४
निर्ग्रन्थ है नीराग है, नि:शल्य है निर्दोष है
निर्मान-मद यह आतमा, निष्काम है निष्क्रोध है ॥४॥

नियमसार-४३
निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है, यह निरालम्बी आतमा
निर्देह है निर्मूढ है, निर्भयी निर्मम आतमा ॥५॥

समयसार-३८
मैं एक दर्शन-ज्ञानमय, नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं
ये अन्य सब परद्रव्य, किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ॥६॥

समयसार-४९
चैतन्य गुणमय आतमा, अव्यक्त अरस अरूप है
जानो अलिंगग्रहण इसे, यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥७॥

समयसार-२९६
जिस भाँति प्रज्ञाछैनी से, पर से विभक्त किया इसे
उस भाँति प्रज्ञाछैनी से ही, अरे ग्रहण करो इसे ॥८॥

समयसार-२८६
जो जानता मैं शुद्ध हूँ, वह शुद्धता को प्राप्त हो
जो जानता अविशुद्ध वह, अविशुद्धता को प्राप्त हो ॥९॥

प्रवचनसार-२३
यह आत्म ज्ञानप्रमाण है, अर ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है
हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि, सर्वगत यह ज्ञान है ॥१०॥

समयसार-१६
चारित्र दर्शन ज्ञान को, सब साधुजन सेवें सदा
ये तीन ही हैं आतमा, बस कहे निश्चयनय सदा ॥११॥

समयसार-१७
'यह नृपति है' यह जानकर, अर्थार्थिजन श्रद्धा करें
अनुचरण उसका ही करें, अति प्रीति से सेवा करें ॥१२॥

समयसार-१८
यदि मोक्ष की है कामना, तो जीवनृप को जानिए
अति प्रीति से अनुचरण करिये, प्रीति से पहिचानिए ॥१३॥

अष्टपाहुड-२६
जो भव्यजन संसार-सागर, पार होना चाहते
वे कर्मईंधन-दहन निज, शुद्धातमा को ध्यावते ॥१४॥

समयसार-४१२
मोक्षपथ में थाप निज को, चेतकर निज ध्यान धर
निज में ही नित्य विहार कर, पर द्रव्य में न विहार कर ॥१५॥

समयसार-१५५
जीवादि का श्रद्धान सम्यक्, ज्ञान सम्यग्ज्ञान है
रागादि का परिहार चारित, यही मुक्तिमार्ग है ॥१६॥

मोक्षपाहुड-३८
तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है, तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है
जिनदेव ने ऐसा कहा, परिहार ही चारित्र है ॥१७॥

मोक्षपाहुड-३७
जानना ही ज्ञान है, अरु देखना दर्शन कहा
पुण्य-पाप का परिहार चारित्र, यही जिनवर ने कहा ॥१८॥

शीलपाहुड-५
दर्शन रहित यदि वेष हो, चारित्र विरहित ज्ञान हो
संयम रहित तप निरर्थक, आकाश-कुसुम समान हो ॥१९॥

शीलपाहुड-६
दर्शन सहित हो वेष चारित्र, शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो
संयम सहित तप अल्प भी हो, तदपि सुफल महान हो ॥२०॥

समयसार-१५२
परमार्थ से हों दूर पर, तप करें व्रत धारण करें
सब बालतप है बालव्रत, वृषभादि सब जिनवर कहें ॥२१॥

समयसार-१५३
व्रत नियम सब धारण करें, तप शील भी पालन करें
पर दूर हों परमार्थ से ना, मुक्ति की प्राप्ति करें ॥२२॥

दर्शनपाहुड-२२
जो शक्य हो वह करें, और अशक्य की श्रद्धा करें
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है, इस भांति सब जिनवर कहें ॥२३॥

दर्शनपाहुड-२०
जीवादि का श्रद्धान ही, व्यवहार से सम्यक्त्व है
पर नियत नय से आत्म का, श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥२४॥

मोक्षपाहुड-१४
नियम से निज द्रव्य में, रत श्रमण सम्यकवंत हैं
सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही, क्षय करें करमानन्त हैं ॥२५॥

मोक्षपाहुड-८८
मुक्ति गये या जायेंगे, माहात्म्य है सम्यक्त्व का
यह जान लो हे भव्यजन, इससे अधिक अब कहें क्या ॥२६॥

मोक्षपाहुड-८१
वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं, वे शूर नर पण्डित वही
दुःस्वप्न में सम्यक्त्व को, जिनने मलीन किया नहीं ॥२७॥

समयसार-१३
चिदचिदास्रव पाप-पुण्य, शिव बंध संवर निर्जरा
तत्वार्थ ये भूतार्थ से, जाने हुए सम्यक्त्व हैं ॥२८॥

समयसार-११
शुद्धनय भूतार्थ है, अभूतार्थ है व्यवहारनय
भूतार्थ की ही शरण गह, यह आतमा सम्यक् लहे ॥२९॥

समयसार-८
अनार्य भाषा के बिना, समझा सके न अनार्य को
बस त्योंहि समझा सके ना, व्यवहार बिन परमार्थ को ॥३०॥

समयसार-२७
देह-चेतन एक हैं, यह वचन है व्यवहार का
ये एक हो सकते नहीं, यह कथन है परमार्थ का ॥३१॥

समयसार-७
दृग ज्ञान चारित जीव के हैं, यह कहा व्यवहार से
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक, शुद्ध है परमार्थ से ॥३२॥

मोक्षपाहुड-३१
जो सो रहा व्यवहार में, वह जागता निज कार्य में
जो जागता व्यवहार में, वह सो रहा निज कार्य में ॥३३॥

समयसार-२७२
इस ही तरह परमार्थ से, कर नास्ति इस व्यवहार की
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन, प्राप्ति करें निर्वाण की ॥३४॥

दर्शनपाहुड-४२
सद्धर्म का है मूल दर्शन, जिनवरेन्द्रों नें कहा
हे कानवालों सुनों, दर्शन-हीन वंदन योग्य ना ॥३५॥

दर्शनपाहुड-८
जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं, चारित्र से भी भ्रष्ट हैं
वे भ्रष्ट करते अन्य को, वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं ॥३६॥

दर्शनपाहुड-३
दृग-भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं, उनको कभी निर्वाण ना
हों सिद्ध चारित्र-भ्रष्ट पर, दृग-भ्रष्ट को निर्वाण ना ॥३७॥

दर्शनपाहुड-१३
जो लाज गौरव और भयवश, पूजते दृग-भ्रष्ट को
की पाप की अनुमोदना, ना बोधि उनको प्राप्त हो ॥३८॥

दर्शनपाहुड-१२
चाहें नमन दृगवंत से, पर स्वयं दर्शनहीन हों
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी, वे भी वचन-पग हीन हों ॥३९॥

दर्शनपाहुड-५
यद्यपि करें वे उग्र तप, शत-सहस-कोटी वर्ष तक
पर रतनत्रय पावें नहीं, सम्यक्त्व-विरहित साधु सब ॥४०॥

दर्शनपाहुड-१०
जिस तरह द्रुम परिवार की, वृद्धि न हो जड़ के बिना
बस उसतरह ना मुक्ति हो, जिनमार्ग में दर्शन बिना ॥४१॥

दर्शनपाहुड-२६
असंयमी न वन्द्य है, दृगहीन वस्त्रविहीन भी
दोनों ही एक समान हैं, दोनों ही संयत हैं नहीं ॥४२॥

दर्शनपाहुड-२७
ना वंदना हो देह की, कुल की नहीं ना जाति की
कोई करे क्यों वंदना, गुण-हीन श्रावक-साधु की ॥४३॥

समयसार-१९
मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ, या हैं हमारे ये सभी
यह मान्यता जब तक रहे, अज्ञानी हैं तब तक सभी ॥४४॥

समयसार-७५
करम के परिणाम को, नोकरम के परिणाम को
जो ना करे बस मात्र जाने, प्राप्त हो सद्ज्ञान को ॥४५॥

समयसार-२४७
मैं मारता हूँ अन्य को, या मुझे मारें अन्यजन
यह मान्यता अज्ञान है, जिनवर कहें हे भव्यजन ॥४६॥

समयसार-२४८
निज आयुक्षय से मरण हो, यह बात जिनवर ने कही
तुम मार कैसे सकोगे जब, आयु हर सकते नहीं? ॥४७॥

समयसार-२४९
निज आयुक्षय से मरण हो, यह बात जिनवर ने कही
वे मरण कैसे करें तब जब, आयु हर सकते नहीं? ॥४८॥

समयसार-२५०
मैं हूँ बचाता अन्य को, मुझको बचावे अन्यजन
यह मान्यता अज्ञान है, जिनवर कहें हे भव्यजन ॥४९॥

समयसार-२५१
सब आयु से जीवित रहें, यह बात जिनवर ने कही
जीवित रखोगे किस तरह, जब आयु दे सकते नहीं? ॥५०॥

समयसार-२५२
सब आयु से जीवित रहें, यह बात जिनवर ने कही
कैसे बचावे वे तुझे, जब आयु दे सकते नहीं? ॥५१॥

समयसार-२५३
मैं सुखी करता दुःखी करता, हूँ जगत में अन्य को
यह मान्यता अज्ञान है, क्यों ज्ञानियों को मान्य हो? ॥५२॥

समयसार-२६२
मारो न मारो जीव को, हो बंध अध्यवसान से
यह बंध का संक्षेप है, तुम जान लो परमार्थ से ॥५३॥

प्रवचनसार-२१७
प्राणी मरें या न मरें, हिंसा अयत्नाचार से
तब बंध होता है नहीं, जब रहें यत्नाचार से ॥५४॥

पंचास्तिकाय-१०
उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त सत्, सत् द्रव्य का लक्षण कहा
पर्याय-गुणमय द्रव्य है, यह वचन जिनवर ने कहा ॥५५॥

पंचास्तिकाय-१२
पर्याय बिन ना द्रव्य हो, ना द्रव्य बिन पर्याय ही
दोनों अनन्य रहे सदा, यह बात श्रमणों ने कही ॥५६॥

पंचास्तिकाय-१३
द्रव्य बिन गुण हों नहीं, गुण बिना द्रव्य नहीं बने
गुण द्रव्य अव्यतिरिक्त हैं, यह कहा जिनवर देव ने ॥५७॥

पंचास्तिकाय-१५
उत्पाद हो न अभाव का, ना नाश हो सद्भाव में
उत्पाद-व्यय करते रहें, सब द्रव्य गुण-पर्याय में ॥५८॥

प्रवचनसार-३७
असद्भूत हों सद्भूत हों, सब द्रव्य की पर्याय सब
सद्ज्ञान में वर्तमानवत ही, हैं सदा वर्तमान सब ॥५९॥

प्रवचनसार-३८
पर्याय जो अनुत्पन्न हैं, या नष्ट जो हो गई हैं
असद्भावी वे सभी, पर्याय ज्ञान प्रत्यक्ष हैं ॥६०॥

प्रवचनसार-३९
पर्याय जो अनुत्पन्न हैं, या हो गई हैं नष्ट जो
फिर ज्ञान की क्या दिव्यता, यदि ज्ञात होवे नहीं वो? ॥६१॥

सूत्रपाहुड-१
अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर, सूत्र से ही श्रमणजन
परमार्थ का साधन करें, अध्ययन करो हे भव्यजन ॥६२॥

सूत्रपाहुड-३
डोरा सहित सुइ नहीं खोती, गिरे चाहे वन भवन
संसार-सागर पार हों, जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण ॥६३॥

प्रवचनसार-८६
तत्वार्थ को जो जानते, प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से
दृगमोह क्षय हो इसलिए, स्वाध्याय करना चाहिए ॥६४॥

प्रवचनसार-२३५
जिन-आगमों से सिद्ध हों, सब अर्थ गुण-पर्यय सहित
जिन-आगमों से ही श्रमणजन, जानकर साधें स्वहित ॥६५॥

प्रवचनसार-२३२
स्वाध्याय से जो जानकर, निज अर्थ में एकाग्र हैं
भूतार्थ से वे ही श्रमण, स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है ॥६६॥

प्रवचनसार-२३३
जो श्रमण आगमहीन हैं, वे स्वपर को नहिं जानते
वे कर्मक्षय कैसे करें जो, स्वपर को नहिं जानते? ॥६७॥

प्रवचनसार-८३
व्रत सहित पूजा आदि सब, जिन धर्म में सत्कर्म हैं
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज, परिणाम आतमधर्म हैं ॥६८॥

प्रवचनसार-७
चारित्र ही बस धर्म है, वह धर्म समताभाव है
दृगमोह - क्षोभ विहीन निज, परिणाम समताभाव है ॥६९॥

प्रवचनसार-११
प्राप्त करते मोक्षसुख, शुद्धोपयोगी आतमा
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख, हि शुभोपयोगी आतमा ॥७०॥

प्रवचनसार-२४५
शुभोपयोगी श्रमण हैं, शुद्धोपयोगी भी श्रमण
शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं, आस्रवी हैं शेष सब ॥७१॥

प्रवचनसार-२४१
कांच-कंचन बन्धु-अरि, सुख-दुःख प्रशंसा-निन्द में
शुद्धोपयोगी श्रमण का, समभाव जीवन-मरण में ॥७२॥

भावपाहुड-१२७
भावलिंगी सुखी होते, द्रव्यलिंगी दुःख लहें
गुण-दोष को पहिचान कर सब, भाव से मुनि पद गहें ॥७३॥

भावपाहुड-७३
मिथ्यात्व का परित्याग कर, हो नग्न पहले भाव से
आज्ञा यही जिनदेव की, फिर नग्न होवे द्रव्य से ॥७४॥

भावपाहुड-६८
जिन भावना से रहित मुनि, भव में भ्रमें चिरकाल तक
हों नगन पर हों बोधि-विरहित, दुःख लहें चिरकाल तक ॥७५॥

भावपाहुड-४
वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ा, कोडि वर्षों तप करें
पर भाव बिन ना सिद्धि हो, सत्यार्थ यह जिनवर कहें ॥७६॥

भावपाहुड-६७
नारकी तिर्यंच आदिक, देह से सब नग्न हैं
सच्चे श्रमण तो हैं वही, जो भाव से भी नग्न हैं ॥७७॥

सूत्रपाहुड-१८
जन्मते शिशुवत अकिंचन, नहीं तिलतुष हाथ में
किंचित् परिग्रह साथ हो तो, श्रमण जाँय निगोद में ॥७८॥

लिंगपाहुड-५
जो आर्त होते जोड़ते, रखते रखाते यत्न से
वे पाप मोहितमती हैं, वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥७९॥

लिंगपाहुड-१७
राग करते नारियों से, दूसरों को दोष दें
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं, वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥८०॥

लिंगपाहुड-२
श्रावकों में शिष्यगण में, नेह रखते श्रमण जो
हीन विनयाचार से, वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥८१॥

लिंगपाहुड-१८
पार्श्वस्थ से भी हीन जो, विश्वस्त महिला वर्ग में
रत ज्ञान दर्शन चरण दें, वे नहीं पथ अपवर्ग में ॥८२॥

लिंगपाहुड-२०
धर्म से हो लिंग केवल, लिंग से न धर्म हो
समभाव को पहिचानिये, द्रव्यलिंग से क्या कार्य हो? ॥८३॥

समयसार-१५०
विरक्त शिवरमणी वरें, अनुरक्त बाँधे कर्म को
जिनदेव का उपदेश यह, मत कर्म में अनुरक्त हो ॥८४॥

समयसार-१५४
परमार्थ से हैं बाह्य, वे जो मोक्षमग नहीं जानते
अज्ञान से भवगमन-कारण, पुण्य को हैं चाहते ॥८५॥

समयसार-१४५
सुशील है शुभकर्म और, अशुभ करम कुशील है
संसार के हैं हेतु वे, कैसे कहें कि सुशील हैं? ॥८६॥

समयसार-१४६
ज्यों लोह बेड़ी बाँधती, त्यों स्वर्ण की भी बाँधती
इस भांति ही शुभ-अशुभ दोनों, कर्म बेड़ी बाँधती ॥८७॥

समयसार-१४७
दु:शील के संसर्ग से, स्वाधीनता का नाश हो
दु:शील से संसर्ग एवं, राग को तुम मत करो ॥८८॥

प्रवचनसार-७७
पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है, जो न माने बात ये
संसार-सागर में भ्रमे, मद-मोह से आच्छन्न वे ॥८९॥

प्रवचनसार-७६
इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है, विषम बाधा सहित है
है बंध का कारण दुखद, परतंत्र है विच्छिन्न है ॥९०॥

नियमसार-१२०
शुभ-अशुभ रचना वचन वा, रागादिभाव निवारिके
जो करें आतम ध्यान नर, उनके नियम से नियम है ॥९१॥

नियमसार-३
सद्-ज्ञान-दर्शन-चरित ही, है 'नियम' जानो नियम से
विपरीत का परिहार होता, 'सार' इस शुभ वचन से ॥९२॥

नियमसार-२
जैन शासन में कहा, है मार्ग एवं मार्गफल
है मार्ग मोक्ष-उपाय एवं, मोक्ष ही है मार्गफल ॥९३॥

नियमसार-१५६
है जीव नाना कर्म नाना, लब्धि नानाविध कही
अतएव वर्जित वाद है, निज-पर समय के साथ भी ॥९४॥

नियमसार-१५७
ज्यों निधि पाकर निज वतन में, गुप्त रह जन भोगते
त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञाननिधि, परसंग तज के भोगते ॥९५॥

नियमसार-१८६
यदि कोई ईर्ष्याभाव से, निन्दा करे जिनमार्ग की
छोड़ो न भक्ति वचन सुन, इस वीतरागी मार्ग की ॥९६॥

नियमसार-१३६
जो थाप निज को मुक्तिपथ, भक्ति निवृत्ती की करें
वे जीव निज असहाय गुण, सम्पन्न आतम को वरें ॥९७॥

नियमसार-१३५
मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की, भक्ति करें गुणभेद से
वह परमभक्ति कही है, जिनसूत्र में व्यवहार से ॥९८॥

प्रवचनसार-८०
द्रव्य गुण पर्याय से, जो जानते अरहंत को
वे जानते निज आतमा, दृगमोह उनका नाश हो ॥९९॥

प्रवचनसार-८२
सर्व ही अरहंत ने विधि, नष्ट कीने जिस विधी
सबको बताई वही विधि, हो नमन उनको सब विधी ॥१००॥

प्रवचनसार-२७४
है ज्ञान दर्शन शुद्धता, निज शुद्धता श्रामण्य है
हो शुद्ध को निर्वाण, शत-शत बार उनको नमन है ॥१०१॥

ध्यान-सूत्र-शतक

आ. माघनन्दी कृत

सहज शुद्ध पारिणामिक भाव स्वरुपोऽहं ॥
सहज शुद्ध ज्ञानानन्दैक स्वभावोऽहं ॥
चैतन्य रत्नाकर स्वरुपोऽहं ॥
सहज ज्ञान ज्योति स्वरुपोऽहं ॥
अनन्त सुख स्वरुपोऽहं ॥
अनन्त शक्ति स्वरुपोऽहं ॥
नित्य निरंजन ज्ञान स्वरुपोऽहं ॥
सहज सुखानंद स्वरुपोऽहं ॥
परम ज्योति स्वरुपोऽहं ॥
शुद्धात्मानुभूति स्वरुपोऽहं ॥
कारण परमात्मा स्वरुपोऽहं ॥
समयसार स्वरुपोऽहं ॥
परम समाधि स्वरुपोऽहं ॥
केवल ज्ञान स्वरुपोऽहं ॥
केवल दर्शन स्वरुपोऽहं ॥
अष्टादश दोष रहितोऽहं ॥
कर्माष्टकरहित स्वरुपोऽहं ॥
सम्यग्दर्शन संपन्नोऽहं।
सम्यक चारित्र संपन्नोऽहं ॥
व्यवहार रत्नत्रय संपन्नोऽहं ॥
क्षायिक सम्यक्त्व स्वरुपोऽहं ॥
क्षायिक ज्ञान स्वरुपोऽहं ॥
क्षायिक चारित्र संपन्नोऽहं ॥
क्षायिक लब्धि स्वरुपोऽहं ॥
परमशुद्ध चिद्रूप स्वरुपोऽहं ॥
अनन्त दर्शन स्वरुपोऽहं ॥
सहज चैतन्य स्वरुपोऽहं ॥
शुद्धचिन्मात्र स्वरुपोऽहं ॥
अनन्त ज्ञान स्वरुपोऽहं ॥
अनन्त वीर्य स्वरुपोऽहं ॥
सहजानंद स्वरुपोऽहं ॥

चिदानन्दस्वरुपोऽहं ॥
शुद्धात्मस्वरुपोऽहं ॥
स्वात्मोपलब्धि स्वरुपोऽहं ॥
शुद्धात्मसंवित्ति स्वरुपोऽहं ॥
परमात्म स्वरुपोऽहं ॥
परम मंगल स्वरुपोऽहं ॥
परमोत्तमस्वरुपोऽहं ॥
परमब्रह्म स्वरुपोऽहं ॥
शुद्धस्वरुपोऽहं ॥
सिद्ध स्वरुपोऽहं ॥
निर्मोह स्वरुपोऽहं ॥
सम्यग्ज्ञान संपन्नोऽहं ॥
निश्चय रत्नत्रय संपन्नोऽहं ॥
त्रिगुप्तिगुप्त स्वरुपोऽहं ॥
पंच समिति संपन्नोऽहं ॥
पंच महाव्रत संपन्नोऽहं ॥
दर्शनाचार संपन्नोऽहं ॥
ज्ञानाचार संपन्नोऽहं ॥
वीर्याचार संपन्नोऽहं ॥
शुद्ध चैतन्य स्वरुपोऽहं ॥
अखंड शुद्धज्ञान स्वरुपोऽहं ॥
स्वाभाविक ज्ञान दर्शन स्वरुपोऽहं ॥
अनन्त चतुष्टय स्वरुपोऽहं ॥
अतींद्रियज्ञान स्वरुपोऽहं ॥
स्व-पर भेद ज्ञान स्वरुपोऽहं ॥
चैतन्य चिन्ह स्वरुपोऽहं ॥
अष्टगुण सहितोऽहं ॥
उत्तम क्षमा धर्म स्वरुपोऽहं ॥
उत्तम मार्दव धर्म स्वरुपोऽहं ॥
उत्तम आर्जव धर्म स्वरुपोऽहं ॥
उत्तम शौच धर्म स्वरुपोऽहं ॥
उत्तम संयम धर्म स्वरुपोऽहं ॥
उत्तम तपो धर्म स्वरुपोऽहं।
उत्तम आकिंचन धर्म स्वरुपोऽहं ॥
उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म स्वरुपोऽहं ॥
स्वरूपाचरण चारित्र स्वरुपोऽहं।

वीतराग स्वसंवेदन स्वरुपोऽहं ॥
अरस- अगंध- अवर्ण- अस्पर्श स्वरुपोऽहं ॥
कर्म फल चेतना रहित स्वरुपोऽहं ॥
राग-द्वेष मोहादि रहित स्वरुपोऽहंहं ॥
शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरुपोऽहं ॥
शुद्ध जीव पदार्थ स्वरुपोऽहं ॥
नीजतत्त्व स्वरुपोऽहं ॥
बुद्धोऽहं ॥
चारित्राचार संपन्नोऽहं ॥
तपाचार संपन्नोऽहं ॥
अमूर्त स्वरुपोऽहं ॥
वीतराग स्वरुपोऽहं ॥
अतींद्रियसुख स्वरुपोऽहं।
ज्ञानार्णव स्वरुपोऽहं ॥
अष्टविध कर्म रहितोऽहं ॥
धर्मध्यान स्वरुपोऽहं ॥
शुक्लध्यान स्वरुपोऽहं।
आत्मध्यान स्वरुपोऽहं ॥
निर्दोषपरमात्म स्वरुपोऽहं ॥
अनन्तानन्त स्वरुपोऽहं ॥
उत्तम सत्य धर्म स्वरुपोऽहं ॥
उत्तम त्याग धर्म स्वरुपोऽहं ॥
पूर्ण ज्ञान घन स्वरुपोऽहं ॥
पूर्णानंद स्वरुपोऽहं ॥
एकत्व विभक्त स्वरुपोऽहं ॥
ज्ञान चेतना स्वरुपोऽहं ॥
कर्म चेतना रहित स्वरुपोऽहं ॥
अबद्ध-अस्पृष्ट-स्वरुपोऽहं ॥
अशब्द स्वरुपोऽहं ॥
शुद्धोपयोग स्वरुपोऽहं ॥
शुद्धजीवतत्त्व स्वरुपोऽहं ॥
शुद्धोऽहं ॥
सोऽहं । सोऽहं । सोऽहं ॥

कविवर बुधजन कृत

मंगलाचरण [सोरठा]
सर्व द्रव्य में सार, आतम को हितकार हैं
नमो ताहि चितधार, नित्य निरंजन जानके ॥

पहली ढाल

बारह भावना [चौपाई]

आयु घटे तेरी दिन-रात, हो निश्चिंत रहो क्यों भ्रात
यौवन तन धन किंकर नारि, हैं सब जल बुदबुद उनहारि ॥१-अथिर॥

पूरण आयु बढे छिन नाहिं, दिये कोटि धन तीरथ मांहि
ड़न्द्र चक्रपति हू क्या करैं, आयु अन्त पर वे हू मरैं ॥२-अशरण॥

यों संसार असार महान, सार आप में आपा जान
सुख से दुख, दुख से सुख होय, समता चारों गति नहिं कोय ॥३-संसार॥

अनंतकाल गति-गति दुख लह्यो, बाकी काल अनंतो कह्यो
सदा अकेला चेतन एक, तो माहीं गुण वसत अनेक ॥४-एकत्व॥

तू न किसी का तेरा न कोय, तेरा सुख दुख तोकों होय
याते तोकों तू उर धार, पर द्रव्यनतें ममत निवार ॥५-भिन्न॥

हाड़ मांस तन लिपटी चाम, रुधिर मूत्र- मल पूरित धाम
सो भी थिर न रहे क्षय होय, याको तजे मिले शिव लोय ॥६-अशुचि॥

हित अनहित तन कुलजन मांहि, खोटी बानि हरो क्यों नाहिं
याते पुद्गल-करमन जोग, प्रणवे दायक सुख- दुख रोग ॥७-आस्रव॥

पांचों इन्द्रिन के तज फ़ैल, चित्त निरोध लाग शिव- गैल
तुझमे तेरी तू करि सैल, रहो कहा हो कोल्हू बैल ॥८-संवर॥

तज कषाय मन की चल चाल, ध्यावो अपनो रूप रसाल
झड़े कर्म- बंधन दुखदान, बहुरि प्रकाशै केवलज्ञान ॥९-निर्जरा॥

तेरो जन्म हुओ नहिं जहां, ऐसा खेतर नाहीं कहाँ
याही जन्म- भूमिका रचो, चलो निकसि तो विधि से बचो ॥१०-लोक॥

सब व्यवहार क्रिया को ज्ञान, भयो अनंती बार प्रधान
निपट कठिन 'अपनी' पहिचान, ताको पावत होत कल्याण ॥११-बोधि॥

धर्म स्वभाव आप सरधान, धर्म न शील न न्हौंन न दान
'बुधजन' गुरु की सीख विचार, गहो धाम आतम सुखकार ॥१२-धर्म॥

दूसरी ढाल

नरेन्द्र / जोगीरासा छंद

सुन रे जीव कहत हूँ तोकों, तेरे हित के काजै
हो निश्चल मन जो तू धारे, तब कछु- इक तोहि लाजे ॥
जिस दुख से थावर तन पायो, वरन सको सो नाहीं
अठदश बार मरो अरु जीयो, एक स्वास के माहीं ॥१॥

काल अनतानंत रह्यो यों, पुनि विकलत्रय हूवो
बहुरि असैनी निपट अज्ञानी, छिनछिन जीओ मूवो ॥
ऐसे जन्म गयो करमन- वश, तेरो जोर न चाल्यो
पुन्य उदय सैनी पशु हूवो, बहुत ज्ञान नहिं भाल्यो ॥२॥

जबर मिलो तब तोहि सतायो, निबल मिलो ते खायो
मात तिया- सम भोगी पापी, तातें नरक सिधायो ॥
कोटिन बिच्छू काटत जैसे, ऐसी भूमि तहाँ है
रुधिर-राध-परवाह बहे जहां, दुर्गन्ध निपट तहाँ है ॥३॥

घाव करै असिपत्र अंग में, शीत ऊष्ण तन गाले
कोई काटे करवत कर गह, कोई पावक जालें ॥
यथायोग सागर- थिति भुगते, दुख को अंत न आवे
कर्म- विपाक इसो ही होवे, मानुष गति तब पावै ॥४॥

मात उदर मे रहो गेंद ह्वें, निकसत ही बिललावे
डंभा दांत गला विष फोटक, डाकिन से बच जावे ॥

तो यौवन में भामिनि के संग, निशि -दिन भोग रचावे
अंधा ह्वें धंधे दिन खोवै, बूढा नाड़ हिलावे ॥५॥

जम पकडे तब जोर न चाले, सैनहि सैन बतावै
मंद कषाय होय तो भाई, भवनत्रिक पद पावै ॥
पर की संपति लखि अति झूरे, कै रति काल गमावै
आयु अंत माला मुरझावै, तब लखि लखि पछतावे ॥६॥

तह तैं चयकर थावर होता, रुलता काल अनन्ता
या विध पंच परावृत पूरत, दुख को नाहीं अन्ता ॥
काललब्धि जिन गुरु-कृपा से, आप आप को जानो
तबही 'बुधजन' भवदधि तिरके, पहुँच जाय - शिव-थाने ॥७॥

तीसरी ढाल

पद्धरि छंद

इस विधि भववन के मांहि जीव, वश मोह गहल सोता सदीव
उपदेश तथा सहजै प्रबोध, तबही जागै ज्यों उठत जोध ॥१॥

जब चितवत अपने मांहि आप, हूँ चिदानन्द नहिं पुन्य- पाप
मेरो नाहीं है राग भाव, यह तो विधिवश उपजै विभाव ॥२॥

हूँ नित्य निरंजन सिध समान, ज्ञानावरणी आच्छाद ज्ञान
निश्चय सुध इक व्यवहार भेव, गुण-गुणी अंग-अंगी अछेव ॥३॥

मानुष सुर नारक पशुपर्याय, शिशु युवा वृद्ध बहुरूप काय
धनवान दरिद्री दास राय, ये तो विडम्ब मुझको न भाय ॥४॥

रस फरस गंध वरनादि नाम, मेरे नाहीं मैं ज्ञानधाम
मैं एकरूप नहिं होत और, मुझमे प्रतिबिम्बत सकल ठौर ॥५॥

तन पुलकित उर हरषित सदीव, ज्यों भई रंकगृह निधि अतीव
जब प्रबल अप्रत्याख्यान थाय, तब चित परिणति ऐसी उपाय ॥६॥

सो सुनो भव्य चित धार कान, वरणत हूँ ताकी विधि विधान

सब करै काज घर मांहि वास, ज्यों भिन्न कमल जल में निवास ॥७॥

ज्यों सती अंग माहीं सिंगार, अति करत प्यार ज्यों नगर नारि
ज्यों धाय चखावत आन बाल, त्यों भोग करत नाहीं खुशाल ॥८॥

जब उदय मोह चारित्र भाव, नहिं होत रंच हू त्याग भाव
तहाँ करै मंद खोटी कषाय, घर में उदास हो अथिर थाय ॥९॥

सबकी रक्षा युत न्याय नीति, जिनशासन गुरु की दृढ़ प्रतीति
बहु रुले अर्द्ध पुद्गल प्रमान, अंतर मुहूर्त ले परम थान ॥१०॥

वे धन्य जीव धन भाग सोय, जाके ऐसी परतीत होय
ताकी महिमा ह्वै स्वर्ग लोय, बुधजन भाषे मोतैं न होय ॥११॥

चौथी ढाल

सोरठा

ऊग्यो आतम सूर, दूर भयो मिथ्यात- तम
अब प्रगटे गुणभूर, तिनमें कछु ड़क कहत हूँ ॥१॥

शंका मन में नाहिं, तत्वारथ सरधान में
निरवांछा चित मांहि, परमारथ में रत रहै ॥२॥

नेक न करत गिलान, बाह्य मलिन मुनि तन लखे
नाहीं होत अजान, तत्व कृतत्व विचार में ॥३॥

उर में दया विशेष, गुण प्रकटैं औगुण ढके
शिथिल धर्म मे देख, जैसे - तैसे दृढ़ करै ॥४॥

साधर्मी पहिचान, करैं प्रीति गौ वत्स सम
महिमा होत महान्, धर्म काज ऐसे करै ॥५॥

मद नहिं जो नृप तात, मद नहिं भूपति ज्ञान को
मद नहिं विभव लहात, मद नहिं सुन्दर रूप को ॥६॥

मद नहिं जो विद्वान, मद नहिं तन में जोर को
मद नहिं जो परधान, मद नहिं संपति कोष को ॥७॥

हूवो आतम ज्ञान, तज रागादि विभाव पर
ताको ह्वै क्यों मान, जात्यादिक वसु अथिर को ॥८॥

बंदत हैं अरिहंत, जिन-मुनि जिन- सिद्धान्त को
नमें न देख महंत, कृगुरु कुदेव कृधर्म को ॥९॥

कुत्सित आगम देव, कुत्सित गुरु पुनि सेवकी
परशंसा षट भेव, करै न सम्यकवान है ॥१०॥

प्रगटो ऐसो भाव, कियो अभाव मिथ्यात्व को
बन्दत ताके पाँव, 'बुधजन' मन- वच- कायतैं ॥११॥

पाँचवीं ढाल

चाल छंद

तिर्यंच मनुज दोउ गति में, व्रत धारक श्रद्धा चित में
सो अगलित नीर न पीवै, निशि भोजन तजत सदीवै ॥१॥

मुख वस्तु अभक्ष न लावै, जिन भक्ति त्रिकाल रचावै
मन वच तन कपट निवारै, कृत कारित मोद संवारै ॥२॥

जैसी उपशमत कषाया, तैसा तिन त्याग कराया
कोई सात व्यसन को त्यागै, कोई अणुव्रत में मन पागै ॥३॥

त्रस जीव कभी नहिं मारै, विरथा थावर न संहारै
परहित बिन झूठ न बोले, मुख सांच बिना नहिं खोले ॥४॥

जल मृतिका बिन धन सबहू, बिन दिये न लेवे कबहू
व्याही बनिता बिन नारी, लघु बहिन बड़ी महतारी ॥५॥

तृष्णा का जोर संकोचै, ज्यादा परिग्रह को मोचै
दिश की मर्यादा लावै, बाहर नहि पाँव हिलावै ॥६॥

ताहू में गिरि पुर सरिता, नित राखत अघ तें डरता
सब अनरथ दंड न करता, छिन- छिन निज धर्म सुमरता ॥७॥

द्रव्य क्षेत्र काल सुध भावै, समता सामायिक ध्यावै
पोषह एकाकी हो है, निश्किंचन मुनि ज्यों सोहै ॥८॥

परिग्रह परिमाण विचारै, नित नेम भोग को धारै
मुनि आवन बेला जावै, तब जोग अशन मुख लावै ॥९॥

यों उत्तम किरिया करता, नित रहत पाप से डरता
जब निकट मृत्यु निज जाने, तब ही सब ममता भाने ॥१०॥

ऐसे पुरुषोत्तम केरा, 'बुधजन' चरणों का चेरा
वे निश्चय सुरपद पावैं, थोरे दिन में शिव जावैं ॥११॥

छठी ढाल

षटपद छंद

अथिर ध्याय पर्याय, भोग ते होय उदासी
नित्य निरंजन जोति, आत्मा घट में भासी ॥१॥

सुत दारादि बुलाय, सबनितैं मोह निवारा
त्यागि शहर धन धाम, वास वन- बीच विचारा ॥२॥

भूषण वसन उतार, नगन ह्वै आतम चीना
गुरु ढिंग दीक्षा धार, सीस कचलोच जु कीना !!३॥

त्रस थावर का घात, त्याग मन- वच- तन लीना
झूठ वचन परिहार, गहैं नहिं जल बिन दीना ॥४॥

चेतन जड़ तिय भोग, तजो भव- भव दुखकारा
अहि- कंचुकि ज्यों जान, चित तें परिग्रह डारा ॥५॥

गुप्ति पालने काज, कपट मन- वच- तन नाहीं

पांचों समिति संवार, परिषह सहि है आहीं ॥६॥

छोड़ सकल जंजाल, आप कर आप आप में
अपने हित को आप, करो ह्वै शुद्ध जाप में ॥७॥

ऐसी निश्चल काय, ध्यान में मुनि जन केरी
मानो पत्थर रची, किधों चित्राम उकेरी ॥८॥

चार घातिया नाश, ज्ञान मे लोक निहारा
दे जिनमत उपदेश, भव्य को दुख तें टारा ॥९॥

बहुरि अघाती तोरि, समय में शिव-पद पाया
अलख अखंडित जोति, शुद्ध चेतन ठहराया ॥१०॥

काल अनंतानंत, जैसे के तैसे रहिहैं
अविनाशी अविकार, अचल अनुपम सुख लहिहैं ॥११॥

ऐसी भावन भाय, ऐसे जे कारज करिहैं
ते ऐसे ही होय, दुष्ट करमन को हरिहैं ॥१२॥

जिनके उर विश्वास, वचन जिन- शासन नाहीं
ते भोगातुर होय, सहैं दुख नरकन माही ॥१३॥

सुख दुख पूर्व विपाक, अरे मत कल्पै जीया
कठिन कठिन ते मित्र, जन्म मानुष का लीया ॥१४॥

सो बिरथा मत खोय, जोय आपा पर भाई
गई न लावैं फेरि, उदधि में डूबी राई ॥१५॥

भला नरक का वास, सहित समकित जो पाता
बुरे बने जे देव, नृपति मिथ्यामत माता ॥१६॥

नहीं खरच धन होय, नहीं काहू से लरना
नहीं दीनता होय, नहीं घर का परिहरना ॥१७॥

समकित सहज स्वभाव, आप का अनुभव करना

या बिन जप तप वृथा, कष्ट के माहीं परना ॥१८॥

कोटि बात की बात अरे, 'बुधजन' उर धरना
मन- वच- तन सुधि होय, गहो जिन- मत का शरना ॥१९॥

ठारा सौ पच्चास, अधिक नव संवत जानों
तीज शुक्ल वैशाख, ढाल षट शुभ उपजानों ॥२०॥

छहढाला

पहली ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

सोरठा

ओंकार मंझार, पंच परम पद वसत हैं
तीन भुवन में सार, वन्दूँ मन वच काय कर ॥१॥
अक्षर ज्ञान न मोहि, छन्द-भेद समझूँ नहीं
मति थोड़ी किम होय, भाया अक्षर बावनी ॥२॥
आतम कठिन उपाय, पायो नर भव क्यों तजे
राई उदधि समाय, फिर ढूँढे नहिं पाइये ॥३॥
इह विध नर भव कोय, पाय विषय सुख में रमै
सो शठ अमृत खोय, हालाहल विष को पिये ॥४॥
ईश्वर भाखो येह, नर भव मत खोओ वृथा
फिर न मिलै यह देह, पछतावो बहु होयगो ॥५॥
उत्तम नर अवतार, पायो दुख कर जगत में
यह जिय सोच विचार, कुछ टोसा संग लीजिये ॥६॥
ऊरध गति को बीज, धर्म न जो मान आचरैं
मानुष योनि लहीज, कूप पड़े कर दीप ले ॥७॥
ऋषिवर के सुन बैन, सार मनुज सब योनि में
ज्यों मुख ऊपर नैन, भानु दिपै आकाश में ॥८॥

दूसरी ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

चाल छंद

रे जिय यह नरभव पाया, कुल जाति विमल तू आया

जो जैनधर्म नहिं धारा, सब लाभ विषयसंग हारा ॥१॥
लखि बात हृदय गह लीजे, जिनकथित धर्म नित कीजे
भव दुख सागर को वरिये, सुख से नवका ज्यों तरिये ॥२॥
ले सुधि न विषय रस भरिया, भ्रम मोह ने मोहित करिया
विधि ने जब दई घुमरिया, तब नरक भूमि तू परिया ॥३॥
अब नर कर धर्म अगाऊ, जब लों धन यौवन चाऊ
जब लों नहिं रोग सतावैं, तोहि काल न आवन पावै ॥४॥
ऐश्वर्य रु आश्रित नैना, जब लों तेरी दृष्टि फिरै ना
जब लों तेरी दृष्टि सवाई, कर धर्म अगाऊ भाई ॥५॥
ओस बिंदु त्यों योवन जैहे, कर धर्म जरा पुन यै है
ज्यों बूढो बैल थकै है, कछु कारज कर न सकै है ॥६॥
औ छिन संयोग वियोगा, छिन जीवन छिन मृत्यु रोगा
छिन में धन यौवन जावै, किस विधि जग में सुख पावै ॥७॥
अंबर धन जीवन येहा, गज-करण चपल धन देहा
तन दर्पण छाया जानो, यह बात सभी उर आनौ ॥८॥

तीसरी ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

रोला छंद

अ: यम ले नित आयु, क्यों न धर्म सुनिजै
नयन तिमिर नित हीन, आसन यौवन छीजै ॥
कमला चले नहिं पैंड, मुख ढाकैं परिवारा
देह थकैं बहु पोष, क्यों न लखै संसारा ॥१॥
छिन नहिं छोड़े काल, जो पाताल सिधारै
वसे उदधि के बीच, जो बहु दूर पधारै ॥
गण-सुर राखै तोहि, राखै उदधि-मथैया
तोहु तजै नहिं काल, दीप पतंग ज्यों पड़िया ॥२॥
घर गौ सोना दान, मणि औषधि सब यों ही
यंत्र मंत्र कर तंत्र, काल मिटै नहिं क्यों ही ॥
नरक तनो दुख भूर, जो तू जीव सम्हारे
तो न रुचै आहार, अब सब परिग्रह डारैं ॥३॥
चेतन गर्भ मंझार, वसिके अति दुख पायो
बालपने को ख्याल, सब जग प्रगटहि गायो ॥
छिन में तन को सोच, छिन में विरह सतावै
छिन में इष्ट वियोग, तरुण कौन सुख पावैं ॥४॥

चौथी ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

अडिल्ल छंद

जरापने जो दुख सहे, सुन भाई रे
सो क्यों भूले तोहि, चेत सुन भाई रे
जो तू विषयों से लगा, सुन भाई रे
आतम सुधि नहिं तोहि, चेत सुन भाई रे ॥१॥
झूठ वचन अघ ऊपजै, सुन भाई रे
गर्भ बसो नवमास, चेत सुन भाई रे
सम धातु लहि पाप से, सुन भाई रे
अबहू पाप रताय, चेत सुन भाई रे ॥२॥
नहीं जरा गदआय है, सुन भाई रे
कहाँ गये यम यक्ष वे, सुन भाई रे
जे निश्चिन्तित हो रह्यो, सुन भाई रे
सो सब देख प्रत्यक्ष, चेत सुन भाई रे ॥३॥
टुक सुख को भवदधि पड़े, सुन भाई रे
पाप लहर दुखदाय, चेत सुन भाई रे
पकड़ो धर्म जहाज को, सुन भाई रे
सुख से पार करेय, सुन भाई रे ॥४॥
ठीक रहे धन सास्वतो, सुन भाई रे
होय न रोग न काल, चेत सुन भाई रे
उतम धर्म न छोड़िये, सुन भाई रे
धर्म कथित जिन धार, चेत सुन भाई रे ॥५॥
डरपत जो परलोक से, सुन भाई रे
चाहत शिव सुखसार, चेत सुन भाई रे
क्रोध लोभ विषयन तजो, सुन भाई रे
कोटि कटै अघजाल, चेत सुन भाई रे ॥६॥
ढील न कर आरम्भ तजो, सुन भाई रे
आरम्भ में जिय घात, चेत सुन भाई रे
जीवघात से अघ बढें, सुन भाई रे
अघ से नरक लहात, चेत सुन भाई रे ॥७॥
नरक आदि त्रैलोक्य में, सुन भाई रे
ये परभव दुख राशि, चेत सुन भाई रे

सो सब पूरब पाप से, सुन भाई रे
सबहि सहै बहु त्रास, चेत सुन भाई रे ॥८॥

पाँचवीं ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥ टेक ॥
तिहूँ जग में सुर आदि दे जी, सो सुख दुर्लभ सार,
सुन्दरता मन-मोहनी जी, सो है धर्म विचार
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥१॥
थिरता यश सुख धर्म से जी, पावत रत्न भंडार,
धर्म बिना प्राणी लहै जी, दु:ख अनेक प्रकार
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥२॥
दान धर्म ते सुर लहै जी, नरक लहै कर पाप,
इह विधि नर जो क्यों पड़े जी, नरक विषैं तू आप
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥३॥
धर्म करत शोभा लहै जी, हय गय रथ वर साज,
प्रासुक दान प्रभाव ते जी, घर आवे मुनिराज
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥४॥
नवल सुभग मन मोहनाजी, पूजनीक जग मांहि,
रूप मधुर बच धर्म से जी, दुख कोई व्यापै नाहिं
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥५॥
परमारथ यह बात है जी, मुनि को समता सार,
विनय मूल विद्यातनी जी, धर्म दया सरदार
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥६॥
फिर सुन करुणा धर्ममय जी, गुरु कहिये निर्ग्रन्थ,
देव अठारह दोष बिन जी, यह श्रद्धा शिव-पंथ
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥७॥
बिन धन घर शोभा नहीं जी, दान बिना पुनि गेह,
जैसे विषयी तापसी जी, धर्म दिया बिन नेह
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ॥८॥

छठवीं ढाल - [छहढाला-द्यानतरायजी]

दोहा

भोंदू धनहित अघ करे, अघ से धन नहिं होय

धरम करत धन पाइये, मन वच जानो सोय ॥१॥
मत जिय सोचे चिंतवै, होनहार सो होय
जो अक्षर विधना लिखे, ताहि न मेटे कोय ॥२॥
यद्यपि द्रव्य की चाह में, पैठै सागर मांहि
शैल चढ़े वश लाभ के, अधिको पावै नाहिं ॥३॥
रात-दिवस चिंता चिता, मांहि जले मत जीव
जो दीना सो पायगा, अधिक न मिलै सदीव ॥४॥
लागि धर्म जिन पूजिये, सत्य कहैं सब कोय
चित प्रभु चरण लगाइये, मनवांछित फल होय ॥५॥
वह गुरु हों मम संयमी, देव जैन हो सार
साधर्मी संगति मिलो, जब लों हो भव पार ॥६॥
शिव मारग जिन भाषियो, किंचित जानो सोय
अंत समाधी मरण करि,चहुँगति दुख क्षय होय ॥७॥
षट्विधि सम्यक् जो कहै, जिनवानी रुचि जास
सो धन सों धनवान है, जन में जीवन तास ॥८॥
सरधा हेतु हृदय धरै, पढ़ै सुनै दे कान
पाप कर्म सब नाश के, पावै पद निर्वाण ॥९॥
हित सों अर्थ बताइयो, सुथिर बिहारी दास
सत्रहसौ अठ्ठानवे, तेरस कार्तिक मास ॥१०॥
क्षय-उपशम बलसों कहै, द्यानत अक्षर येह
देख सुबोध पचासका, बुधिजन शुद्ध करेहु ॥११॥
त्रेपन क्रिया जो आदरै, मुनिगण विंशत आठ
हृदय धरैं अति चाव सो, जारैं वसु विधि काठ ॥१२॥
ज्ञानवान जैनी सबै, बसैं आगरे मांहि
साधर्मी संगति मिले, कोई मूरख नाहिं ॥१३॥

श्री-गोम्टेश्वर-स्तुति

विसट्ट कंदोट्ट दलाणुयारं, सुलोयणं चंद समाण तुण्डं
घोणाजियं चम्पय पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥१॥

अन्वयार्थ : [**सुलोयणं**] जिनके उत्तम नेत्र [**कंदोट्ट**] नील कमल के [**दलाणुयारं**] पत्र (पंखुड़ी) के अनुशरण को [**विसट्ट**] छोड़ने वाले अर्थात उससे भी सुन्दर हैं, [**तुण्डं**] मुख [**चंद-समाण**] चन्द्रमा के समान सौम्य तथा [**घोणा**] नासिका [**चम्पय पुप्फसोहं**] चम्पक पुष्प की शोभा को [**जियं**] जीतती है (पराजित करती है), [**तं**] उन [**गोम्मटेसं**] गोम्मट स्वामी को [**णिच्चं**] (मैं) नित्य [**पणमामि**] प्रणाम करता हूँ ॥१॥

अच्छाय-सच्छं जलकंत गंडं, आबाहु दोलंत सुकण्ण पासं
गइंद-सुण्डुज्जल बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥२॥

अन्वयार्थ : [**जलकंत गंडं**] जल के समान स्वच्छ कपोल [**सुकण्ण पासं**] कर्णपाश [**आबाहु दोलंत**] कंधो तक दोलयित हैं, [**बाहुदण्डं**] दोनों भुजाएँ [**गइंद-सुण्डुज्जल**] गजराज की सूंड के समान सुन्दर लम्बी हैं, [**तं**] उन [**अच्छाय-सच्छं**] आकाश के समान निर्मल [**गोम्मटेसं**] गोम्मट स्वामी को [**णिच्चं**] (मैं) नित्य [**पणमामि**] प्रणाम करता हूँ ॥२॥

सुकण्ठ-सोहा जियदिव्व संखं, हिमालयुद्दाम विसाल कंधं
सुपेक्ख णिज्जायल सुट्ठुमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥३॥

अन्वयार्थ : [**सुकण्ठ-सोहा**] अद्वितीय कंठ की शोभा से जिन्होंने [**दिव्व संखं**] दिव्य (अनुपम) शंख की शोभा को [**जिय**] जीत लिया है, [**यस्य कंधं**] जिनका वक्ष स्थल [**हिमालयुद्दाम**] हिमालय की भाँति उन्नत [**च**] और [**विसाल**] विशाल है, [**यस्य**] जिनका [**सुट्ठुमज्झं**] सुन्दर मध्यभाग/ कटिप्रदेश [**सुपेक्ख णिज्जायल**] सम्यक् अवलोकनीय और अचल है, [**तं**] उन [**गोम्मटेसं**] गोम्मट स्वामी को [**णिच्चं**] (मैं) नित्य [**पणमामि**] प्रणाम करता हूँ ॥३॥

विज्झाय लग्गे पविभासमाणं, सिहामणि सव्व-सुचेदियाणं
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥४॥

अन्वयार्थ : [**विज्झाय लग्गे**] विंध्यगिरी के अग्रभाग में [**पविभासमाणं**] जो प्रकाशमान हो रहे हैं, [**सव्व-सुचेदियाणं**] सभी सुन्दर चैत्यों के [**सिहामणि**] शिखामणि तथा [**तिलोय-संतोसय**] तीन लोक के जीवों को आनंद देने में [**पुण्णचंदं**] जो पूर्ण चन्द्रमा हैं, [**तं**] उन [**गोम्मटेसं**] गोम्मट स्वामी को [**णिच्चं**] (मैं) नित्य [**पणमामि**] प्रणाम करता हूँ ॥४॥

लया-समक्कंत-महासरीरं, भव्वावलीलद्ध सुकप्परुक्खं
देविंदविंदच्चिय पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥५॥

अन्वयार्थ : [**लया-समक्कंत**] लताओं से आक्रांत (जिनका) [**महासरीरं**] विशाल शरीर है, [**भव्वावलीलद्ध**] जो भव्य समूह के लिए प्राप्त [**सुकप्परुक्खं**] कल्पवृक्ष के समान है तथा [**देविंदविंदच्चिय**] देवेंद्रों के द्वारा अर्चित जिनके [**पायपोम्मं**] पाद-पद्म (चरण कमल) हैं, [**तं**] उन [**गोम्मटेसं**] गोम्मट स्वामी को [**णिच्चं**] (मैं) नित्य [**पणमामि**] प्रणाम करता हूँ ॥५॥

दियंबरो जो ण भीइ जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥६॥

अन्वयार्थ : [**दियंबरो जो**] जो दिगंबर हैं, [**च**] और [**ण भीइ जुत्तो**] भययुक्त नहीं हैं अर्थात निर्भय हैं, [**ण च अंबरे**] और न वस्त्रादि में [**सत्तमणो**] आसक्त मन वाले हैं [**विसुद्धो**] विशुद्ध हैं, [**सप्पादि जंतुप्फुसदो**] सर्पादि जंतुओं से स्पर्श होने पर भी [**ण कंपो**] कम्पायमान नहीं हैं अर्थात अडोल-अकम्प हैं, [**तं**] उन [**गोम्मटेसं**] गोम्मट स्वामी को [**णिच्चं**] (मैं) नित्य [**पणमामि**] प्रणाम करता हूँ ॥६॥

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिट्ठी, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं
विराय भावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥७॥

अन्वयार्थ : [**जो सच्छदिट्ठी**] जो स्वच्छ (सम) दृष्टि होने से [**आसां**] आशा तृष्णा को [**ण पोक्खदि**] पुष्ट नहीं करते [**हयदोसमूलं**] दोषों का मूल (मोह) नाश करने में [**सोक्खे**] जिनकी सुख में [**ण वंछा**] वांछा नहीं और [**विराय भावं**] विराग भाव होने से [**भरहे**] भरत में [**विसल्लं**] जो निशल्य हैं, [**तं**] उन [**गोम्मटेसं**] गोम्मट स्वामी को [**णिच्चं**] (मैं) नित्य [**पणमामि**] प्रणाम करता हूँ ॥७॥

उपाहि मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय-मोह-हारयं
वस्सेय पज्जंतमुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥८॥

अन्वयार्थ : [**उपाहि मुत्तं**] जो उपाधि से रहित हैं, [**धण-धाम**] धन मकान आदि से [**वज्जियं**] रहित हैं, [**सुसम्मजुत्तं**] समता भाव सहित हैं तथा [**मय-मोह-हारयं**] मद मोह को हरने (नष्ट करने) वाले हैं, [**वस्सेय पज्जंतं**] एक वर्ष पर्यन्त [**उववास-जुत्तं**] उपवास धारण करने वाले, [**तं**] उन [**गोम्मटेसं**] गोम्मट स्वामी को [**णिच्चं**] (मैं) नित्य [**पणमामि**] प्रणाम करता हूँ ॥८॥

सहस्रनाम-स्तोत्र

श्री भगवज्जिनसहस्रनाम श्री बृहदादिशतम्।

अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासन:। सुरुप: सुभगस्त्यागी समयज्ञ समाहित:॥ ६॥

अर्थ - (७४३) यथार्थ का बोध करानेवाली वाणी होनेसे अथवा निर्दोष, सफल, लक्ष्य तक पहुंचानेवाली वाणी होनेसे "अमोघवाक" (७४४) कभी व्यर्थ ना होनेवाली आज्ञा होनेसे "अमोघाज्ञ" (७४५) मलरहित होनेसे "निर्मल" (७४६) कभी व्यर्थ ना होनेवाला अर्थात अंतिम लक्ष्य "मोक्ष" तक ले जाने वाला आपका शासन होनेसे "अमोघशासन" (७४७) आप का रुप सौख्यदायी, आनंदकारी, कल्याणप्रद होनेसे "सुरुप" (७४८) शुभंकर होनेसे अथवा ज्ञान का अतिशय माहात्म्य होनेसे "सुभग" (७४९) आपके पादमूल मे समस्त जीव प्राण का अभय तथा ज्ञान पाते है, अर्थात आप अभयदान तथा ज्ञानदान करनेसे आप को "त्यागी" भि कहा जाता है; (७५०) समय अर्थात आत्मा का और समय अर्थात काल का यथार्थ सकल् ज्ञान होनेसे "समयज्ञ" (७५१) अपने ज्ञान से समस्त जीवोके जीवन के सदैव वर्तमान रहनेसे अथवा सर्वसमावेशक होनेसे अथवा समस्त प्राणीयोंका समान हित चाहनेसे "समाहित" भी आपको हि कहा जाता है।

सुस्थित" स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो निरजस्को निरुध्दव:। अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृह: ॥७॥

अर्थ - (७५२) अनंत सुख के धारी अथवा निश्चल रहनेसे आप सदैव "सुस्थित" हो (७५३) आप स्वयंकि, आत्माकि हि निश्चलता को सेवन करते हो, आपको संसारी भोजन कि आवश्यकता नही इसलिये "स्वास्थ्यभाक्" (७५४) स्व मे स्थित हो इसलिये अथवा आपको कोई रोग, व्याधी नही होती इसलिये "स्वस्थ" (७५५) कर्म रज रहित होनेसे अथवा घातिकर्म को नही धारण करनेसे "निरजस्क" (७५६) आपने सब कर्म तथा कषायोंको निरुध्द किया, उनपर अंकुश रखा है, इसलिये अथवा आपका कोई स्वामी ना होनेसे "निरुध्दव" (७५७) आपके आत्मा पर कोई लेप नही, सब कर्म झड गये है, आप "अलेप" हो (७५८) आपके आत्मा पर कोई कलुष नही है, वह निर्मल शुध्द, परमशुक्ल है, इसलिये "निष्कलंकात्मा" (७५९) आपके रागादि अठारह दोषरहित है, इसलिये "वीतराग" है; (७६०) आपकी सारी इच्छाए, कांक्षाए खत्म हो गयी है, अर्थात आप इच्छारहित है इसलिये "गतस्पृह" नामसे भि पुज्य है।

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा नि:सपत्नो जितेन्द्रिय: । प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मंगलं मलहानघ:॥ ८॥

अर्थ - (७६१) इन्द्रियोंके वश करनेसे "वश्येन्द्रिय" (७६२) संसार बन्धनसे आपकि आत्मा होनेसे "विमुक्तात्मा" (७६३) आपके अब कोई शत्रु नही है, अथवा दुष्ट भाव से रहित निष्कंटक होकर "नि:सपत्न" (७६४) इन्द्रियोंको जितकर "जितेन्द्रिय" (७६५) शान्त होनेसे अथवा रागद्वेष समाप्त होनेसे "प्रशांत" (७६६) आपके ज्ञान का तेज अनन्त होनेसे अथवा अनंतवीर्यधारी आप भी तेज:पुंज होनेसे आपको "अनंतधामर्षि" (७६७) पाप को गलानेवाले होनेसे (मं +गल्) तथा शुभ लाने वाले होनेसे "मंगल" (७६८) पाप मल को दूर करनेवाले होनेसे "मलह" तथा (७६९) पाप रहीत होनेसे "अनघ" भी कहलाते हो।

अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्देवमगोचर: । अमूर्तो मुर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥ ९॥

अर्थ -(७७०) आपके समान कोई और कही नही दिखता इसलिये "अनिदृक" (७७१) आपके लिये अब कोई और उपमा नही रह गयी है अथवा सबके लिये उपमा के योग्य होनेसे "उपमाभूत" (७७२) देनेवाले अथवा दातार होनेसे, शुभाशुभदाता होनेसे "दिष्टी" (७७३) प्रबल होनेसे या स्तुति के योग्य होनेसे या स्वयं प्रकाशित होनेसे "दैव" (७७४) इन्द्रियो के ज्ञान मे ना आनेसे "अगोचर" (७७५) शरीर रहितता के कारण अथवा मात्र भावोंका और भक्ति का विषय होनेसे "अमूर्त" (७७६) पुरुषाकार होनेसे अथवा निश्चल रुप होनेसे "मुर्तीमान" है (७७७) अद्वितीय होनेसे अथवा एक आत्मस्वरुप होनेसे "एक" ; (७७८) अनेक रुपोंसे भव्य जीवोंके सहायक होनेसे "अनेक" तथा (७७९) आत्मा के अलावा किसी भि और तत्त्व पर दृष्टी ना रखनेसे अथवा अन्य तत्त्वोमे रुची ना होनेसे "नानैकतत्त्वदृक" भी आप कहलाये जाते है।

अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दित:। सर्वत्रग: सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक्॥ १०॥

अर्थ - (७८०) आपको केवल अध्यात्म के द्वारा हि जाना जा सकता है, इसलिये "अध्यात्मगम्य" (७८१) संसारी जीवोंको आपका यथार्थ स्वरुप समझना अशक्य है, इसलिये "अगम्यात्मा" (७८२) योग के सर्वोच्च ज्ञानी होनेसे "योगविद्" (७८३) योगीयोंद्वारा अर्थात मोक्षमार्ग पर साधना करनेवाले गणधरादि मुनियोके वंदनीय होनेसे "योगीवन्दित" भी आप कहे जाते है; (७८४) आप केवल ज्ञान द्वारा सम्पुर्ण लोकमे व्याप्त है अर्थात ज्ञान के द्वारा सर्वत्र पहुंच सकते है, इसलिये "सर्वत्रग" (७८५) सदैव विद्यमान रहनेसे अथवा सद्भावयुक्त हि होनेसे अथवा किसी भि सत्ता का अभाव होनेसे "सदाभावी" (७८६) त्रिकाल संबंधी समस्त पदार्थ कि समस्त पर्यायोंके देखने "त्रिकालविषयार्थदृक" कहलाते हो।

शंकर: शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायण: । अधिप: परमानन्द: परात्मज्ञ: परात्पर: ॥११॥

अर्थ- आपको (७८७) सबको वरदान (मोक्षमार्गका) देनेवाले अथवा संसारदाह का शमन करनेवाले होनेसे "शंकर" (७८८) यथार्थ सुखके वक्ता, व्याख्याता होनेसे "शंवद" (७८९) मन को वश करनेवाले होनेसे "दान्त" (७९०) इन्द्रियोको, कर्मोंको दमन् करनेवाले "दमी" (७९१) क्षमा करने मे तत्पर तथा क्षमा भाव हि सदैव धारण करनेसे "क्षान्तिपरायण" (७९२) जगत के अधिपति होनेसे अथवा जगत् पर आपका हि शासन चलनेसे "अधिप" (७९३) आत्मामे रममाण होनेका आनंद सदैवहि लेनेसे अथवा अनंतसुख के धारी होनेसे "परमानंद" (७९४) निज और पर के ज्ञाता होनेसे अथवा विशुध्द आत्मा के यथार्थ स्वरुप् को जाननेसे "परात्मज्ञ" (७९५) तथा श्रेष्ठोंमे श्रेष्ठ होनेसे "परात्पर" कहा जाता है।

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदय्: । त्रिजगत्पतिप्पुज्याङिघ्रस्त्रिलोकाग्रशिखामणि:॥१२॥

अर्थ - (७९६) तिनो लोक मे आप प्रिय हो इसलिये "त्रिजगद्वल्लभ" हो; (७९७) सबके पूज्य तथा

प्रथम या अग्रार्चना योग्य होनेसे "अभ्यर्च्य" (७९८) तीनो लोकोंका मंगल करनेवाले "त्रिजगन्मंगलोदय" (७९९) आपके चरणद्वय तिनो लोकोके इन्द्रोद्वारा पूज्य है, इसलिये "त्रिजगत्पति पूज्याङ्घ्रि" और (८००) आप तिनोलोक के अग्र मे एक् शिखामणिके समान विराजित होनेसे "त्रिलोकाग्रशिखामणी" भि कहलाते है।

इति बृहदादिशतम्॥ अथ श्री त्रिकालदर्श्यादिशतम्।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रत:। सर्वलोकातिग: पूज्य: सर्वलोकैकसारधि:॥ १॥

अर्थ- आपको (८०१) भूत-भविष्य-वर्तमान को प्रत्यक्ष और एक साथ देखनेसे "त्रिकालदर्शी" ; (८०२) तिनो लोक के प्रभु होनेसे "लोकेश" (८०३) समस्त प्राणियोंके रक्षक होनेसे "लोकधाता" (८०४) स्वीकृत चारित्र्य को निश्चल रखनेसे सम्यक रखनेसे अथवा पंचमहाव्रतोंका दृढता से पालन करनेसे "दृढव्रत" भि कहा जाता है। (८०५) प्राणीयोंमेभी आप तिनो लोकोंए श्रेष्ठ होनेसे आप "त्रिलोकातिग" ; (८०६) पूजा के योग्य होनेसे "पूज्य" (८०७) समस्त प्राणीयोंको, भव्य जनोको मुख्यत: मोक्षमार्ग का स्वरुप उपदेश करनेसे "सर्वलोकैकसारधि" भि कहे जाते हो।

पुराण: पुरुष: पुर्व: कृतपुर्वागविस्तर:। आदिदेव: पुराणाद्य :पुरुदेवोऽधिदेवता॥ २॥

अर्थ - (८०८) सबसे प्राचीन होकर मुक्तीपर्यंत शरीर मे विश्राम करनेसे "पुराण" (८०९) विश्वात्मक होनेसे या निराकार होनेसे अथवा सबसे बडे होनेसे अथवा समवशरण कि लक्ष्मी ने वरण किया हो, इसलिये "पुरुष" (८१०) सबसे अग्रीम होनेसे अथवा सबसे ज्येष्ठ होनेसे "पुर्व" (८११) ग्यारह अंग, चौदह पुर्व का विस्तार का उत्कृष्ट निरुपण करनेसे " कृतपुर्वांगविस्तर" (८१२) सब देवोमे मुख्य, प्रथम होनेसे "आदिदेव" (८१३) सब पुराणोमे प्रथम होनेसे "पुराणाद्य" (८१४) इन्द्रादि देवोंसे मुख्यत: आराधित होनेसे अथवा सबके ईश्वर होनेसे "पुरुदेव" और (८१५) देवो के देव अथवा देवोंके अधिष्ठाता देव होनेसे "अधिदेवता" ईन् नामोसेभी आपको पुकारा जाता है।

अन्वयार्थ : श्री भगवज्जिनसहस्रनाम श्री बृहदादिशतम्। अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासन:। सुरुप: सुभगस्त्यागी समयज्ञ समाहित:॥ ६॥ अर्थ - (७४३) यथार्थ का बोध करानेवाली वाणी होनेसे अथवा निर्दोष, सफल, लक्ष्य तक पहुंचानेवाली वाणी होनेसे "अमोघवाक" (७४४) कभी व्यर्थ ना होनेवाली आज्ञा होनेसे "अमोघाज्ञ" (७४५) मलरहित होनेसे "निर्मल" (७४६) कभी व्यर्थ ना होनेवाला अर्थात अंतिम लक्ष्य "मोक्ष" तक ले जाने वाला आपका शासन होनेसे "अमोघशासन" (७४७) आप का रुप सौख्यदायी, आनंदकारी, कल्याणप्रद होनेसे "सुरुप" (७४८) शुभंकर होनेसे अथवा ज्ञान का अतिशय माहात्म्य होनेसे "सुभग" (७४९) आपके पादमूल मे समस्त जीव प्राण का अभय तथा ज्ञान पाते है, अर्थात आप अभयदान तथा ज्ञानदान करनेसे आप को "त्यागी" भि कहा जाता है; (७५०) समय अर्थात आत्मा का और समय अर्थात काल का यथार्थ सकल् ज्ञान होनेसे "समयज्ञ" (७५१) अपने ज्ञान से समस्त जीवोके जीवन के सदैव वर्तमान रहनेसे अथवा सर्वसमावेशक होनेसे अथवा समस्त प्राणीयोंका समान हित चाहनेसे "समाहित" भी आपको हि कहा जाता है। सुस्थित" स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो निरजस्को निरुध्दव:। अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृह: ॥७॥ अर्थ - (७५२) अनंत सुख के धारी अथवा निश्चल रहनेसे आप सदैव "सुस्थित" हो (७५३) आप स्वयंकि, आत्माकि हि निश्चलता को सेवन करते हो, आपको संसारी भोजन कि आवश्यकता नही इसलिये "स्वास्थ्यभाक्" (७५४) स्व मे स्थित हो इसलिये अथवा आपको कोई रोग, व्याधी नही होती इसलिये "स्वस्थ" (७५५) कर्म रज रहित होनेसे अथवा घातिकर्म को नही धारण करनेसे "निरजस्क" (७५६) आपने सब कर्म तथा कषायोंको निरुध्द किया, उनपर अंकुश रखा है, इसलिये अथवा आपका कोई स्वामी ना होनेसे "निरुध्दव" (७५७) आपके आत्मा पर कोई लेप नही, सब कर्म झड गये है, आप "अलेप" हो (७५८) आपके आत्मा पर कोई कलुष नही है, वह निर्मल शुध्द, परमशुक्ल है, इसलिये "निष्कलंकात्मा" (७५९) आपके रागादि अठारह दोषरहित है, इसलिये "वीतराग" है; (७६०) आपकी सारी इच्छाए, कांक्षाए खत्म हो गयी है, अर्थात आप इच्छारहित है इसलिये "गतस्पृह" नामसे भि पुज्य है। वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा नि:सपत्नो जितेन्द्रिय: । प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मंगलं मलहानघ:॥ ८॥ अर्थ - (७६१) इन्द्रियोंके वश करनेसे

"वश्येन्द्रिय" (७६२) संसार बन्धनसे आपकि आत्मा होनेसे "विमुक्तात्मा" (७६३) आपके अब कोई शत्रु नही है, अथवा दुष्ट भाव से रहित निष्कंटक होकर "नि:सपत्न" (७६४) इन्द्रियोंको जितकर "जितेन्द्रिय" (७६५) शान्त होनेसे अथवा रागद्वेष समाप्त होनेसे "प्रशांत" (७६६) आपके ज्ञान का तेज अनन्त होनेसे अथवा अनंतवीर्यधारी आप भी तेज:पुंज होनेसे आपको "अनंतधामर्षि" (७६७) पाप को गलानेवाले होनेसे (मं +गल्) तथा शुभ लाने वाले होनेसे "मंगल" (७६८) पाप मल को दूर करनेवाले होनेसे "मलह" तथा (७६९) पाप रहीत होनेसे "अनघ" भी कहलाते हो। अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्देवमगोचर: । अमूर्तो मुर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥ ९॥ अर्थ -(७७०) आपके समान कोई और कही नही दिखता इसलिये "अनिदृक" (७७१) आपके लिये अब कोई और उपमा नही रह गयी है अथवा सबके लिये उपमा के योग्य होनेसे "उपमाभूत" (७७२) देनेवाले अथवा दातार होनेसे, शुभाशुभदाता होनेसे "दिष्टी" (७७३) प्रबल होनेसे या स्तुति के योग्य होनेसे या स्वयं प्रकाशित होनेसे "दैव" (७७४) इन्द्रियो के ज्ञान मे ना आनेसे "अगोचर" (७७५) शरीर रहितता के कारण अथवा मात्र भावोंका और भक्ति का विषय होनेसे "अमूर्त" (७७६) पुरुषाकार होनेसे अथवा निश्चल रुप होनेसे "मुर्तीमान" है (७७७) अद्वितीय होनेसे अथवा एक आत्मस्वरुप होनेसे "एक" ; (७७८) अनेक रुपोंसे भव्य जीवोंके सहायक होनेसे "अनेक" तथा (७७९) आत्मा के अलावा किसी भि और तत्त्व पर दृष्टी ना रखनेसे अथवा अन्य तत्त्वोमे रुची ना होनेसे "नानैकतत्त्वदृक" भी आप कहलाये जाते है। अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दित:। सर्वत्रग: सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक्॥ १०॥ अर्थ - (७८०) आपको केवल अध्यात्म के द्वारा हि जाना जा सकता है, इसलिये "अध्यात्मगम्य" (७८१) संसारी जीवोंको आपका यथार्थ स्वरुप समझना अशक्य है, इसलिये "अगम्यात्मा" (७८२) योग के सर्वोच्च ज्ञानी होनेसे "योगविद्" (७८३) योगीयोंद्वारा अर्थात मोक्षमार्ग पर साधना करनेवाले गणधरादि मुनियोके वंदनीय होनेसे "योगीवन्दित" भी आप कहे जाते है; (७८४) आप केवल ज्ञान द्वारा सम्पुर्ण लोकमे व्याप्त है अर्थात ज्ञान के द्वारा सर्वत्र पहुंच सकते है, इसलिये "सर्वत्रग" (७८५) सदैव विद्यमान रहनेसे अथवा सद्भावयुक्त हि होनेसे अथवा किसी भि सत्ता का अभाव होनेसे "सदाभावी" (७८६) त्रिकाल संबंधी समस्त पदार्थ कि समस्त पर्यायोंके देखने "त्रिकालविषयार्थदृक" कहलाते हो। शंकर: शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायण: । अधिप: परमानन्द: परात्मज्ञ: परात्पर: ॥११॥ अर्थ- आपको (७८७) सबको वरदान (मोक्षमार्गका) देनेवाले अथवा संसारदाह का शमन करनेवाले होनेसे "शंकर" (७८८) यथार्थ सुखके वक्ता, व्याख्याता होनेसे "शंवद" (७८९) मन को वश करनेवाले होनेसे "दान्त" (७९०) इन्द्रियोको, कर्मोंको दमन् करनेवाले "दमी" (७९१) क्षमा करने मे तत्पर तथा क्षमा भाव हि सदैव धारण करनेसे "क्षान्तिपरायण" (७९२) जगत के अधिपति होनेसे अथवा जगत् पर आपका हि शासन चलनेसे "अधिप" (७९३) आत्मामे रममाण होनेका आनंद सदैवहि लेनेसे अथवा अनंतसुख के धारी होनेसे "परमानंद" (७९४) निज और पर के ज्ञाता होनेसे अथवा विशुध्द आत्मा के यथार्थ स्वरुप् को जाननेसे "परात्मज्ञ" (७९५) तथा श्रेष्ठोंमे श्रेष्ठ होनेसे "परात्पर" कहा जाता है। त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदय: । त्रिजगत्पतिपुज्याङ्घ्रस्त्रिलोकाग्रशिखामणि:॥१२॥ अर्थ - (७९६) तिनो लोक मे आप प्रिय हो इसलिये "त्रिजगद्वल्लभ" हो; (७९७) सबके पूज्य तथा प्रथम या अग्रार्चना योग्य होनेसे "अभ्यर्च्य" (७९८) तीनो लोकोंका मंगल करनेवाले "त्रिजगन्मंगलोदय" (७९९) आपके चरणद्वय तिनो लोकोके इन्द्रोद्वारा पूज्य है, इसलिये "त्रिजगत्पति पूज्याङ्घ्र" और (८००) आप तिनोलोक के अग्र मे एक् शिखामणिके समान विराजित होनेसे "त्रिलोकाग्रशिखामणी" भि कहलाते है। इति बृहदादिशतम्॥ अथ श्री त्रिकालदर्श्यादिशतम्। त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रत:। सर्वलोकातिग: पूज्य: सर्वलोकैकसारधि:॥ १॥ अर्थ- आपको (८०१) भूत-भविष्य-वर्तमान को प्रत्यक्ष और एक साथ देखनेसे "त्रिकालदर्शी" ; (८०२) तिनो लोक के प्रभु होनेसे "लोकेश" (८०३) समस्त प्राणियोंके रक्षक होनेसे "लोकधाता" (८०४) स्वीकृत चारित्र्य को निश्चल रखनेसे सम्यक रखनेसे अथवा पंचमहाव्रतोंका दृढता से पालन करनेसे "दृढव्रत" भि कहा जाता है। (८०५) प्राणीयोंमेभी आप तिनो लोकोंए श्रेष्ठ होनेसे आप "त्रिलोकातिग" ; (८०६) पूजा के योग्य होनेसे "पूज्य" (८०७) समस्त प्राणीयोंको, भव्य जनोको मुख्यत: मोक्षमार्ग का स्वरुप उपदेश करनेसे "सर्वलोकैकसारधि" भि कहे जाते हो। पुराण: पुरुष: पुर्व: कृतपुर्वागविस्तर:। आदिदेव: पुराणाद्य :पुरुदेवोऽधिदेवता॥ २॥ अर्थ - (८०८) सबसे प्राचीन होकर मुक्तीपर्यंत शरीर मे विश्राम करनेसे "पुराण" (८०९) विश्वात्मक होनेसे या निराकार होनेसे अथवा सबसे बडे होनेसे अथवा समवशरण कि लक्ष्मी ने वरण किया हो, इसलिये "पुरुष" (८१०) सबसे अग्रीम होनेसे अथवा सबसे ज्येष्ठ होनेसे "पुर्व" (८११) ग्यारह अंग, चौदह पुर्व का विस्तार का उत्कृष्ट निरुपण करनेसे " कृतपुर्वांगविस्तर" (८१२) सब देवोमे मुख्य, प्रथम होनेसे "आदिदेव" (८१३) सब पुराणोमे प्रथम होनेसे "पुराणाद्य" (८१४) इन्द्रादि देवोंसे मुख्यत: आराधित होनेसे अथवा सबके ईश्वर होनेसे "पुरुदेव" और (८१५) देवो के देव अथवा देवोंके अधिष्ठाता देव होनेसे "अधिदेवता" ईन् नामोसेभी आपको पुकारा जाता है।

रत्नाकर-पंचविंशतिका

भूपाल-पंचविंशतिका

मूल संस्कृत-काव्य कवि भूपाल 11-12वीं शताब्दी

हिंदी अनुवाद- कविश्री भूधरदास

(दोहा)

सकल सुरासुर-पूज्य नित, सकलसिद्धि-दातार
जिन-पद वंदूँ जोर कर, अशरन-जन-आधार ॥

(चौपाई)

श्री सुख-वास-मही कुलधाम, कीरति-हर्षण-थल अभिराम
सरसुति के रतिमहल महान्, जय-जुवती को खेलन-थान
अरुण वरण वाँछित वरदाय, जगत्-पूज्य ऐसे जिन पाय
दर्शन प्राप्त करे जो कोय, सब शिवनाथ सो जन होय ॥१॥

निर्विकार तुम सोम शरीर, श्रवण सुखद वाणी गम्भीर
तुम आचरण जगत् में सार, सब जीवन को है हितकार
महानिंद भव मारु देश, तहाँ तुंग तरु तुम परमेश
सघन-छाँहि-मंडित छवि देत, तुम पंडित सेवें सुख-हेत ॥२॥

गर्भकूपतें निकस्यो आज, अब लोचन उघरे जिनराज
मेरो जन्म सफल भयो अबै, शिवकारण तुम देखे जबै
जग-जन-नैन-कमल-वनखंड, विकसावन शशि शोक विहंड
आनंदकरन प्रभा तुम तणी, सोई अमी झरन चाँदणी ॥३॥

सब सुरेन्द्र शेखर शुभ रैन, तुम आसन तट माणक ऐन
दोऊँ दुति मिल झलकें जोर, मानों दीपमाल दुहँ ओर
यह संपति अरु यह अनचाह, कहाँ सर्वज्ञानी शिवनाह
ता तें प्रभुता है जगमाँहिं, सही असम है संशय नाहिं ॥४॥

सुरपति आन अखंडित बहै, तृण जिमि राज तज्यो तुम वहै
जिन छिन में जगमहिमा दली, जीत्यो मोहशत्रु महाबली
लोकालोक अनंत अशेख, कीनो अंत ज्ञानसों देख
प्रभु-प्रभाव यह अद्भुत सबै, अवर देव में भूल न फबै ॥५॥

पात्रदान तिन दिन-दिन दियो, तिन चिरकाल महातप कियो
बहुविध पूजाकारक वही, सर्व शील पाले उन सही
और अनेक अमल गुणरास, प्रापति आय भये सब तास
जिन तुम सरधा सों कर टेक ,दृग-वल्लभ देखे छिन एक ॥६॥

त्रिजग-तिलक तुम गुणगण जेह, भवन-भुजंग-विषहर-मणि तेह
जो उर-कानन माँहि सदीव, भूषण कर पहरे भवि-जीव

सोई महामती संसार, सो श्रुतसागर पहुँचे पार
सकल-लोक में शोभा लहैं, महिमा जाग जगत् में वहै ॥७॥

(दोहा)
सुर-समूह ढोरें चमर, चंदकिरण-द्युति जेम
नवतन-वधू-कटाक्षतें, चपल चलैं अति एम
छिन-छिन ढलकें स्वामि पर, सोहत ऐसो भाव
किधौं कहत सिधि-लच्छि सों, जिनपति के ढिंग आव ॥८॥

(चौपाई छन्द १५ मात्रा)
शीश छत्र सिंहासन तलै, दिपै देह दुति चामर ढुरैं
बाजे दुंदुभि बरसैं फूल, ढिंग अशोक वाणी सुखमूल
इहविधि अनुपम शोभा मान, सुर-नर सभा पदमनी भान
लोकनाथ वंदें सिरनाय, सो हम शरण होहु जिनराय ॥९॥

सुर-गजदंत कमल-वन-माँहिं, सुरनारी-गण नाचत जाँहि
बहुविधि बाजे बाजैं थोक, सुन उछाह उपजै तिहुँलोक
हर्षत हरि जै जै उच्चरै, सुमनमाल अपछर कर धरै
यों जन्मादि समय तुम होय, जयो देव देवागम सोय ॥१०॥

तोष बढ़ावन तुम मुखचंद, जन नयनामृत करन अमंद
सुन्दर दुतिकर अधिक उजास, तीन भुवन नहिं उपमा तास
ताहि निरखि सनयन हम भये, लोचन आज सुफल कर लये
देखन-योग जगत् में देख, उमग्यो उर आनंद-विशेष ॥११॥

कैयक यों मानैं मतिमंद, विजित-काम विधि-ईश मुकंद
ये तो हैं वनिता-वश दीन, काम-कटक-जीतन-बलहीन
प्रभु आगैं सुर-कामिनि करैं, ते कटाक्ष सब खाली परैं
यातैं मदन-विध्वंसन वीर, तुम भगवंत और नहिं धीर ॥१२॥

दर्शन-प्रीति हिये जब जगी, तबै आम्र-कोपल बहु लगी
तुम समीप उठ आवन ठयो, तब सों सघन प्रफुल्लित भयो ॥
अबहूँ निज नैनन ढिंग आय, मुख मयंक देख्यो जगराय
मेरो पुन्य विरख इहबार, सुफल फल्यो सब सुखदातार ॥१३॥

(दोहा)

त्रिभुवन-वन में विस्तरी, काम-दावानल जोर
वाणी-वरषाभरण सों, शांति करहु चहुँ ओर
इंद्र मोर नाचै निकट, भक्ति भाव धर मोह
मेघ सघन चौबीस जिन, जैवंते जग होय ॥१४॥

(चौपाई)
भविजन-कुमुदचंद सुखदैन, सुर-नरनाथ प्रमुख-जग जैन
ते तुम देख रमैं इह भाँत, पहुप गेह लह ज्यों अलि पाँत ॥
सिर धर अंजुलि भक्ति समेत, श्रीगृह प्रति परिदक्षण देत
शिवसुख की सी प्रापति भई, चरण छाँहसों भव-तप गई ॥१५॥

वह तुम-पद-नख-दर्पण देव, परम पूज्य सुन्दर स्वयमेव
तामें जो भवि भाग विशाल, आनन अवलोकै चिरकाल
कमला की रति काँति अनूप, धीरज प्रमुख सकल सुखरूप
वे जग मंगल कौन महान्, जो न लहै वह पुरुष प्रधान ॥१६॥

इंद्रादिक श्रीगंगा जेह, उत्पति थान हिमाचल येह
जिन-मुद्रा-मंडित अति-लसै, हर्ष होय देखे दुःख नसै
शिखर ध्वजागण सोहैं एम, धर्म सुतरुवर पल्लव जेम
यों अनेक उपमा-आधार, जयो जिनेश जिनालय सार ॥१७॥

शीस नवाय नमत सुरनार, केश-कांति-मिश्रित मनहार
नख-उद्योत-वरतैं जिनराज, दशदिश-पूरित किरण-समाज
स्वर्ग-नाग-नर नायक संग, पूजत पाय-पद्म अतुलंग
दुष्ट कर्मदल दलन सुजान, जैवंतो वरतो भगवान् ॥१८॥

सो कर जागै जो धीमान, पंडित सुधी सुमुख गुणगान
आपन मंगल-हेत प्रशस्त, अवलोकन चाहैं कछु वस्त ॥
और वस्तु देखें किस काज, जो तुम मुख राजै जिनराज
तीन-लोक को मंगल-थान, प्रेक्षणीय तिहुँ जग-कल्यान ॥१९॥

धर्मोदय तापस-गृह कीर, काव्यबंध वन पिक तुम वीर
मोक्ष-मल्लिका मधुप रसाल, पुन्यकथा कज सरसि मराल
तुम जिनदेव सुगुण मणिमाल, सर्व-हितंकर दीनदयाल
ताको कौन न उन्नतकाय, धरै किरीट-मांहि हर्षाय ॥२०॥

केई वाँछैं शिवपुर-वास, केई करैं स्वर्ग सुख आस
पचै पंचानल आदिक ठान, दु:ख बँधै जस बँधै अयान
हम श्रीमुख-वानी अनुभवैं, सरधा पूरव हिरदै ठवैं
तिस प्रभाव आनंदित रहैं, स्वर्गादि सुख सहजे लहैं ॥२१॥

न्होन महोच्छव इन्द्रन कियो, सुरतिय मिल मंगल पढ़ लियो
सुयश शरद-चंद्रोपम सेत, सो गंधर्व गान कर लेत ॥
और भक्ति जो जो जिस जोग, शेष सुरन कीनी सुनियोग
अब प्रभु करैं कौन-सी सेव, हम चित भयो हिंडोला एव ॥२२॥

जिनवर-जन्मकल्यानक द्योस, इंद्र आप नाचै खो होस
पुलकित अंग पिता-घर आय, नाचत विधि में महिमा पाय
अमरी बीन बजावै सार, धरी कुचाग्र करत झँकार
इहिविधि कौतुक देख्यो जबै, औसर कौन कह सकै अबै ॥२३॥

श्रीपति-बिंब मनोहर एम, विकसत वदन कमलदल जेम
ताहि हेर हरखे दृग दोय, कह न सकूँ इतनो सुख होय
तब सुर-संग कल्यानक-काल, प्रगटरूप जावै जगपाल
इकटक दृष्टि एक चितलाय, वह आनंद कहा क्यों जाय ॥२४॥

देख्यो देव रसायन-धाम, देख्यो नव-निधि को विसराम
चिंतारयन सिद्धिरस अबै, जिनगृह देखत देखे सबै
अथवा इन देखे कछु नाहिं, यम अनुगामी फल जगमाँहिं
स्वामी सरयो अपूरव काज, मुक्ति समीप भई मुझ आज ॥25॥

विनवै भूपाल नरेश, देखे जिनवर हरन कलेश
नेत्र कमल विकसे जगचंद्र, चतुर चकोर करण आनंद
थुति जल सोंयों पावन भयो, पाप-ताप मेरो मिट गयो
मो चित है तुम चरणन-माहिं, फिर दर्शन हूज्यो अब जाहिं ॥२६॥

(छप्पय छन्द)
इहिविधि बुद्धिविशाल राय भूपाल महाकवि
कियो ललित-थुति-पाठ हिये सब समझ सकै नवि
टीका के अनुसार अर्थ कछु मन में आयो
कहीं शब्द कहिं भाव जोड़ भाषा जस गायो

आतम पवित्र-कारण किमपि, बाल-ख्याल सो जानियो
लीज्यो सुधार 'भूधर' तणी, यह विनती बुध मानियो ॥२७॥

पहली-ढाल

रचयिता : पं दौलतरामजी

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता
शिवस्वरुप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं ॥१॥

अन्वयार्थ : [**तीन भुवन में**] तीन लोक में [**सार**] उत्तम वस्तु [**शिवस्वरूप**] आनन्द-स्वरूप (और) [**शिवकार**] मोक्ष के कारण [**वीतराग**] राग-द्वेष रहित [**विज्ञानता**] केवलज्ञान को [**त्रियोग**] तीन योग को [**सम्हारिकैं**] सम्हाल कर [**नमहुं**] नमस्कार करता हूं ।

जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहें दुःखतै भयवंत
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥१॥

अन्वयार्थ : [**त्रिभुवन में**] तीनों लोकों में [**जे**] जो [**अनन्त**] अनन्त [**जीव**] प्राणी (हैं वे) [**सुख**] सुख की [**चाहैं**] इच्छा करते हैं और [**दुखतैं**] दुःख से [**भयवन्त**] डरते हैं [**तातैं**] इसलिये [**गुरू**] आचार्य [**करूणा**] दया [**धार**] करके [**दुःखहारी**] दुःख का नाश करनेवाली और [**सुखकार**] सुख को देनेवाली [**सीख**] शिक्षा [**कहैं**] कहते हैं ।

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥२॥

अन्वयार्थ : [**भवि**] हे भव्यजीवों ! [**जो**] यदि [**अपनो**] अपना [**कल्यान**] हित [**चाहो**] चाहते हो (तो) [**ताहि**] गुरू की वह शिक्षा [**मन**] मन को [**थिर**] स्थिर [**आन**] करके [**सुनो**] सुनो (कि इस संसार में प्रत्येक प्राणी) [**अनादि**] अनादिकाल से [**मोह महामद**] मोहरूपी महामदिरा [**पिया**] पीकर, [**आपको**] अपने आत्मा को [**भूल**] भूलकर [**वादि**] व्यर्थ [**भरमत**] भटक रहा है ।

तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कुछ कहूँ कही मुनि यथा
काल अनंत निगोद मंझार, बीत्यो एकेंद्री तन धार ॥३॥

अन्वयार्थ : [**तास**] उस संसार में [**भ्रमन की**] भटकने की [**कथा**] कथा [**बहु**] बड़ी [**है**] है [**पै**] तथापि [**यथा**] जैसी [**मुनि**] पूर्वाचार्यों ने [**कही**] कहीं है (तदनुसार मैं भी) [**कछु**] थोड़ी-सी [**कहूं**] कहता हूं (कि इस जीव का) [**निगोद मझार**] निगोद में [**एकेन्द्री**] एकेन्द्रिय जीव के [**तन**] शरीर [**धार**] धारण करके [**अनंत**] अनंत [**काल**] काल [**वीत्यो**] व्यतीत हुआ है ।

एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्यो भर्यो दुखभार
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥४॥

अन्वयार्थ : (निगोद में यह जीव) **[एक श्वास में]** एक सांस में **[अठदस बार]** अठारह बार **[जन्म्यो]** जनमा और **[मरयो]** मरा (तथा) **[दुखभार]** दुःखों के समूह **[भरयो]** सहन किये (और वहां से) **[निकसि]** निकलकर **[भूमि]** पृथ्वीकायिक, **[जल]** जलकायिक, **[पावक]** अग्निकायिक **[भयो]** हुआ तथा **[पवन]** वायुकायिक (और) **[प्रत्येक वनस्पति]** प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव **[थयो]** हुआ ।

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर धर मर्यो सही बहु पीर ॥५॥

अन्वयार्थ : **[ज्यों]** जिसप्रकार **[चिन्तामणि]** चिन्तामणि-रत्न **[दुर्लभ]** कठिनाई से **[लहि]** प्राप्त होता है **[त्यों]** उसीप्रकार **[त्रसतणी]** त्रस-पर्याय (बड़ी कठिनाई से) **[लहि]** प्राप्त हुई । (वहां भी) **[लट]** इल्ली **[पिपील]** चींटी **[अलि]** भंवरा **[आदि]** इत्यादि के **[शरीर]** शरीर **[धर धर]** बारम्बार धारण करके **[मरयो]** मरण को प्राप्त हुआ (और) **[बहु पीर]** अत्यन्त पीड़ा **[सही]** सहन की ।

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥६॥

अन्वयार्थ : (यह जीव) **[कबहूं]** कभी **[पंचेन्द्रिय]** पंचेन्द्रिय **[पशु]** तिर्यंच **[भयो]** हुआ (तो) **[मन बिन]** मन के बिना **[निपट]** अत्यंत **[अज्ञानी]** मूर्ख **[थयो]** हुआ (और) **[सैनी]** संज्ञी (भी) **[ह्वै]** हुआ (तो) **[सिंहादिक]** सिंह आदि **[क्रूर]** क्रूर जीव **[ह्वै]** होकर **[निबल]** अपने से निर्बल, **[भूर]** अनेक **[पशु]** तिर्यंच **[हति]** मार-मारकर **[खाये]** खाये ।

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन, हिम, आतप त्रास ॥७॥

अन्वयार्थ : (यह जीव तिर्यंच गति में) **[कबहूं]** कभी **[आप]** स्वयं **[बलहीन]** निर्बल **[भयो]** हुआ (तो) **[अतिदीन]** असमर्थ होने से **[सबलनि करि]** अपने से बलवान प्राणियों द्वारा **[खायो]** खाना गया (और) **[छेदन]** छेदा जाना, **[भेदन]** भेदा जाना, **[भूख]** भूख **[पियास]** प्यास, **[भार-वहन]** बोझ ढोना, **[हिम]** ठण्ड **[आतप]** गर्मी (आदि के) **[त्रास]** दुःख सहन किये ।

बध बंधन आदिक दुख घने, कोटि जीभ तैं जात न भने
अति संक्लेश भावतैं मर्यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्यो ॥८॥

अन्वयार्थ : (इस तिर्यंचगति में जीव ने अन्य भी) **[वध]** मारा जाना, **[बंधन]** बंधना **[आदिक]** आदि **[घने]** अनेक **[दुख]** दुःख सहन किये; (वे) **[कोटि]** करोड़ों **[जीभतैं]** जीभों से **[भने न जात]** नहीं कहे जा सकते । (इस कारण) **[अति संक्लेश]** अत्यंत बुरे **[भावतैं]** परिणामों से **[मरयो]** मारकर **[घोर]** भयानक **[श्वभ्रसागर में]** नरकरूपी समुद्र में **[परयो]** जा गिरा ।

तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो
तहाँ राध-श्रोणितवाहिनी, कृमि-कुल-कलित, देह-दाहिनी ॥९॥

अन्वयार्थ : **[तहां]** उन नरक में **[भूमि]** धरती **[परसत]** स्पर्श करने से **[इसो]** ऐसा **[दुख]** दुःख होता है (कि) **[सहस]** हजारों **[बिच्छू]** बिच्छू **[डसे]** डंक मारें, तथापि **[नहिं तिसो]** उसने समान दुःख नहीं होता (तथा) **[तहां]** वहां (नरक में) **[राधा-श्रोणितवाहिनी]** रक्त और मवाद बहानेवाली नदी (वैतरणी नामक नदी) है, जो **[कृमिकुललित]** छोटे-छोटे क्षुद्र कीड़ों से भरी हैं तथा **[देहदाहिनी]** शरीर में दाह उत्पन्न करनेवाली है ।

सेमर तरु दलजुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥१०॥

अन्वयार्थ : [**तत्र**] उन नरको में, [**असिपत्र ज्यों**] तलवार की धार की भांति तीक्ष्ण [**दलजुत**] पत्तोंवाले [**सेमर तरू**] सेमल के वृक्ष (हैं, जो) [**देह**] शरीर को [**असि ज्यों**] तलवार की भांति [**विदारैं**] चीर देते हैं (और) [**तत्र**] वहां (उस नरक में) [**ऐसी**] ऐसी [**शीत**] ठण्ड (और) [**उष्णता**] गरमी [**थाय**] होती है (कि) [**मेरू समान**] मेरू पर्वत के बाराबर [**लोह**] लोहे का गोला भी [**गलि**] गल जाय ।

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड
सिन्धुनीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥११॥

अन्वयार्थ : (उन नरकों में नारकी जीव एक-दूसरे के) [**देह के**] शरीर के [**तिल-तिल**] तिल्ली के दाने बराबर [**खण्ड**] टुकड़े [**करें**] कर डालते हैं (और) [**प्रचण्ड**] अत्यंत [**दुष्ट**] क्रूर [**असुर**] असुरकुमार जाति के देव (एक-दूरे के साथ) [**भिड़ावैं**] लड़ाते हैं; (तथा इतनी) (प्यास) प्यास (लगती है कि) [**सिन्धुनीर तैं**] समुद्रभर पानी पीने से भी (न जाय) शांत न हो, (तो पण) तथापि (एक बूंद) एक बूंदी भी (न लहाय) नहीं मिलती ।

तीनलोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय
ये दुख बहु सागर लौं सहै, करम जोगतैं नरगति लहै ॥१२॥

अन्वयार्थ : (उन नरकों में इतनी भूख लगती है कि) [**तीन लोक को**] तीनों लोक का [**नाज**] अनाज [**जुखाय**] खा जाये तथापि [**भूख**] क्षुधा [**न मिटै**] शांत न हो (परंतु खाने के लिए) [**कणा**] एक दाना भी [**न लहाय**] नही मिलता। [**ये दुख**] ऐसे दुःख [**बहु सागर लौं**] अनेक सागरोपम काल तक [**सहै**] सहन करता है, [**कमर जोगतैं**] किसी विशेष शुभ-कर्म के योग से [**नरगति**] मनुष्य-गति [**लहै**] प्राप्त करता है ।

जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतैं पायो त्रास
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥१३॥

अन्वयार्थ : (मनुष्यगति में भी यह जीव) [**नव मास**] नौ महीने तक [**जननी**] माता के [**उदर**] पेट में [**वस्यो**] रहा; (तब वहां) [**अंग**] शरीर [**सकुचतैं**] सिकोड़कर रहने से [**त्रास**] दुःख [**पायो**] पाया (और) [**निकसत**] निकलते समय [**जे**] जो [**घोर**] भयंकर [**दुख पाये**] दुःख पाये [**तिलको**] उन दुःखों को [**कहत**] कहने से [**ओर**] अंत [**न आवे**] नहीं आ सकता ।

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी-रत रह्यो
अर्ध-मृतक-सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥१४॥

अन्वयार्थ : (मनुष्यगति में) **[बालपने में]** बचपन में **[ज्ञान]** ज्ञान **[न लह्यो]** प्राप्त नहीं कर सका (और) **[तरूण समय]** युवावस्था में **[तरूणी-रत]** युवती स्त्री में लीन **[रह्यो]** रहा, (और) **[बूढापनो]** वृद्धावस्था **[अर्धमृतकसम]** अधमरा जैसा (रहा, ऐसी दशा में) **[कैसे]** किस प्रकार (जीव) **[अपनी]** अपना **[रूप]** स्वरूप **[लखै]** देखे - विचारे ।

कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै
विषय-चाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥१५॥

अन्वयार्थ : (इस जीव ने) **[कभी]** कभी **[अकाम निर्जरा]** अकाम निर्जरा **[करै]** की (तो मरने के पश्चात्) **[भवनत्रिक]** भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी में **[सुरतन]** देवपर्याय **[धरै]** धारण की, (परंतु वहां भी) **[विषय चाह]** पांच इन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी **[दावानल]** भयंकर अग्नि में **[दह्यो]** जलता रहा (और) (मरत) मरते समय **[विलाप करत]** रो-रोकर **[दुख सह्यो]** दुःख सहन किया ।

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय
तहँतें चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥१६॥

अन्वयार्थ : [**जो**] यदि [**विमानवासी**] वैमानिक देव [**हू**] भी [**थाय**] हुआ (तो वहां) [**सम्यग्दर्शन**] सम्यग्दर्शन [**बिना**] बिना [**दुख**] दुःख [**पाय**] प्राप्त किया (और) [**तहंतैं**] वहां से [**चय**] मरकर [**थावर तन**] स्थावर जीव का शरीर [**धरै धारण करता है; [यों] इसप्रकार (यह जीव) [परिवर्तन] पांच परावर्तन [पूरे करै] पूर्ण करता रहता है ।**

दूसरी-ढाल

ऐसे मिथ्या दृग-ज्ञान-चर्णवश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मर्ण
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥१॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के कारण पहली ढाल में बताई रीति से इस प्राणी को चारों गतियों में भटकना पडता है और जन्म मरण के दुःख सहने पडते हैं, इसलिये भली भांति जान कर उन तीनों का आत्महितैषी प्राणी को त्याग करना

चाहिये, इसलिये यहां पर मैं संक्षेप में उन तीनों का वर्णन करता हूं ।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिनमाहिं विपर्ययत्व
चेतन को है उपयोग रूप, विन मूरत चिन्मूरत अनूप ॥२॥

अन्वयार्थ : जीव, अजीव आदि सातों तत्त्वों के श्रद्धान से सम्यग्दर्शन होता है इसलिये ये सातों तत्त्व अपने उपयोग के हैं । सातों तत्त्वों का विपरीत श्रद्धान करना अगृहीत मिथ्यादर्शन्न कहलाता है । जो देखता है । वह जीव अमूर्तिक, चैतन्यमय तथा उपमारहित है ।

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान ॥३॥

अन्वयार्थ : पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये पांच अजीव द्रव्य हैं । जीव का स्वरूप इन पुद्गल आदि द्रव्यों से भिन्न है । किन्तु यह प्राणी मिथ्यादर्शन के प्रभाव से उस आत्मस्वभाव का वैसा श्रद्धान न कर उल्टा मानता हुआ शरीर को ही आत्मा मानता है 'यह जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है' ।

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गो-धन प्रभाव
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण ॥४॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के प्रभाव से शरीर को ही आत्मा का श्रद्धान कर शरीर को सुख दुःख आदि मिलने पर यह मानता है कि मैं सुखी हूं, मैं दुखी हूं, मैं राजा हूं, मैं गरीब हूं । मेरे बड़प्पन है, मेरे रुपया पैसा धन है, मेरे मकान है, मेरे गायें हैं, मेरे सन्तान है, मेरी स्त्रियां हैं, मैं बलवान हूं, मैं निर्बल हूँ, मैं कुरूप हूं, मैं सुन्दर हूं, मैं मूर्ख हूं, मैं चतुर हूं, इत्यादि । पर वास्तव में ये सब पर पदार्थ के ही परिणाम है, आत्मा के नहीं किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव इन्हें आत्मा के परिणाम समझते हैं ।

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान
रागादि प्रगट ये दु:ख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥५॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादृष्टि जीव अपने शरीर की उत्पत्ति को आत्मा की उत्पत्ति तथा शरीर के नाश को आत्मा का नाश मानता है । और राग द्वेश आदि भाव जो प्रत्यक्ष रूप से आत्मा को दुःख देने वाले हैं उन्हीं का सेवन करता हुआ यह जीव उनको सुख देने वाला मानता है ।

शुभ-अशुभ बंध के फल मंझार, रति-अरति करै निज पद विसार
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान ॥६॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्त्व के प्रभाव से अपने आत्मा के स्वरूप को भूलकर शुभ और अशुभ बन्ध का फल मिलने पर राग और द्वेश करने लगता है । संसार से उदास रहने, रागद्वेष का त्याग करने, सम्यकचारित्र तथा सम्यग्ज्ञान के प्राप्त करने में ही आत्मा की भलाई है, किन्तु मिथ्यात्व के उदय से यह जीव उसे अपने लिये दुःखदायी मानता है । अर्थात् सुख के कारण संवर को दुःखदायी मानता है । अर्थात् सुख के कारण संवर को दुःखदायी मानना ही संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है ।

रोके न चाह निजशक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥७॥

अन्वयार्थ : इच्छाओं का रोकना तप कहलाता है । इस तप से निर्जरा होती है । किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के प्रभाव से आत्मा की अनन्तज्ञानादि रूप शक्ति को भूल जाता है, जिससे निरन्तर पाचों इन्द्रियों के विषयों में रमा रहता है । आकुलता का मिट जाना ही सच्चा सुख या मोक्ष है । किन्तु मिथ्यादृष्टि मोक्ष के स्वरूप को आकुलता रहित नहीं मानता, उसे अतिकठिन और आकुलतामय मानता है। यह मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है । अगृहीत-मिथ्यादर्शन के होने पर स्वयं जो कुछ ज्ञान होता है, वह 'अगृहीत मिथ्याज्ञान' कहलाता है । यह महान दुःख का दाता है ।

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत, सुनिये सु तेह ॥८॥

अन्वयार्थ : अगृहीत मिथ्यादर्शन तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित पाँच इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्ति करना उसे अगृहीत मिथ्याचारित्र कहा जाता है । इन तीनों को दुःख का कारण जानकर तत्त्वज्ञान द्वारा उनका त्याग करना चाहिए ॥

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव
अंतर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥९॥
धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्मजल उपलनाव

अन्वयार्थ : कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सेवा करने से दीर्घकाल तक मिथ्यात्व का ही पोषण होता है अर्थात् कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का सेवन ही गृहीत मिथ्यादर्शन कहलाता है । परिग्रह दो प्रकार का है - एक अंतरंग और दूसरा बहिरंग । मिथ्यात्व, राग-द्वेषादि अंतरंग परिग्रह हैं और वस्त्र, पात्र, धन, मकानादि बहिरंग परिग्रह हैं । वस्त्रादि सहित होने पर भी अपने को जिनलिंगधारी मानते हैं, वे कुगुरु हैं । जिनमार्ग में तीन लिंग तो श्रद्धापूर्वक हैं । एक तो जिनस्वरूप-निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिलिंग, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकरूप दसवीं-ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावकलिंग और तीसरा आर्यिकाओं का रूप - यह स्त्रियों का लिंग, इन तीन के अतिरिक्त कोई चौथा लिंग सम्यग्दर्शनस्वरूप नहीं है; इसलिये इन तीन के अतिरिक्त अन्य लिंगों को जो मानता है, उसे जिनमत की श्रद्धा नहीं है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि है । (दर्शनपाहुड गाथा १८)" इसलिये जो कुलिंग के धारक हैं, मिथ्यात्वादि अंतरंग तथा वस्त्रादि बहिरंग परिग्रह सहित हैं, अपने को मुनि मानते हैं, मनाते हैं, वे कुगुरु हैं । जिसप्रकार पत्थर की नौका डूब जाती है तथा उसमें बैठने वाले भी डूबते हैं; उसीप्रकार कुगुरु भी स्वयं संसारसमुद्र में डूबते हैं और उनकी वंदना तथा सेवा-भक्ति करनेवाले भी अनंत संसार में डूबते हैं अर्थात् कुगुरु की श्रद्धा, भक्ति, पूजा, विनय तथा अनुमोदना करने से गृहीत मिथ्यात्व का सेवन होता है और उससे जीव अनंतकाल तक भव-भ्रण करता है ॥

जो राग-द्वेष मलकरि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ॥१०॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव

अन्वयार्थ : जो राग और द्वेषरूपी मैल से मलिन (रागी-द्वेषी) हैं और स्त्री, गदा, आभूषण आदि चिह्नों से जिनको पहिचाना जा सकता है, वे 'कुदेव' कहे जाते हैं । जो अज्ञानी ऐसे कुदेवों की सेवा (पूजा, भक्ति और विनय) करते हैं, वे इस संसार का अन्त नहीं कर सकते अर्थात् अनन्तकाल तक उनका भवभ्रण नहीं मिटता ॥

रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥११॥
जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥१२॥

अन्वयार्थ : जिस धर्म में मिथ्यात्व तथा रागादिरूप भावहिंसा और त्रस तथा स्थावर जीवों के घातरूप द्रव्यहिंसा को धर्म माना जाता है, उसे कुधर्म कहते हैं । जो जीव उस कुधर्म की श्रद्धा करता है, वह दु:ख प्राप्त करता है । ऐसे मिथ्या गुरु, देव और धर्म की श्रद्धा करना, उसे ``गृहीत मिथ्यादर्शन" कहते हैं । वह परोपदेश आदि बाह्य कारण के आश्रय से ग्रहण किया जाता है, इसलिये "गृहीत" कहलाता है । अब गृहीत मिथ्याज्ञान का वर्णन किया जाता है ॥

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त
रागी कुमतनिकृत श्रुताभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥१३॥

अन्वयार्थ : अर्थात् – अनेक धर्मात्मक वस्तु के किसी एक ही धर्म को समस्त वस्तु कहने के कारण, दूषित तथा विषय कषाय आदि को पुष्ट करने वाले कपिल आदि कुगुरूओं के बनाये हुए सब प्रकार के खोटे शास्त्रों का पढ़ना, पढाना, सुनना, सुनाना, गृहीत मिथ्याज्ञान कहलाता है ।

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध विध देहदाह
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन ॥१४॥

अन्वयार्थ : शरीर और आत्मा का भेदविज्ञान न होने से जो यश, धनसंपत्ति, आदर-सत्कार आदि की इच्छा से मानादि कषाय के वशीभूत होकर शरीर को क्षीण करनेवाली अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है, उसे "गृहीत मिथ्याचारित्र" कहते हैं ।

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत! निज आतम सुपाग ॥१५॥

अन्वयार्थ : आत्महितैषी जीव को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ग्रहण करके गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का त्याग करके आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिए । श्री पण्डित दौलतरामजी अपनी आत्मा को सम्बोधन करके कहते हैं कि - हे आत्मन्! पराश्रयरूप संसार अर्थात् पुण्य-पाप में भटकना छोड़कर सावधानी से आत्मस्वरूप में लीन हो ॥

तीसरी-ढाल

आत्महित, सच्चा सुख वा द्विविध मोक्षमार्ग का लक्षण

आतम को हित है सुख, आकुलता -विन कहिये
आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिव -मग लाग्यो चहिये ॥
सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चरन शिव, मग सो गुविध विचरो
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥१॥

अन्वयार्थ : आत्मा का कल्याण सुख प्राप्ति में है । आकुलता का मिट जाना ही सच्चा सुख है । उस आकुलता का आभाव केवल मोक्ष मार्ग में ही होता है इसलिये सुख चाहने वालों को मोक्ष मार्ग पर चलना चाहिये । सम्यग्दर्शन इन तीनों की एकता मोक्ष का मर्ग है । वह दो प्रकार का है । एक निश्चय मोक्षमार्ग और दूसरा व्यवहार मोक्षमार्ग । उनमें जो पर्मार्थ स्वरूप है वह निश्चय मोक्षमार्ग कहलाता है और जो निश्चय मोक्षमार्ग का कारण है वह व्यवहार मोक्षमार्ग कहलाता है ।

निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का लक्षण

परद्रव्यनतै भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त्व भला है
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है ॥

आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥२॥

अन्वयार्थ : पुद्गल आदि पर पदार्थों से भिन्न आत्मा का अटल श्रद्धान करना 'निश्चय सम्यग्दर्शन' कहलाता है । आत्मा को पर वस्तुओं से भिन्न जानना 'निश्चय सम्यग्ज्ञान' कहलाता है । तथा परद्रव्यों को छोडकर आत्मस्वरूप में एकाग्रता से मग्न होना 'निश्चय सम्यक्चारित्र' कहलाता है । अब आगे निश्चय मोक्षमार्ग की प्राप्ति कराने वाले व्यवहार मोक्षमार्ग का निरूपण किया जाता है ।

व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानों
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो
तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दिढ प्रतीत उर आनो ॥३॥

अन्वयार्थ : जिनेन्द्र भगवान ने जीव आदिक सात तत्त्व जैसे कहे हैं उनका जैसा का तैसा अटल श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है । अब आगे इन सात तत्त्वों के स्वरूप का सामान्य और विशेष रूप से वर्णन किया जाता है उसे सुनकर अपने मन में उनका अटल विश्वास करना चाहिये जिससे व्यवहार सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ।

जीव के भेद, बहिरात्मा और उत्तम अंतरात्मा का लक्षण

बहिरातम अन्तर आतम पर, -मातम जीव त्रिधा है
देह जीव को एक गिनै बहि-रातम तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी
द्विविध संग विन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी ॥४॥

अन्वयार्थ : आत्मा तीन प्रकार की होती हैं – १. बहिरात्मा २ . अन्तरात्मा और ३. परमात्मा । उनमें जो शरीर और आत्मा को एक ही मानता है वह बहिरात्मा कहलाता है । उसे अविवेकी या मिथ्यादृष्टि भी कहते हैं जो शरीर और आत्मा को भिन्न भिन्न मानता है वह अन्तरात्मा है । उस अन्तरात्मा के तीन भेद हैं – उत्तम मध्यम और जघन्य । उनमें अन्तरंग और बहिरंग दोनों परिग्रहों से रहित शुद्धोपयोगी मुनि अन्तरात्मा हैं ।

मध्यम और जघन्य अन्तरात्मा तथा सकल परमात्मा

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देश्व्रती अनगारी
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिव मग चारी ॥
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी
श्री अरिहन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी ॥५॥

अन्वयार्थ : शुभोपयोगी गृहादि परिग्रहरहित छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि तथा बारह व्रतों का पालन करने वाले पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक मध्यम अन्तरात्मा हैं । और व्रतरहित चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है ये तीनों अन्तरात्मा मोक्षमार्ग पर चलने वाले हैं । सकल और निकल के भेद से परमात्मा दो प्रकार के हैं । उनमें ज्ञानवरणादि चार घातिया कर्मों के नाशक तथा लोक और अलोक के पदार्थों के ज्ञाता दृष्टा,अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी सहित अरिहंत परमेष्ठी सकल परमात्मा कहलाते हैं ।

निकल परमात्मा का लक्षण वा परमात्मा के ध्यान का उपदेश

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल वर्जित सिद्ध महंता
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनंता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनंद पूजै ॥६॥

अन्वयार्थ : औदारिक आदि शरीर रहित शुद्ध ज्ञानमय द्रव्य भाव नोकर्मरहित निर्दोष और पूज्य सिद्ध पर्मेष्ठी निकल परमात्मा कहलाते हैं । वे समस्त कर्मों के विनाश से अनन्त काल तक अनन्त सुख का अनुभव करते हैं । इन तीनों में बहिरात्मापन मिथ्यात्वयुक्त होने से हेय है इसलिये आत्महितैषी प्राणी को उसे छोडकर अन्तरात्मा बनकर परमात्मा का ध्यान करना चाहिये क्योंकि उससे नित्य अनन्त आनन्द की प्राप्ति होती है ।

अजीव तत्त्व का लक्षण वा भेद

चेतनता-बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं
पुद्गल पंच वरन-रस गंध दो, फरस वसु जाके हैं ॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी
तिष्ठित होय अधर्म सहाई, जिन विन मूर्ति निरूपी ॥७॥

अन्वयार्थ : जिसमें चेतना नहीं होती वह अजीव कहलाता है । उस अजीव के पांच भेद होते हैं – पुद्गल , धर्म,अधर्म,आकाश और काल । जिसमें रूप रस गंध और स्पर्श होते हैं उसे पुद्गल द्रव्य कहते हैं । जो स्वयं चलते हुए जीव और पुद्गल द्रव्य को चलाने में सहकारी होता है वह धर्मद्रव्य हैं । और जो स्वयं ठहरते हुए जीव और पुद्गल को ठहरने में सहकारी होता है वह अधर्मद्रव्य है । जिनेन्द्र भगवान ने इन धर्म आदिक को अमूर्तिक कहा है ।

आकाश, काल और आस्रव के लक्षण वा भेद

सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो
नियत वर्तना निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो ॥
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन वच, काय त्रियोगा
मिथ्या अविरत अरु कषाय परमाद सहित उपयोगा ॥८॥

अन्वयार्थ : जिसमें छहों द्रव्यों का निवास है उस स्थान को आकाश कहते हैं । जो स्वयं पलटता है तथा पलटने में कुम्हार के चाक की कीली के समान सहायक है वह निश्चय काल कहलाता है । लोक व्यवहारोप्योगी रात्रि दिन घडी घण्टा आदि व्यवहार काल कहलाते हैं । इस प्रकार अजीव तत्त्व का वर्णन हुआ । अब आस्रव तत्त्व का वर्णन किया जाता है । मन वच और काय की हलन चलन रूप क्रिया को आस्रव कहते हैं । उसके मिथ्यात्व अविरति कषाय प्रमाद और योग ये पांच भेद हैं ।

आस्रव त्याग का उपदेश और बंध, संवर ,निर्जरा का लक्षण

ये ही आतम को दुखकारण, तातैं इनको तजिये
जीव प्रदेश बंधै विधिसों सो वचन कबहूं न सजिये ॥
शम – दमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये
तप-बलतैं विधि झरन निरजरा ताहि सदा आचरिये ॥९॥

अन्वयार्थ : ये मिथ्यात्वादि ही आत्मा को दुख देते हैं इसलिये इनका त्याग करना चाहिये । इन्हीं भावों के कारण जीव के प्रदेशों और कर्मों के परमाणुओं का परम्पर एकमेक हो जाना बंध कहलाता है । शम और दम से आत्मा में कर्मों का आगमन रुक जाना संवर कहलाता है । स्थिति पूर्ण हुए बिना ही तप के सामर्थ्य से कुछ कर्मों का आत्मा से अलग होना निर्जरा कहलाती है । इन में से आस्रव और बंध तत्त्व तो हेय है तथा संवर और निर्जरा तत्त्व उपादेय हैं ।

मोक्ष का लक्षण, व्यवहार सम्यक्त्व का लक्षण तथा कारण

सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव,थिर सुखकारी
इहिविधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह विन, धर्म दयजुत सारो
येहु मान समकित को कारण, अष्ट-अंग -जुत धारो ॥१०॥

अन्वयार्थ : आठों कर्मों के सर्वथा नाश होने पर आत्मा की जो अवस्था प्रगट होती है उसे मोक्ष कहते हैं । वह अविनाशी और अनन्त सुखमय है । इस प्रकार सामान्य और विशेष रूप से सातों तत्त्वों का अटल श्रद्धान होना व्यवहार सम्यक्त्व कहलाता है । जिनेन्द्र देव वीतराग दिगम्बर जैन गुरु और जिनेन्द्र प्रणीत अहिंसामय धर्म का यथार्थ श्रद्धान भी व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है । इसे आठ अंगों सहित धारण करना चाहिये ।

सम्यक्त्व के पच्चीस दोष और आठ गुण

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेप हु कहिये
बिन जानें तैं दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये ॥११॥

अन्वयार्थ : आठ मद , तीन मूढता छः अनायतन और आठ शंकादिक ये सम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं । संवेग , अनुकम्पा , आस्तिक्य और प्रशम ये चार सम्यक्त्व की भावनायें हैं । सम्यक्त्व के अभिलाषी जीव को सम्यक्त्व के पच्चीस दोषों का त्याग कर इन भावनाओं में मन लगाना चाहिये । अब सम्यक्त्व के आठ अंगों और पच्चीस दोषों का संक्षेप में वर्णन किया जाता है , क्योंकि बिना जाने समझे दोषों को कैसे छोडा जा सकता है और गुणों को कैसे ग्रहण किया जा सकता है ।

सम्यक्त्व के आठ अंगों और शंकादिक आठ दोषों के लक्षण

जिन वच में शंका न धार वृष, भव -सुख वांछा भानै
मुनि तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ॥
निजगुण अरु पर औगुण ढांकै, वा निज धर्म बढावै
कामादिक कर वृषतैं, चिगते, निज पर को सु दिढावै ॥१२॥
धर्मीसों गौ वच्छ प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै ॥

अन्वयार्थ : निः शकित आदि आठ अंगों का पालन करना चाहिये । तथा शंका, कांछा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, अनुपगूहन, अस्थिति, करण, अवात्सल्य और अप्राभावना ये आठ सम्यक्त्व के दोष हैं इन्हें सदा दूर करना चाहिये ।

सम्यक्त्व के मदनामक आठ दोष

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भनै ॥१३॥
तपको मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो जिन जानै
मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित को मल ठानै ॥

अन्वयार्थ : कुल, जाति, रूप, ज्ञान, पूजा, धन, बल, और तप ये आठ मददोष कहलाते हैं । जो जीव इन आठ का घमण्ड नहीं करता है, वही प्राणी शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति कर पाता है । यदि इनका गर्व किया जाता है, तो ये मद सम्यग्दर्शन के आठ दोष होकर उसे दूषित कर देते हैं ।

सम्यक्त्व के छः अनायतन दोष और तीन मूढता दोष

कुगुरू-कुदेव-कुवृष-सेवक की, नहीं प्रशंस उचरै है
जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करै है ॥१४॥

अन्वयार्थ : कुगुरू, कुदेव कुधर्म कुगुरुसेवक कुदेवसेवक और कुधर्मसेवक ये छः अनायतन दोष कहलाते हैं । सम्यग्दृष्टि जीव इनकी भक्ति विनय और पूजन आदि तो दूर रहे प्रशंसा भी नहीं करता । क्योंकि इनकी प्रशंसा करने से भी सम्यक्त्व में दोष लगता है । सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र देव वीतरागी मुनि और जिनवाणी के सिवाय कुगुरु कुदेव और कुशास्त्र आदि को नमन नहीं करता है ।

सम्यक्त्व का महत्व

दोष रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यक् दरश सजै हैं
चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं ॥
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है
नगरनारिको प्यार यथा का,-दे में हेम अमल है ॥१५॥

अन्वयार्थ : जो विवेकी दोष रहित और गुण सहित सम्यग्दर्शन धारण करते हैं उनके अप्रत्याख्यानावरण कषाय के तीव्र उदय से यद्यपि संयम भाव लेषमात्र भी नहीं होता तो भी उनकी इन्द्र आदिक पूजा करते हैं । जैसे जल में रहने पर भी कमल जल से अलग

रहता है । जिस पर प्रकार वेश्या का प्यार सिर्फ पैसे में भी होता है मनुष्य पर नहीं । और जैसे सुवर्ण कीचड में पडा रह कर भी निर्मल और भिन्न ही रहता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव यद्यपि गृहस्थी के कामों में करता है; तो भी उसके दोषों से दूषित नहीं होता क्योंकि वह उसे त्याज्य मानता है; कषाय की विवशता से ही उसे गृहस्थी के काम करने पडते हैं; प्रेमवश नहीं ।

सम्यग्दृष्टि कहां कहां उत्पन्न नहीं होता तथा सर्वोत्तम सुख

प्रथम नरक विन षट भू ज्योतिष, वान भवन षंड नारी
थावर विकलत्रय पषु में नहिं उपजत सम्यकधारी ॥
तीन लोक तिहुं काल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी
सकल धरम को मूल यही इस, विन करनी दुखकारी ॥१६॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दृष्टि जीव आयू पूर्ण होने पर जब मरता है तब द्वितीय आदिक छहों नरकों का नरकी, ज्योतिषी व्यंतर भवनवासी नपुंसक स्त्रि, एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और कर्म भूमि का पशु नहीं होता । नीचकुली, हीनांग अल्पायु और दरिद्री भी नहीं होता । तीनों लोकों और तीनों कालों मैं समग्दर्शन के समान सुखकारक और कोइ वस्तु नहीं है । यही सब धर्मों का मूल है । इसके बिना जितने भी क्रियाकाण्ड हैं वे दुखदायक हैं ।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र के मिथ्यापना

मोक्षमहल की परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा
सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै
यह नरभव मिलन कठिन है, जो सम्यक न हिं होवै ॥१७॥

अन्वयार्थ : यह सम्यग्दर्शन ही मोक्षरूपी महल में चढने के लिये प्रथम सीढी है । इसके बिना आन और चारित्र सम्यक्पना नहीं पाते । अर्थात् जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाते हैं । अत येव प्रत्येक आत्महितैषी को ऐसा पवित्र समग्दर्शन अवश्य धारण करना चाहिये । पं दौलतराम जी अपने आत्मा को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे विवेकी आत्मन ! तूं ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन के स्वरूप को स्वयं सुन तथा औरों से जान कर उसके प्राप्त करने में सावधान हो, अपने अमूल्य मनुष्य जीवन को वृथा मत खो यदि इस जन्म में भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सका तो फिर मनुष्य पर्याय आदि बार बार प्राप्त नहीं होते ।

चौथी-ढाल

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ॥१॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान को दृढ़ करना चाहिए । जिसप्रकार सूर्य समस्त पदार्थों को तथा स्वयं अपने को यथावत् दर्शाता है, उसीप्रकार जो अनेक धर्मयुक्त स्वयं अपने को (आत्मा को) तथा पर पदार्थों को ज्यों का त्यों बतलाता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं ।

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपकतैं होई ॥२॥

अन्वयार्थ : यद्यपि सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है तो भी दोनों में भेद हैं, दोनों जुदे जुदे हैं । क्योंकि सम्यग्दर्शन का लक्षण जानना है । सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है । दोनों के एक साथ होने पर भी दोनों में भेद हैं । जैसे एक साथ होने पर भी उजाला दीपक से ही उत्पन्न होता है ।

तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछि तिन माहिं
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं
अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देश-प्रतच्छा
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जानै जिय स्वच्छा ॥३॥

अन्वयार्थ : उस सम्यग्ज्ञान के दो भेद हैं - प्रत्यक्ष और परोक्ष । उनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान हैं, क्योंकि ये दोनों ज्ञान इन्द्रियों और मन की सहायता से वस्तु को अस्पष्ट जानते हैं ॥ अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान देश प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि प्राणी इनसे रूपी इनसे रूपी द्रव्य को क्षेत्र, काल और भाव का परिमाण लिये हुये जानता है ।

सकल द्रव्य के गुन अनंत, परजाय अनंता
जानैं एकै काल, प्रकट केवलि भगवन्ता
ज्ञान समान न आन जगत में सुख कौ कारन
इहि परमामृत जन्मजरामृति-रोग-निवारन ॥४॥

अन्वयार्थ : जो ज्ञान छहों द्रव्यों के तीनों कालों और तीनों लोकों में होने वाले समस्त पर्यायों और गुणों को एक साथ दर्पण के समान स्पष्ट जानता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं । यह केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है । इस संसार में सम्यग्ज्ञान के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है । यह सम्यग्ज्ञान ही जन्म, जरा और मृत्यु रूप को नष्ट करने के लिये उत्तम अमृत के समान हैं ।

निर्विकल्प शुद्ध स्वानुभव अज्ञान - बालतप

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान विन कर्म झरैं जे
ज्ञानी के छिन में त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते
मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ॥५॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादृष्टि जीवात्मज्ञान बिना करोडों जन्मों तक तप करके जितने कर्मों का नाश करता है उतने कर्मोम का नाश सम्यग्ज्ञानी जीव अपने मन, वचन ,काय के निरोध केक्षण भर में अनायास कर लेता है । यह प्राणी मुनि के महाव्रतों को धारण कर उसके प्रभाव से नवमें ग्रैवेयिक तक के विमानों में अनन्तवार पैदा हुआ, परन्तु आत्मा के भेदविज्ञान के बिना इसमें वहां भी लेशमात्र सुख नहीं पाया ।

तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजे
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे
यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी
इह विध गये न मिले, सुमणि ज्यौं उदधि समानी ॥६॥

अन्वयार्थ : जिनदेव के द्वारा कथित सच्चे तत्त्वों का पठन पाठन करना चाहिये । और संशय, विपर्याय, अनध्यवसाय इन सम्यग्ज्ञान के तीनों दोषों को दूर कर आत्मस्वरूप को जानना चाहिये । क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य पर्याय, उत्तम श्रावक अमूल्य रत्न फिर हाथ नहीं आता, उसी प्रकार मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल और जिनवाणी का श्रवण इत्यादि सुयोग भी चले जाने पर बार बार प्राप्त नहीं होते । इसलिये यह अपूर्व अवसर न खोकर सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति कर इन्हें सफल बनाना चाहिये ।

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै
ज्ञान आपकौ रूप भये, फिर अचल रहावै
तास ज्ञान को कारन, स्व-पर विवेक बखानौ
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनौ ॥७॥

अन्वयार्थ : धन-सम्पत्ति, परिवार, नौकर-चाकर, हाथी, घोड़ा तथा राज्यादि कोई भी पदार्थ आत्मा को सहायक नहीं होते; किन्तु सम्यग्ज्ञान आत्मा का स्वरूप है । वह एकबार प्राप्त होने के पश्चात् अक्षय हो जाता है - कभी नष्ट नहीं होता, अचल एकरूप रहता है । आत्मा और परवस्तुओं का भेदविज्ञान ही उस सम्यग्ज्ञान का कारण है; इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी भव्यजीव को करोड़ों उपाय करके उस भेदविज्ञान के द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए ।

जे पूरब शिव गये, जाहिं, अरु आगे जैहैं
सो सब महिमा ज्ञान-तनी, मुनिनाथ कहै हैं
विषय-चाह दव-दाह, जगत-जन अरनि दझावै
तास उपाय न आन, ज्ञान-घनघान बुझावै ॥८॥

अन्वयार्थ : भूत, वर्तमान और भविष्य - तीनों काल में जो जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, होंगे और (वर्तान में विदेह-क्षेत्र में) हो रहे हैं; वह इस सम्यग्ज्ञान का ही प्रभाव है - ऐसा पूर्वाचार्यो ने कहा है । जिसप्रकार दावानल (वन में लगी हुई अग्नि) वहाँ की समस्त वस्तुओं को भस्म कर देता है, उसीप्रकार पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी विषयों की इच्छा संसारी जीवों को जलाती है - दु:ख देती है; और जिसप्रकार वर्षा की झड़ी उस दावानल को बुझा देती है, उसीप्रकार यह सम्यग्ज्ञान उन विषयों को शान्त कर देता है - नष्ट कर देता है ।

पुण्य-पाप-फलमाहिं, हरख बिलखौ मत भाई
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई
लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ
तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आतम ध्याओ ॥९॥

अन्वयार्थ : आत्महितैषी जीव का कर्तव्य है कि वह धनादिक पुण्य के फलों में हर्ष और रोग, वियोग आदिक पाप के फलों मे विषाद न करे, क्योंकि ये पुण्य पाप पुद्गल रूप कर्म की पर्याय हैं; जो क्रमषः राहट की धरियों के समान एक के बाद एक उत्पन्न और नष्ट होती हैं; और फिर पैदा हो जाती हैं । लाखों बातो की सार यहे है कि संसार सम्बंधी सब अथवा पुन्य और पाप सहित झगडों से नाता तोडकर हमेशा आत्मचिन्तन करो, सदा गृहस्थी में फंसकर आत्मकल्याण करने में आलसी होना उचित नहीं । जितने समय हो सके आत्म चिन्तवन करना चाहिये ।

सम्यज्ञानी होय, बहुरि दिढ़ चारित लीजै
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँहारै
पर-वधकार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै ॥१०॥

अन्वयार्थ : सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर सम्यक्चारित्र धारण करना चाहिये । उस सम्यक्चारित्र के दो भेद हैं – एकदेशचारित्र और सर्वदेश चारित्र । उनमें सकल चारित्र का पालन दिगम्बर मुनिराज करते हैं और देश चारित्र का पालन श्रावक करते हैं । त्रसजीवों की संकल्पी हिंसा का सर्वथा त्याग कर निष्प्रयोजन स्थावर जीवों का भी घात न करना अहिंसाणुव्रत कहलाता है । दूसरे के प्राणों का घातक, कठोर और निन्दनीय वचन नहीं बोलना और न दूसरों से बुलवाना सत्याणुव्रत कहलाता है ।

जल-मृतिका विन और नाहिं कछु गहै अदत्ता
निज वनिता विन सकल नारिसौं रहै विरत्ता
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै ॥११॥

अन्वयार्थ : जल और मिट्टी के अलावा अन्य कोई वस्तु बिना दी हुई नहीं लेना अचौर्याणुव्रत है । अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों से विरक्त रहना ब्रह्मचर्याणुव्रत है । अपनी शक्ति का विचार करते हुए थोडा परिग्रह रखना परिग्रह परिमाणानुव्रत है । दशों दिशाओं में आने जाने की मर्यादा करके फिर उस सीमा का उल्लंघन नहीं करना दिग्व्रत है ।

काहू की धनहानि, किसी जय-हार न चिन्तै
देय न सो उपदेश, होय अघ वनज कृषी तैं ॥१२॥
कर प्रमाद जल भूमि वृक्ष पावक न विराधै
असि धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे यश लाधै
राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै
और हु अनरथ दंड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै ॥१३॥

अन्वयार्थ : (१) किसी के धन का नाश, पराजय अथवा विजय आदि का विचार न करना, सो पहला अपध्यान-अनर्थदंडव्रत कहलाता है ।१ (२) हिंसारूप पापजनक व्यापार तथा खेती आदि का उपदेश न देना, वह पापोपदेश-अनर्थदंडव्रत है । (३) प्रमादवश होकर पानी ढोलना, जमीन खोदना, वृक्ष काटना, आग लगाना - इत्यादि का त्याग करना अर्थात् पाँच स्थावरकाय के जीवों की हिंसा न करना, उसे प्रमादचर्या-अनर्थडंदव्रत कहते हैं । (४) यश प्राप्ति के लिए, किसी के माँगने पर हिंसा के कारणभूत हथियार न देना, सो हिंसादान-अनर्थदंडव्रत कहलाता है । (५) राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाली विकथा और उपन्यास या श्रृंगारिक कथाओं के श्रवण का त्याग करना, सो दु:श्रुति-अनर्थदंडव्रत कहलाता है ।।१३ ।।

ताहू में फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा
गमनागमन प्रमाण ठान अन, सकल निवारा ॥१२॥

अन्वयार्थ : दिग्व्रत में जीवनपर्यन्त की गई जाने-आने के क्षेत्र की मर्यादा में भी (घड़ी, घण्टा, दिन, महीना आदि काल के नियम से) किसी प्रसिद्ध ग्राम, मार्ग, मकान तथा बाजार तक जाने-आने की मर्यादा करके उससे आगे की सीमा में न जाना, सो देशव्रत कहलाता है । (पूर्वार्द्ध) ।

धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये
परव चतुष्टयमाहिं, पाप तज प्रोषध धरिये
भोग और उपभोग, नियमकरि ममत निवारै
मुनि को भोजन देय फेर, निज करहि अहारै ॥१४॥

अन्वयार्थ : शिक्षाव्रत चार प्रकार के होते हैं सामायिक : स्वोन्मुखता द्वारा अपने परिणामों को स्थिर करके प्रतिदिन विधिपूर्वक सामायिक करना, सो सामायिक शिक्षाव्रत है ॥१॥ प्रोषधोपवास : प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन कषाय और व्यापारादि कार्यो को छोड़कर, धर्म-ध्यान-पूर्वक, प्रोषधसहित उपवास करना, सो प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहलाता है ॥२॥ भोगोपभोग-परिमाण : भोगोपभोग की वस्तुओं को जीवनपर्यंत के लिए अथवा किसी निश्चित समय के लिए कम करने का नियम करना, सो भोगोपभोग-परिमाण शिक्षाव्रत कहलाता है ॥३॥ अतिथि-संविभाग : निर्ग्रंथ मुनि आदि सत्पात्रों को आहार देने के पश्चात् स्वयं भोजन करना, सो अतिथि-संविभाग शिक्षाव्रत कहलाता है ॥४॥

बारह व्रत के अतीचार, पन-पन न लगावै
मरण-समय संन्यास धारि तसु दोष नशावै
यों श्रावक-व्रत पाल, स्वर्ग सोलह उपजावै
तहँतें चय नरजन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै ॥१५॥

अन्वयार्थ : जो जीव श्रावक के ऊपर कहे हुए बारह व्रतों का विधिपूर्वक जीवनपर्यंत पालन करते हुए उनके पाँच-पाँच अतिचारों को भी टालता है और मृत्युकाल में पूर्वोपार्जित दोषों का नाश करने के लिए विधिपूर्वक समाधिमरण (संल्लेखना१) धारण करके उसके पाँच अतिचारों को भी दूर करता है, वह आयु पूर्ण होने पर मृत्यु प्राप्त करके सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होता है । फिर देवायु पूर्ण होने पर मनुष्य भव पाकर, मुनिपद धारण करके मोक्ष (पूर्ण शुद्धता) प्राप्त करता है । सम्यक्चारित्र की भूमिका में रहनेवाले राग के कारण वह जीव स्वर्ग में देवपद प्राप्त करता है । धर्म का फल संसार की गति नहीं है, किन्तु संवर- निर्जरारूप शुद्धभाव है; धर्म की पूर्णता वह मोक्ष है ।

पांचवी-ढाल

मुनि सकलव्रती बड़भागी भव-भोगनतैं वैरागी
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥

अन्वयार्थ : पाँच महाव्रतों को धारण करनेवाले भावलिंगी मुनिराज महापुरुषार्थवान हैं; क्योंकि वे संसार, शरीर और भोगों से अत्यन्त विरक्त होते हैं; और जिसप्रकार कोई माता पुत्र को जन्म देती है, उसीप्रकार ये बारह भावनाएँ वैराग्य उत्पन्न करती हैं, इसलिये मुनिराज इन बारह भावनाओं का चिंतवन करते हैं ।

इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥

अन्वयार्थ : जिस प्रकार वायु लगने से अग्नि एकदम भभक उठती है, उसीप्रकार इन बारह भावनाओं का बारंबार चिंतवन करने से समता शांतिरूपी सुख प्रकट हो जाता है - बढ़ जाता है । जब यह जीव पुरुषार्थपूर्वक परपदार्थों से सम्बन्ध छोड़कर आत्मस्वरूप को जानता है, तब परमानन्दमय स्वस्वरूप में लीन होकर समतारस का पान करता है और अंत में मोक्षसुख प्राप्त करता है ।२ ।

जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥

अन्वयार्थ : यौवन, मकान, गाय-भैंस, धन-सम्पत्ति, स्त्री, घोड़ा-हाथी, कुटुम्बीजन, नौकर-चाकर तथा पाँच इन्द्रियों के विषय - ये सर्व वस्तुएँ क्षणिक हैं - अनित्य हैं - नाशवान हैं । जिसप्रकार इन्द्रधनुष और बिजली देखते ही देखते विलीन हो जाते हैं, उसीप्रकार ये यौवनादि कुछ ही काल में नाश को प्राप्त होते हैं । वे कोई पदार्थ नित्य और स्थायी नहीं हैं, अपितु निज शुद्धात्मा ही नित्य और स्थायी है । ऐसा स्वोन्मुखतापूर्वक चिंतवन करके, सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता की वृद्धि करता है, वह ``अनित्य भावना" है । मिथ्यादृष्टि जीव को अनित्यादि एक भी भावना यथार्थ नहीं होती ।।३ ।।

अशरणभावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि, काल दले ते
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥४॥

अन्वयार्थ : इस संसार में जो-जो देवेन्द्र, असुरेन्द्र, खगेन्द्र (पक्षियों के राजा) आदि हैं, उन सबका - जिसप्रकार हिरन को सिंह मार डालता है, उसीप्रकार - काल (मृत्यु) नाश करता है । चिंतामणि आदि मणि, मंत्र और जंत्र-तंत्रादि कोई भी मृत्यु से नहीं बचा सकता । यहाँ ऐसा समझना कि निज आत्मा ही शरण है; उसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है । कोई जीव अन्य जीव की रक्षा कर सकने में समर्थ नहीं है; इसलिये पर से रक्षा की आशा करना व्यर्थ है । सर्वत्र-सदैव एक निज आत्मा ही अपना शरण है । आत्मा निश्चय से मरता ही नहीं; क्योंकि वह अनादि अनन्त है - ऐसा स्वोन्मुखतापूर्वक चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता की वृद्धि करता है, वह ``अशरण भावना" है ।।४ ।।

चहुँगति दु:ख जीव भरै है, परिवर्तन पंच करै है
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ॥५॥

अन्वयार्थ : जीव की अशुद्ध पर्याय वह संसार है । अज्ञान के कारण जीव चार गति में दु:ख भोगता है और पाँच (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव तथा भाव) परावर्तन करता रहता है, किन्तु कभी शांति प्राप्त नहीं करता; इसलिये वास्तव में संसारभाव सर्वप्रकार से सार रहित है, उसमें किंचित्मात्र सुख नहीं है; क्योंकि जिसप्रकार सुख की कल्पना की जाती है, वैसा सुख का स्वरूप नहीं है और जिसमें सुख मानता है, वह वास्तव में सुख नहीं है; किन्तु वह परद्रव्य के आलम्बनरूप मलिनभाव होने से आकुलता उत्पन्न करनेवाला भाव है । निज आत्मा ही सुखमय है, उसके ध्रुवस्वभाव में संसार है ही नहीं - ऐसा स्वोन्मुखता-पूर्वक चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता में वृद्धि करता है, वह ``संसार भावना" है ।।५ ।।

एकत्वभावना (स्त्री-पुत्रादि सभी स्वार्थ के सगे हैं।)

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एक हि ते ते
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥

अन्वयार्थ : जीव का सदा अपने स्वरूप से और पर से विभक्तपना है; इसलिये वह स्वयं ही अपना हित अथवा अहित कर सकता है, पर का कुछ नहीं कर सकता है । इसलिये जीव जो भी शुभ या अशुभ भाव करता है, उनका फल (आकुलता) वह स्वयं अकेला ही भोगता है; उसमें अन्य कोई - स्त्री, पुत्र, मित्रादि सहायक नहीं हो सकते; क्योंकि वे सब परपदार्थ हैं और वे सब पदार्थ जीव को ज्ञेयमात्र हैं, इसलिये वे वास्तव में जीव के सगे-सम्बन्धी हैं ही नहीं; तथापि अज्ञानी जीव उन्हें अपना मानकर दु:खी होता है । पर के द्वारा अपना भला-बुरा होना मानकर पर के साथ कर्तृत्व-ममत्व का अधिकार माना है; वह अपनी भूल से ही अकेला दु:खी होता है । संसार में और मोक्ष में यह जीव अकेला ही है - ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि जीव निज शुद्ध आत्मा के साथ ही सदैव अपना एकत्व मानकर अपनी निश्चयपरिणति द्वारा शुद्ध एकत्व की वृद्धि करता है, यह ``एकत्व भावना" है ।।६ ।।

अन्यत्वभावना

जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥७॥

अन्वयार्थ : जिसप्रकार दूध और पानी एक आकाश-क्षेत्र में मिले हुए हैं, परन्तु अपने-अपने गुण आदि की अपेक्षा से दोनों बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं; उसीप्रकार यह जीव और शरीर भी मिले हुए - एकाकार दिखाई देते हैं, तथापि वे दोनों अपने-अपने स्वरूपादि की अपेक्षा से (स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से) बिलकुल पृथक्-पृथक् हैं तो फिर प्रकटरूप से भिन्न दिखाई देनेवाले - ऐसे मोटरगाड़ी, धन, मकान, बाग, पुत्र-पुत्री, स्त्री आदि अपने साथ कैसे एकमेक हो सकते हैं? अर्थात् स्त्री-पुत्रादि कोई भी परवस्तु अपनी नहीं है - इसप्रकार सर्व पदार्थो को अपने से भिन्न जानकर, स्वसन्मुखतापूर्वक सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता की वृद्धि करता है, वह ``अन्यत्व भावना" है ।।७ ।।

अशुचिभावना

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करे किम यारी ॥८॥

अन्वयार्थ : यह शरीर तो मांस, रक्त, पीव, विष्टा आदि की थैली है और वह हड्डी, चर्बी आदि से भरा होने के कारण अपवित्र है तथा नौ द्वारों से मैल बाहर निकलता है - ऐसे शरीर के प्रति मोह-राग कैसे किया जा सकता है? यह शरीर ऊपर से तो मक्खी के पंख समान पतली चमड़ी में मढ़ा हुआ है; इसलिये बाहर से सुन्दर लगता है, किन्तु यदि उसके भीतरी हाल तक विचार किया जाये तो उसमें अपवित्र वस्तुएँ भरी हैं; इसलिये उसमें ममत्व, अहंकार या राग करना व्यर्थ है । यहाँ शरीर को मलिन बतलाने का आशय - भेदज्ञान द्वारा शरीर के स्वरूप का ज्ञान कराके, अविनाशी निज पवित्र पद में रुचि करना है, किन्तु शरीर के प्रति द्वेषभाव उत्पन्न कराने का आशय नहीं । शरीर तो उसके अपने स्वभाव से ही अशुचिमय है और यह भगवान आत्मा निजस्वभाव से ही शुद्ध एवं सदा शुचिमय पवित्र चैतन्य पदार्थ है । इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव अपने शुद्ध आत्मा की सन्मुखता द्वारा अपनी पर्याय में शुचिता की (पवित्रता की) वृद्धि करता है वह ``अशुचि भावना" है ।।८ ।।

आस्रवभावना

जो योगन की चपलाई, तातैं है आस्रव भाई
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे ॥९॥

अन्वयार्थ : विकारी शुभाशुभभावरूप जो अरूपी दशा जीव में होती है, वह भाव-आस्रव है और उस समय नवीन कर्मयोग्य रजकणों का स्वयं-स्वत: आना (आत्मा के साथ एक क्षेत्र में आगमन होना) सो द्रव्य-आस्रव है । (उसमें जीव की अशुद्ध पर्यायें निमित्तमात्र हैं ।) पुण्य और पाप दोनों आस्रव और बन्ध के भेद हैं । पुण्य :- दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत आदि शुभराग सरागी जीव को होते हैं; वे अरूपी अशुभ भाव हैं और वह भावपुण्य है । तथा उस समय नवीन कर्मयोग्य रजकणों का स्वयं-स्वत: आना (आत्मा के साथ एक क्षेत्र में आगमन होना), सो द्रव्यपुण्य है । (उसमें जीव की अशुद्ध पर्याय निमित्तमात्र है ।) पाप :- हिंसा, असत्य, चोरी इत्यादि जो अशुभभाव हैं; वह भावपाप है और उस समय कर्मयोग्य पुद्गलों का आगमन होना, सो द्रव्यपाप है । (उसमें जीव की अशुद्ध पर्यायें निमित्त हैं ।) परमार्थ से (वास्तव में) पुण्य-पाप (शुभाशुभ) आत्मा को अहितकर हैं तथा वह आत्मा की क्षणिक अशुद्ध अवस्था है । द्रव्य पुण्य-पाप तो परवस्तु हैं, वे कहीं आत्मा का हित-अहित नहीं कर सकते - ऐसा यथार्थ निर्णय प्रत्येक ज्ञानी जीव को होता है और इसप्रकार विचार करके सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य के अवलम्बन के बल से जितने अंश में आस्रवभाव को दूर करता है उतने अंश में उसे वीतरागता की वृद्धि होती है; उसे ``आस्रव भावना" कहते हैं ।।९ ।।

संवरभावना

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

अन्वयार्थ : आस्रव का रोकना, सो संवर है । सम्यग्दर्शनादि द्वारा मिथ्यात्वादि आस्रव रुकते हैं । शुभोपयोग तथा अशुभोपयोग दोनों बन्ध के कारण हैं - ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव पहले से ही जानता है । यद्यपि साधक को निचली भूमिका में शुद्धता के साथ अल्प शुभाशुभभाव होते हैं; किन्तु वह दोनों को बन्ध का कारण मानता है, इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य के आलम्बन द्वारा जितने अंश में शुद्धता करना है उतने अंश में उसे संवर होता है, और वह क्रमश: शुद्धता में वृद्धि करके पूर्ण शुद्धता (संवर) प्राप्त करता है । यह ``संवर भावना" है ।।१० ।।

निर्जराभावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥

अन्वयार्थ : अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मो का खिर जाना तो प्रतिसमय अज्ञानी को भी होता है; वह कहीं शुद्धि का कारण नहीं होता, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा अर्थात् आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा जो कर्म खिर जाते हैं, वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा कहलाती है । तदनुसार शुद्धि की वृद्धि होते-होते सम्पूर्ण निर्जरा होती है, तब जीव शिवसुख (सुख की पूर्णतारूप मोक्ष) प्राप्त करता है । ऐसा जानता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य के आलम्बन द्वारा जो शुद्धि की वृद्धि करता है, वह ``निर्जरा भावना" है ।।११ ।।

लोकभावना

किनहू न करौ न धरै को, षड् द्रव्यमयी न हरै को
सो लोकमाहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥

अन्वयार्थ : ब्रह्मा आदि किसी ने इस लोक को बनाया नहीं है; विष्णु या शेषनाग आदि किसी ने इसे टिका नहीं रखा है तथा महादेव आदि किसी से यह नष्ट नहीं होता; किन्तु यह छह द्रव्यमय लोक स्वयं से ही अनादि-अनन्त है; छहों द्रव्य नित्य स्व-स्वरूप से स्थित रहकर निरन्तर अपनी नई-नई पर्यायों (अवस्थाओं) से उत्पाद-व्ययरूप परिणमन करते रहते हैं । एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अधिकार नहीं है । यह छह द्रव्य स्वरूप लोक, वह मेरा स्वरूप नहीं है । वह मुझसे त्रिकाल भिन्न है, मैं उससे भिन्न हूँ; मेरा शाश्वत चैतन्य-लोक ही मेरा स्वरूप है - ऐसा धर्मी जीव विचार करता है और स्वोन्मुखता द्वारा विषमता मिटाकर, साम्यभाव-वीतरागता बढ़ाने का अभ्यास करता है । यह ``लोक भावना" है ।।१२ ।।

अंतिम-ग्रीवकलौं की हद, पायो अनन्त विरियाँ पद
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥१३॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादृष्टि जीव मंद कषाय के कारण अनेक बार ग्रैवेयक तक उत्पन्न होकर अहमिन्द्रपद को प्राप्त हुआ है, परन्तु उसने एकबार भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त नहीं किया; क्योंकि सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना वह अपूर्व है; उसे तो स्वोन्मुखता के अनन्त पुरुषार्थ द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और ऐसा होने पर विपरीत अभिप्राय आदि दोषों का अभाव होता है । सम्यग्दर्शन-ज्ञान आत्मा के आश्रय से ही होते हैं । पुण्य से, शुभराग से, जड़ कर्मादि से नहीं होते । इस जीव ने बाह्य संयोग, चारों गति के लौकिक पद अनन्तबार प्राप्त किये हैं, किन्तु निज आत्मा का यथार्थ स्वरूप स्वानुभव द्वारा प्रत्यक्ष करके उसे कभी नहीं समझा, इसलिये उसकी प्राप्ति अपूर्व है । बोधि अर्थात् निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता; उस बोधि की प्राप्ति प्रत्येक जीव को करना चाहिए । सम्यग्दृष्टि जीव स्व-सन्मुखतापूर्वक ऐसा चिंतवन करता है और अपनी बोधि और शुद्धि की वृद्धि का बारम्बार अभ्यास करता है । यह ``बोधि-दुर्लभ भावना" है ।।१३ ।।

धर्मभावना

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग-ज्ञान-व्रतादिक सारे
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे ॥१४॥

अन्वयार्थ : मोह अर्थात् मिथ्यादर्शन अर्थात् अतत्त्वश्रद्धान; उससे रहित निश्चयसम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (रत्नत्रय) ही साररूप धर्म है । व्यवहार रत्नत्रय वह धर्म नहीं है - ऐसा बतलाने के लिए यहाँ गाथा में ``सारे" शब्द का प्रयोग किया है । जब जीव निश्चय रत्नत्रयस्वरूप धर्म को स्वाश्रय द्वारा प्रकट करता है, तभी वह स्थिर, अक्षयसुख (मोक्ष) प्राप्त करता है । इस प्रकार चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव स्वोन्मुखता द्वारा शुचि की वृद्धि बारम्बार करता है । वह ``धर्म भावना" है ।।१४ ।।

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

अन्वयार्थ : निश्चयरत्नत्रयस्वरूप धर्म को भावलिंगी दिगम्बर जैन मुनि ही अंगीकार करते हैं, अन्य कोई नहीं । अब, आगे उन मुनियों के सकलचारित्र का वर्णन किया जाता है । हे भव्यो! उन मुनिवरों का चारित्र सुनो और अपने आत्मा का अनुभव करो ।।१५ ।।

छठी-ढाल

षट्काय जीव न हननतैं, सब विध दरवहिंसा टरी
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयो गहैं
अठदश सहस विध शील घर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं ॥१॥

अन्वयार्थ : छहकाय के जीवों का घात करना 'द्रव्यहिंसा' और राग-द्वेष-काम-क्रोध-मान इत्यादि भावों की उत्पत्ति 'भाव-हिंसा' कहलाती है । मुनिराज इन दोनों प्रकार की हिंसाओं को नहीं करते, इसलिए उनके 'अहिंसा महाव्रत' होता है । स्थूल अथवा सूक्ष्म दोनों प्रकार का झूठ भी मुनिराज कभी नहीं बोलते, इसलिए उनके 'सत्य महाव्रत' होता है । अन्य वस्तुओं का तो पूछना ही क्या, जिस मिट्टी और जल को सर्व-साधारण जीव बिना किसी रोक-टोक (निषेध) के प्रयोग में लेते हैं, मुनि उनको भी किसी के द्वारा दिए बिना ग्रहण नहीं करते इसलिए उनके 'अचौर्य महाव्रत' होता है । शील के १८००० भेदों का सदैव पालन करते मुनि चैतन्यरूपी आत्म-स्वरूप में लीन रहते हैं, इसलिए उनके 'ब्रह्मचर्य महाव्रत' होता है ।

अंतर चतुर्दस भेद बाहिर, संग दसधा तैं टलैं
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं
जग-सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं
भ्रमरोग-हर जिनके वचन-मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं ॥२॥

अन्वयार्थ : मुनिराज १४ प्रकार के अन्तरंग एवं १० प्रकार के बहिरंग परिग्रहों से सदा दूर रहते हैं, इसलिए उनके 'परिग्रह त्याग महाव्रत' होता है । सूर्योदय होने के बाद दिन में एकाग्रचित्त से चार हाथ आगे की भूमि देखकर जीव-जन्तुओं की हिंसा से बचते हुए मुनिराज मार्ग में चलते हैं अत: उनके 'ईर्या समिति' होती है ।

छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावकतनैं घर अशन को
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन-पोषते तजि रसन को
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं
निर्जन्तु थान विलोकि तन-मल मूत्र श्लेष्म परिहरैं ॥३॥

अन्वयार्थ : छ्यालीस दोषों से रहित एवं बत्तीस अन्तरायों को टालकर और रसना इन्द्रिय की लोलुपता छोड़कर (रसों का आंशिक या पूरा त्यागकर) शरीर को पुष्ट करने का अभिप्राय न रखते हुए केवल तप बढ़ाने के लिए, मुनिराज उत्तम कुल वाले श्रावक के यहाँ अनुद्दिष्ट प्रासुक भोजन (आहार) को दिन में एक बार ग्रहण करते हैं, इसलिए उनके 'एषणा समिति' होती है । शुद्धि-पवित्रता के साधन कमण्डलु, ज्ञान के साधन शास्त्र एवं संयम के साधन पिच्छिका को जीवों की विराधना (हिंसा) बचाने के लिए मुनिराज देखभाल कर रखते और उठाते हैं, इसलिए उनके 'आदान-निक्षेपण समिति' होती है । मल-मूत्र-कफ आदि शरीर के मैलों को मुनिराज जीव रहित स्थान देख कर त्यागते (छोड़ते) हैं, अत: उनके 'व्युत्सर्ग या प्रतिष्ठापन समिति' होती है ।

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच काय, आतम ध्यावते
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ॥४॥

अन्वयार्थ : मुनिराज जब भली प्रकार से मन, वचन और काय की क्रिया (प्रवृत्ति) को रोककर अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं, तब उनकी शांत एवं अचल आकृति को देखकर उसे पत्थर समझकर उससे हिरण या अन्य चौपाये अपनी खुजली मिटाने (रगड़ कर खुजाने) लगते हैं इसलिए उनके तीनों गुप्तियाँ (मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति) होती हैं । वे अपने लिए पाँचों इन्द्रियों के २७ विषयों-५ रस, ५ वर्ण, २ गंध,८ स्पर्श, ७ शब्द-मे न तो प्रिय (शुभ) होने पर राग करते हैं और न ही अप्रिय (अशुभ) होने पर द्वेष करते हैं इसलिए पंचेन्द्रियों को वश में करने (विरक्त रहने) से वे जितेन्द्रिय कहलाते हैं ।

समता सम्हारैं, थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को
नित करैं श्रुति-रति, करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को
जिनके न न्हौन, न दंतधोवन, लेश अम्बर आवरन
भू माहिं पिछली रयनि में कछु शयन एकासन करन ॥५॥

अन्वयार्थ : दिगम्बर जैन मुनि सदा १. सामायिक २. स्तुति ३. श्री जिनेन्द्र भगवान की वंदना ४. स्वाध्याय ५. प्रतिक्रमण ६. देह से ममत्व त्याग (कायोत्सर्ग) करते हैं - इसलिए उनके ६ आवश्यक होते हैं । शरीर का शृँगार त्याग के कारण वे मुनिराज १. स्नान नहीं करते २. दातौन नहीं करते ३. रंचमात्र भी कपड़ा शरीर ढाँकने में काम नहीं लेते ४. रात के अंतिम भाग में जमीन पर एक ही करवट लेटकर थोड़ी सी नींद लेते हैं ।

इक बार दिन में लें अहार, खड़े अलप निज-पान में
कचलोंच करत न डरत परिषह सौं, लगे निज ध्यान में
अरि मित्र महल मसान कंचन, काँच निन्दन थुति करन
अर्घावतारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन ॥६॥

अन्वयार्थ : मुनि दिन में एक बार ही अपने हाथ में लेकर खड़े-खड़े थोड़ा सा आहार लेते हैं । वे अपरिग्रही अपने केशों का अपने हाथों से लोंच करते हैं । वे परिषह (दु:ख) से नहीं डरते हैं और अपनी आत्मा में लीन रहते हैं । इस प्रकार ये २८ मूलगुण साधु पालते हैं -- ५. महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रियजय, ६ आवश्यक·२१ मूलगुण, फिर १. न नहाना २. दाँत न धोना ३. जमीन पर सोना ४. नग्न रहना ५. एक बार भोजन करना ६. खड़े-खड़े करपात्र में आहार लेना ७. अपने बालों का लोंच करना - २१ + ७ = २८ मूलगुण हैं । आत्मा के अतिरिक्त अन्य समस्त भौतिक पदार्थों से उदासीन रहने के कारण उनके लिए समस्त ऐश्वर्य तुच्छ हैं -- साधु के लिए शत्रु और मित्र, महल और श्मशान, कंचन और काँच, निंदा और स्तुति, पूजन करना या तलवार से मारना, ये सब समान हैं अर्थात् मुनि हर एक अवस्था में शांत-चित्त रहा करते हैं । वे राग-द्वेष से ऊपर उठ जाते हैं अर्थात् वे सम-भाव धारण कर लेते हैं और आने वाली समस्त आपत्तियों और कष्टों को साम्य परिणामों से सहन कर लेते हैं ।

तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा
मुनि साथ में वा एक विचरैं चहैं नहिं भवसुख कदा
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७॥

अन्वयार्थ : मुनि बारह प्रकार के तप तपते हैं, दश प्रकार के धर्म को धारण करते हैं, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी तीन गुण रत्नों की रक्षा करते हैं, मुनियों के साथ या एकाकी विचरण करते हैं और सांसारिक सुखों की इच्छा भी नहीं करते, इस प्रकार मुनि के सकल-चारित्र का वर्णन हुआ । अब स्वरूपाचरण या निश्चय-चारित्र को कहते हैं, जिसके उदय से अपनी आत्मा की ज्ञानादि सम्पत्ति प्रकट होती है और पर-पदार्थों की ओर झुकाव सब प्रकार से मिटता है ।

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया
वरणादि अरु रागादितैं निज भाव को न्यारा किया
निजमाहिं निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो ॥८॥

अन्वयार्थ : जिसप्रकार कोई पुरुष तीक्ष्ण छैनी द्वारा पत्थर आदि के दो भाग पृथक्-पृथक् कर देता है, उसीप्रकार स्वरूपाचरणचारित्र का आचरण करते समय वीतरागी मुनि अपने अन्तरंग में भेदविज्ञानरूपी छैनी द्वारा अपने आत्मा के स्वरूप को द्रव्यकर्म से तथा शरीरादिक नोकर्म से और रागद्वेषादिरूप भावकर्मो से भिन्न करके अपने आत्मा में, आत्मा के लिए, आत्मा को स्वयं जानते हैं; तब उनके स्वानुभव में गुण, गुणी तथा ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय - ऐसे कोई भेद नहीं रहते ॥८॥

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प, वच भेद न जहाँ
चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दशा
प्रकटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ॥९॥

अन्वयार्थ : वीतरागी मुनिराज स्वरूपाचरण के समय जब आत्मध्यान में लीन हो जाते हैं; तब ध्यान, ध्याता और ध्येय - ऐसे भेद नहीं रहते, वचन का विकल्प भी नहीं होता । वहाँ (आत्मध्यान में) तो आत्मा ही १कर्म, आत्मा ही कर्ता और आत्मा का भाव, वह ही क्रिया होती है अर्थात् कर्ता, कर्म और क्रिया - वे तीनों बिलकुल अखण्ड, अभिन्न हो जाते हैं और शुद्धोपयोग की अचल दशा प्रकट होती है, जिसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एक साथ-एकरूप होकर प्रकाशमान होते हैं ॥९॥

सुगुणरूपी रत्नों का भण्डार

परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं
चित् पिंड चंड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितैं ॥१०॥

अन्वयार्थ : इस स्वरूपाचरणचारित्र के समय मुनियों के आत्मानुभव में प्रमाण, नय और निक्षेप का विकल्प तो उठता ही नहीं, किन्तु गुण-गुणी का भेद भी नहीं होता - ऐसा ध्यान होता है । प्रथम ऐसा ध्यान होता है कि मैं अनन्तदर्शन-अनन्तज्ञान-अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप हूँ; मुझमें कोई रागादिक भाव नहीं हैं; मैं ही साध्य हूँ, मैं ही साधक हूँ और कर्म तथा कर्मफल से पृथक् हूँ । मैं ज्ञान-दर्शन-चेतनास्वरूप निर्मल ऐश्वर्यवान तथा अखण्ड, सहज शुद्ध गुणों का भण्डार और पुण्य-पाप से रहित हूँ । तात्पर्य यह है कि सर्व प्रकार के विकल्पों से रहित निर्विकल्प आत्मस्थिरता को स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं ॥१०॥

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्रकैं नाहीं कह्यो
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो
सब लख्यो केवलज्ञानकरि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥११॥

अन्वयार्थ : इस स्वरूपाचरणचारित्र के समय मुनिराज जब उपर्युक्तानुसार चिंतवन - विचार करके आत्मा में लीन हो जाते हैं; तब उन्हें जो आनन्द होता है, वैसा आनन्द इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र (चक्रवर्ती) या अहमिन्द्र (कल्पातीत देव) को भी नहीं होता । यह स्वरूपाचरणचारित्र प्रकट होने के पश्चात् स्वद्रव्य में उग्र एकाग्रता से - शुक्लध्यानरूप अग्नि द्वारा - चार १घातिकर्मो का नाश होता है और अरिहन्त दशा तथा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, जिसमें तीनकाल और तीनलोक के समस्त पदार्थ स्पष्ट ज्ञात होते हैं और तब भव्यजीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं ॥११॥

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम भू वसैं
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥

अन्वयार्थ : अरिहन्त दशा अथवा केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उस जीव को भी जिन गुणों की पर्यायों में अशुद्धता होती है, उनका क्रमश: अभाव कर वह जीव पूर्ण शुद्ध दशा को प्रकट करता है और उससमय असिद्धत्व नामक अपने उदयभाव का नाश होता है तथा चार अघाति कर्मो का भी स्वयं सर्वथा अभाव हो जाता है । सिद्धदशा में सम्यक्त्वादि आठ गुण (गुणों की निर्मल पर्यायें) प्रकट होते हैं । मुख्य आठ गुण व्यवहार से कहे हैं; निश्चय से तो अनन्त गुण (सर्व गुणों की पर्यायें) शुद्ध होते हैं और स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन के कारण एक समयमात्र में लोकाग्र में पहुँचकर वहाँ स्थिर रह जाते हैं । ऐसे जीव संसाररूपी दु:खदायी तथा अगाध समुद्र से पार हो गये हैं और वही जीव निर्विकारी, अशरीरी, अमूर्तिक, शुद्ध चैतन्यरूप तथा अविनाशी होकर सिद्धदशा को प्राप्त हुए हैं ॥१२॥

निजमाहिं लोक-अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये
रहिहैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये
धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥१३॥

अन्वयार्थ : सिद्ध भगवान के आत्मा में केवलज्ञान द्वारा लोक और अलोक (समस्त पदार्थ) अपने-अपने गुण और तीनोंकाल की पर्यायों सहित एकसाथ, स्वच्छ दर्पण के दृष्टान्तरूप से - सर्वप्रकार से स्पष्ट ज्ञात होते हैं; (किन्तु ज्ञान में दर्पण की भाँति छाया और आकृति नहीं पड़ती) । वे पूर्ण पवित्रतारूप मोक्षदशा को प्राप्त हुए हैं तथा वह दशा वहाँ विद्यमान अन्य सिद्ध- मुक्त जीवों की भाँति १अनन्तानन्त काल तक रहेगी; अर्थात् अपरिमित काल व्यतीत हो जाये, तथापि उनकी अखण्ड ज्ञायकता-शान्ति आदि में किंचित् बाधा नहीं आती । यह मनुष्यपर्याय प्राप्त करके जिन जीवों ने शुद्ध चैतन्य की प्राप्तिरूप कार्य किया है, वे जीव महान धन्यवाद (प्रशंसा) के पात्र हैं और उन्होंने अनादिकाल से चले आ रहे पंच परावर्तनरूप संसार के परिभ्रमण का त्याग करके उत्तम सुख - मोक्षसुख प्राप्त किया है ॥१३॥

मुख्योपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल-जग-मल हरैं
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ
जबलों न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ ॥१४॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार जो बड़े भाग्यशाली जीव दो भेद वाले निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय का धारण करते है और धारण करेंगे वे मोक्ष को प्राप्त करेंगे उनका कीर्ति रूपी जल संसार के जीवों के मल (पापों) को नष्ट करता है । इस प्रकार जानकार आलस्य को छोड़कर आत्म-शक्ति जागृत करके इस शिक्षा को आदर सहित धारण करो । इससे पहले कि रोग और बुढापा पकड़ ले, जल्दी से अपना आत्म-कल्याण कर लो, अर्थात् मोक्ष-मार्ग में लग जाओ ॥१४॥

यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये
कहा रच्यो पर पद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुख सहै
अब "दौल"! होउ सुखी स्वपद-रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५॥

अन्वयार्थ : यह राग रूपी अग्नि जो कि सदा से जल रही है उसे समतारूपी अमृत द्वारा शांत करना चाहिए । विषय-कषायों का सेवन अनादिकाल से कर रहा है; अब उसका त्याग करके आत्मपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहिए । तू दु:ख किसलिये सहन करता है? तेरा वास्तविक स्वरूप अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख और अनन्तवीर्य है, उसमें लीन होना चाहिए । इसलिये हे दौलतराम! हे जीव! अब आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर! आत्मस्वरूप को पहिचान! यह उत्तम अवसर बारम्बार प्राप्त नहीं होता, इसलिये इसे न गँवा । सांसारिक मोह का त्याग करके मोक्ष-प्राप्ति का उपाय कर ! ॥१५॥

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख
कर्यो तत्त्व-उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥

अन्वयार्थ : पण्डित बुधजनकृत छहढाला के कथन का आधार लेकर मैंने (दौलतराम ने) विक्रम संवत १८९१, वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) के दिन इस छहढाला ग्रन्थ की रचना की है । मेरी अल्पबुद्धि तथा प्रमादवश उसमें कहीं शब्द की या अर्थ की भूल रह गई हो तो बुद्धिमान उसे सुधारकर पढ़ें, ताकि जीव संसार-समुद्र को पार करने में शक्तिमान हो ।